केवलज्ञान-प्रश्नचूडामणि

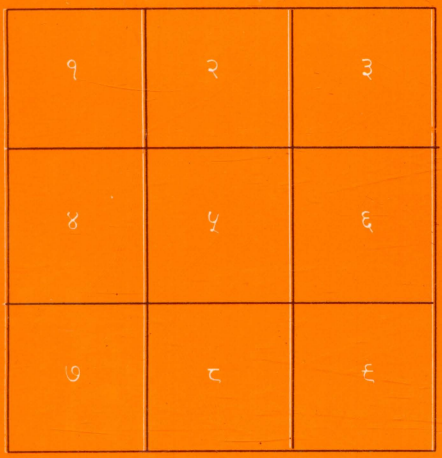

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि'—अर्थात् किसी भी फूल, फल, देवता, नदी या पहाड़ का नाम लो और मनचाही बात बूझो। जीवन-मरण, लाभ-हानि, संयोग-वियोग, सुख-दुःख, चोरी गयी वस्तु का पता, परदेशी के लौटने का समय, पुत्र या कन्या प्राप्ति, मुकदमा जीतने-हारने की बात—जो कुछ भी चाहें पूछें और उत्तर अपने आप प्राप्त करें।

'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' प्रश्नशास्त्र का एक लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण और चमत्कारी ग्रन्थ है। प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिष का अंग जाना जाता है। इसमें प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार बिना जन्मकुण्डली के फल बताया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नों के उत्तर तीन प्रकार से दिए जाते हैं : प्रश्नकाल को जानकर, स्वर के आधार पर, प्रश्नाक्षरों के आधार पर। इन तीनों सिद्धान्तों में अन्तिम सिद्धान्त अधिक मनोवैज्ञानिक एवं प्रामाणिक है। प्रस्तुत कृति में इसी सिद्धान्त का अत्यन्त सरल एवं विशद विवेचन है।

प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार अक्षरों से अथवा पाँच वर्गों के अक्षर स्थापित करके इनका स्पर्श कराकर प्रश्नों का फल किस प्रकार ज्ञात किया जाता है, इसका विवेचन किया गया है। विद्वान् सम्पादक ने विस्तृत प्रस्तावना तथा विभिन्न परिशिष्टों द्वारा ग्रन्थ को और अधिक उपयोगी बना दिया है।

प्रस्तुत कृति का यह नवीन संस्करण इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पाठकों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

सम्पादन-अनुवाद
डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ

पहला संस्करण : १९५०
दूसरा संस्करण : –
तीसरा संस्करण : –
चौथा संस्करण : १९८५
पाँचवाँ संस्करण : १९९६
छठा संस्करण : १९९७
सातवाँ संस्करण : १९९८

ISBN 81-263-0282-8

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थांक ७

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक :
आर. के. ऑफसेट
दिल्ली-११० ०३२

आवरण-शिल्पी : करुणानिधान

आठवाँ संस्करण : २०००
मूल्य : ६० रुपये

© भारतीय ज्ञानपीठ

KEVALAJNAN-PRASHNA-CHUDAMANI
(Astrology)
Edited and translated by
Dr. Nemichandra Shastri, Jyotishacharya

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Eighth Edition : 2000
Price : Rs. 60

आद्विवचन

(प्रथम संस्करण से)

अनन्त आकाश-मण्डल में अपने प्रोज्ज्वल प्रकाश का प्रसार करते हुए असंख्य नक्षत्र-दीपों ने अपने किरण-करों के संकेत तथा अपनी आलोकमयी मूकभाषा से मानव-मानस में अपने इतिवृत्त की जिज्ञासा जब जागरूक की थी, तब अनेक तपोधन महर्षियों ने उनके समस्त इतिवेद्यों को करामलक करने की तीव्र तपोमय दीर्घतम साधनाएँ की थीं और वे अपने योग-प्रभावप्राप्त दिव्य दृष्टियों से उनके रहस्यों का साक्षात्कार करने में समर्थ हुए थे। उन महामहिम महर्षियों के अन्तस्तल में अपार करुणा थी; अतः वे किसी भी वस्तु के ज्ञानगोपन को पातक समझते थे। उन्होंने अपनी नक्षत्र सम्बन्धी ज्ञानराशि का जनहित की भावना से बहुत ही सुन्दर संकलन और संग्रन्थन कर दिया था। उनके इस संग्रथित ज्ञान-कोष की ही ज्योतिषशास्त्र के नाम से प्रसिद्धि हुई थी जो अब भी उसी रूप में है।

इस विषय में किसी को किंचित् भी विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए कि सर्वप्रथम ज्योतिषविद्या का ही प्रादुर्भाव हुआ था और वह भी भारतवर्ष में ही। बाद में इस विद्या के प्रकाशन ने सारे भूमण्डल को आलोकित किया और अन्य अनेक विद्याओं को जन्म दिया। यह स्पष्ट है कि एक अंक का प्रकाश होने के बाद ही **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** इस अद्वैत सिद्धान्त का अवतरण हुआ था। दो संख्या का परिचय होने के बाद ही द्वैत विचार का उन्मेष हुआ। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत तत्त्वों की संख्या में न्याय, वैशेषिक, सांख्ययोग, पूर्व और उत्तर-मीमांसा के विभिन्न मत में इन सब के जन्म की ज्योतिषविद्या की पश्चाद्भाविता निर्विवाद रूप से सभी को मान्य है। पंचमहाभूत, शब्दशास्त्र के चतुर्दश सूत्र तथा साहित्य के नवरस आदि की चर्चा, अंकभेदादि सम्बन्ध, गुरुलघ्वादि सम्बन्ध, छन्द की रचना आदि ने इस ज्योतिषशास्त्र से ही स्वरूपलाभ पाया है।

ऐसे ज्योतिषशास्त्र की प्राचीनता के परीक्षण में अन्य अनेक बातों को छोड़कर केवल ग्रहोच्च के ज्ञान से ही यदि वर्ष की गणना की जाय तो सूर्य के उच्च से गणना करने पर,

"अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेस्तनीचाः॥"

इस व्यावहारिक ज्योतिष-गणना के प्रयत्न की न्यूनतम सत्ता आज से २१,८०,२९६ वर्ष पूर्व सिद्ध होती है। इसी प्रकार मंगल के उच्च से विचार करने पर १,१२,२९,३९० वर्ष तथा शनैश्चर के उच्च से विचार करने पर १,१२,०७,६९० वर्ष पूर्व इस जगत् में ज्योतिष के विकसित रूप में होने की सिद्धि होती है, जो आधुनिक संसार के लोगों के लिए, विशेषकर पाश्चात्य विज्ञानविशारदों के लिए बड़े आश्चर्य की सामग्री है।

"ज्योतिषशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते..." आचार्यों के इस प्रकार के वचनों के अनुसार मानव-जगत् में विविध आदेश करना ही इस अपूर्व अप्रतिम ज्योतिषशास्त्र का प्रधान लक्ष्य है।

इसी आदेश के एक अंग का नाम प्रश्नावगम तन्त्र है। इस प्रश्न-प्रणाली को जैन सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने भी आवश्यक समझकर बड़ी तत्परता से अपनाया था और उसकी सारी विचारधाराएँ 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' के रूप में लेखबद्ध कर सुरक्षित रखी थीं, किन्तु वह ग्रन्थ अत्यन्त दुरूह होने के कारण सर्वसाधारण का उपकार करने में पूर्णरूपेण स्वयं समर्थ नहीं रहा। अतः मेरे योग्यतम शिष्य श्री नेमिचन्द्र जैन ने बहुत ही विद्वत्तापूर्ण रीति से सरल, सुबोध, उदाहरणादि से सुसज्जित सपरिशिष्ट कर एक हृद्य-अनवद्य टीका के साथ इस ग्रन्थ को जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस टीका को देखकर मेरे मन में यह दृढ़ धारणा प्रादुर्भूत हुई कि अब उक्त ग्रन्थ इस विशिष्ट टीका का सम्पर्क पाकर समस्त विद्वत्समाज तथा जनसाधारण के लिए अत्यन्त समादरणीय और संग्राह्य होगा। टीका की लेखनशैली से लेखक की प्रशंसनीय प्रतिभा और लोकोपकार की भावना स्फुट रूप से प्रकट होती है। हमें पूर्ण विश्वास है कि ज्योतिषशास्त्र में रुचि रखनेवाले सभी बन्धु इस टीका से लाभ उठाकर लेखक को अन्य कठोर ग्रन्थों को भी अपनी ललित लेखनी से कोमल बनाने के लिए उत्साहित करेंगे।

श्री रामव्यास ज्योतिषी
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग

संस्कृत महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

१७ जनवरी, १९५०

विषय-सूची

प्रस्तावना

जैन ज्योतिष की महत्ता ११
जैन ज्योतिष के भेद-प्रभेदों का दिग्दर्शन १४
जैन पाटीगणित १६
जैन रेखागणित १८
जैन बीजगणित २०
जैन त्रिकोणमिति-गणित २१
प्रतिभा-गणित २२
पंचांगनिर्माणगणित—तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण २२
जन्मपत्र-निर्माणगणित—लग्नसाधन २४
जन्मपत्र के ग्रह व चन्द्र स्पष्टीकरण २५
जैन फलितज्योतिष—होराशास्त्र २५
संहिताशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र २६
सांमुद्रिक-शास्त्र, प्रश्नशास्त्र २७
स्वप्नशास्त्र २९
निमित्तशास्त्र ३०
जैन प्रश्नशास्त्र का मूलाधार ३१
जैन प्रश्नशास्त्र का विकासक्रम ३४
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का जैन प्रश्न-शास्त्र में स्थान ३८
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का विषय-परिचय ४०
प्रश्न निकालने की विधि ४९
ग्रन्थ का बहिरंग रूप—उपयोगी प्रश्न ५०
कार्यसिद्धि-असिद्धि का प्रश्न ५०
लाभालाभ प्रश्न ५२
चोरी गई वस्तु की प्राप्ति का प्रश्न ५२
अन्ध-मन्दलोचनादि नक्षत्र-बोधकचक्र ५३
प्रवासी आगमन सम्बन्धी प्रश्न ५४
गर्भिणी को पुत्र या कन्या-प्राप्ति ५४
रोगीप्रश्न, मुष्टिप्रश्न, मूकप्रश्न ५५
मुकदमा सम्बन्धी प्रश्न ५५
ग्रन्थकार ५६
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का रचनाकाल ५८
आत्मनिवेदन ५९

ग्रन्थ

अक्षरों का वर्ग विभाजन ६१
मगणादि सम्बन्धी प्रश्न-सिद्धान्त-चक्र ६३
इष्टकाल बनाने के नियम ६५
बिना घड़ी के इष्टकाल बनाने की रीति ६५
इष्टकाल पर से लग्न बनाने का नियम ६६
लग्न बनाने का सूक्ष्म नियम ६६
प्रश्नाक्षरों से लग्न निकालना ६७
पाँचों वर्गों के योग और उनके फल ६९
संयुक्त प्रश्नाक्षर और उनका फल ७३
आरूढ़ राशिबोधक चक्र ७४

असंयुक्त प्रश्नाक्षर ७६
असंयुक्त एवं अभिहत प्रश्नाक्षर ७७
प्रश्नलग्न द्वारा विशेष फल ७८
अनभिहत प्रश्नाक्षर और उनका फल ७९
अभिघातित प्रश्नाक्षर और उनका फल ८०
प्रश्नलग्नानुसार मृत्यु ज्ञात करना ८१
आलिंगित, अभिधूमित व दग्ध प्रश्नाक्षर ८१
उत्तर और अधर प्रश्नाक्षरों का फल ८३
उत्तर के नौ भेद और उनके लक्षण ८५
आलिंगित काल में पिण्ड बनाने की विधि ८५
अभिधूमित काल में पिण्ड बनाने की विधि ८७
दग्ध काल में पिण्ड बनाने की विधि ८७
आदेशोत्तर और उनका फल ८८
प्रश्नफल निकालने का अनुभूत नियम ८९
योनिविभाग ९०
जीवादि संज्ञाबोधक चक्र ९१
योनि निकालने की विधि ९१
जीवयोनि के भेद ९३
द्विपदयोनि और देवयोनि के भेद ९५
देवयोनि जानने की विधि ९६
मनुष्ययोनि का विशेष निरूपण ९७
बाल-वृद्धादि एवं आकृतिमूलक समादि अवस्थाएँ और उनके फल १००
पक्षियोनि के भेद १०१
राक्षसयोनि के भेद १०२
चतुष्पदयोनि के भेद १०३
खुरी, नखी आदि योनियों के भेद १०३
अपदयोनि के भेद और लक्षण १०५
पादसंकुला-योनि के भेद और लक्षण १०६
धातुयोनि के भेद १०७
धाम्य-धातुयोनि के भेद १०८
घटित-योनि के भेद-प्रभेद १०९
प्रश्नलग्नानुसार आभरण-चिन्ता विधि १०९
अधाम्य-योनि के भेद ११२
मूलयोनि के भेद-प्रभेद ११३
जीव, धातु और मूलयोनि के निरूपण का प्रयोजन ११५
चोरी गयी वस्तु का विशेष विचार ११६
मूक प्रश्न विचार ११७
मुष्टिका प्रश्न विचार व द्योतक चक्र ११८
आलिंगितादि मात्राओं का निवास ११९
लाभालाभ प्रश्न विचार १२०
द्रव्याक्षरों की संज्ञाएँ व उनका फल १२२
स्वर व व्यंजनों की संज्ञाएँ १२२
प्रश्न-फल जानने के विशेष नियम १२५
मास-परीक्षा विचार १२६
मास-संज्ञा-बोधक चक्र १२७
पक्ष का विचार १२८
पक्ष-संज्ञा-बोधक चक्र १२९
तिथि विचार १३०
वर्णों की गव्यूति आदि का कथन १३१
गादि शब्दों के स्वर-संयोग का विचार १३३
ग्रह और राशियों का कथन १३७
नष्टजातक बनाने की व्यस्थित विधि १३८
संवत्सर बोधक सारणी १४०
नक्षत्र, योग, लग्न व ग्रहानयन विधि १४१
नष्ट जन्मपत्रिका-स्वरूप १४२
गमनागमन प्रश्न विचार १४२
लाभालाभ प्रश्न विचार १४५
शुभाशुभ प्रश्न विचार १४७
चवर्ग पञ्चाधिकार १४९
सिंहावलोकन—स्वर व्यंजनाङ्क चक्र १५१
गजावलोकन—स्वर व्यंजनाङ्क चक्र १५२
नद्यावर्त—स्वर व्यंजनाङ्क चक्र १५२
मण्डूकप्लवन—स्वर व्यंजनाङ्क चक्र १५३
अश्वमोहित—स्वर व्यंजनाङ्क चक्र १५४
तवर्ग चक्र विचार व फलाफल १५५
यवर्ग और कवर्ग चक्र विचार व फल १५६

टवर्ग चक्र विचार व फलाफल १५७
पवर्ग चक्र विचार व फलाफल १५८
शवर्ग चक्र विचार व फलाफल १५९
ग्रन्थकारोक्त शवर्ग चक्र १६०
चिन्तामणि चक्र द्वारा नाम निकालना १६२
सर्ववर्गाकानयन द्वारा नाम निकालना १६३

परिशिष्ट (१)—मुहूर्तप्रकरण

नक्षत्रों, योगों और करणों के नाम १६५
समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य १६५
सीमन्तोन्नयन एवं पुंसवन मुहूर्त १६६
जातकर्म और नामकर्म मुहूर्त १६७
स्तनपान एवं सूतिकास्नान मुहूर्त १६७
दोलारोहण व भूम्युपवेशन मुहूर्त १६८
शिशुनिष्क्रमण, अन्नप्राशन मुहूर्त १६९
अन्नप्राशन की लग्नशुद्धि, शिशु-ताम्बूल-भक्षण एवं कर्णवेध मुहूर्त १७०
मुण्डन और अक्षरारम्भ मुहूर्त १७१
विद्यारम्भ एवं यज्ञोपवीत मुहूर्त १७२
वाग्दान और विवाह मुहूर्त १७३
विवाह में त्याज्य अन्धादि लग्न व फल तथा लग्नशुद्धि एवं ग्रहबल विचार १७३
वधूप्रवेश और द्विरागमनमुहूर्त व चक्र १७४
यात्रामुहूर्त व चक्र १७५
गृहनिर्माण, नूतनगृहप्रवेश मुहूर्त १७७
जीर्णगृह प्रवेशमुहूर्त व चक्र १७७
शान्तिक-पौष्टिक कार्य १७७
कुआँ खुदवाने का मुहूर्त १७७
दुकान करने का मुहूर्त व चक्र १७७
बड़े-बड़े व्यापार करने का मुहूर्त १७८
वस्त्र-आभूषण ग्रहण करने का मुहूर्त १७८
जेवर बनवाने का मुहूर्त व चक्र १७९
नमक बनाने का मुहूर्त १७९
राजा या मन्त्री से मिलने का मुहूर्त १७९
बगीचा लगाने का मुहूर्त १७९
हथियार बनाने व धारण करने का मुहूर्त १८०
रोगमुक्त होने पर स्नान करने एवं कारीगरी सीखने का मुहूर्त १८०
पुल बनाने का, खटिया बनवाने का एवं ऋण लेने का मुहूर्त व चक्र १८१
वर्षारम्भ में हल चलाने का, बीज बोने का एवं फसल काटने का मुहूर्त १८२
नौकरी, मुकद्दमा दायर करने का
जूता पहनने का मुहूर्त १८३
औषध बनाने व मन्त्रसिद्धि का मुहूर्त १८४
सर्वारम्भ व मन्दिर-निर्माण मुहूर्त १८४
प्रतिमा-निर्माण, प्रतिष्ठा एवं होमाहुति का मुहूर्त १८५

परिशिष्ट (२) जन्मपत्री बनाने की विधि

इष्टकाल साधन करने के नियम १८७
भयात और भभोग साधन १८८
जन्मनक्षत्र का चरण निकालने की विधि १८९
जन्मलग्न निकालने की सुगम विधि १८९
जन्मपत्री लिखने की विधि १९०
लग्नसारणी १९१
विंशोत्तरी दशा निकालने की विधि १९३
जन्मनक्षत्रानुसार विंशोत्तरी दशाचक्र १९३
विंशोत्तरी दशा का उदाहरण १९५
अन्तर्दशा विचार—सूर्यादि नवग्रहों के चक्र १९७
जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की विधि १९७
अन्तर्दशा का उदाहरण १९८
चन्द्रान्तर दशा व भौमान्तर दशा चक्र १९८

जन्मपत्री का फल देखने की संक्षिप्त विधि १९८
विंशोत्तरी दशा व अन्तर्दशा का प्रयोजन १९९
विशोत्तरी दशा का फल १९९
दशाफल के नियम, अन्तर्दशा फल १९९
ग्रहों का स्वरूप २००
ग्रहों के बलाबल का विचार २०१
राशि-स्वरूप २०२
द्वादश भावों का संक्षिप्त फल २०३
प्रथम भाव—लग्न विचार २०३
ग्रह-राशियों के स्वभाव एवं तत्त्व २०३
शारीरिक स्थिति—कद, रूप-रंग ज्ञात करने के नियम २०४
द्वितीय भाव—आर्थिक स्थिति विचार तथा धनी और दारिद्र्य योग २०५
तृतीय भाव—भाई-बहिनों के सम्बन्ध में विचार २०६
चतुर्थ भाव—पिता, ग्रह, मित्र आदि विचार २०७
पंचम भाव—सन्तान, विद्या आदि विचार २०८
षष्ठ भाव—रोग आदि का विचार २०९
सप्तम भाव—वैवाहिक सुख का विचार २०९
अष्टम भाव—आयु का विचार २०९
नवम भाव—भाग्य विचार २१०
दशम भाव—पेशा व उन्नति का विचार २१०
एकादश भाव—लाभालाभ विचार २१०
द्वादश भाव—व्यय विचार २११
जन्मलग्नानुसार शुभाशुभ ग्रहबोधक चक्र २११

परिशिष्ट (३)—विवाह में मेलापक-वर-कन्या की कुण्डली गणना

ग्रह मिलान २१२
गुण मिलान, भकूट विचार, नाड़ी विचार २१३
शतपद चक्र २१५
गणना गुणबोधक चक्र २१७

सहायक ग्रन्थ-सूची २१९

संकेत विवरण

चं. प्र.	चन्द्रोन्मीलनप्रश्न
के.प्र.र.	केरलप्रश्नरत्न
प्र. कौ./प्र. कु.	प्रश्नकौमुदी/प्रश्नकुतूहल
ध्व.प्र.	ध्वजप्रश्न
के.प्र.सं.	केरलप्रश्नसंग्रह
दै.व.	दैवज्ञवल्लभ
बृ. पा. हो.	बृहत्पाराशरी होरा
प्र.भू.	प्रश्नभूषण
बृ.भू.	बृहज्जातक
भु.दी.	भुवनदीपक
ग्र.ला.त्रि.प्र.	ग्रहलाघवत्रिप्रश्नाधिकार
स.सा.	समरसार
शि. स्व.	शिवस्वरोदय
नरपतिज.	नरपतिजयचर्या
ज्ञा. प्र.	ज्ञानप्रदीपिका
ता. नी.	ताजिकनीलकण्ठी
ज्योतिषसं.	ज्योतिषसंग्रह
प्र. वै.	प्रश्नवैष्णव
ग. म.	गर्गमनोरमा
ष.प.भा.	षट्पञ्चाशिका भाषाटीका
प्र. सि.	प्रश्नसिद्धान्त
त. सू./स. सि.	तत्त्वार्थसूत्र/सर्वार्थसिद्धि
के. हो. ह.	केवलज्ञानहोरा हस्तलिखित
आ. ति. ह.	आयज्ञानतिलक हस्तलिखित
दै. क.	दैवज्ञकल्पद्रुम
क.कू. (ता.मू.)	कन्नडलिपि की ताड़पत्रीय प्रति, मूडबिद्री
अ. चू. सा.	अर्हच्चूडामणिसार
श. म. नि.	शब्दमहार्णव निघण्टु
च. ज्यो.	चन्द्रार्कज्योतिषसंग्रह
वि. मा.	विद्यामाधवीय
आ. स. प्र.	आयसद्भावप्रकरण
प्र. र. सं.	प्रश्नरत्नसंग्रह
ज्यो. सं.	ज्योतिषसंग्रह हस्तलिखित
बृ.ज्यो.	बृहद्ज्योतिषार्णव

प्रस्तावना

सूर्य, चन्द्र और तारे प्राचीनकाल से ही मनुष्य के कौतूहल के विषय रहे हैं। मानव सदा इन रहस्यमयी वस्तुओं के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहता है। वह यह जानना चाहता है कि ग्रह क्यों भ्रमण करते हैं और उनका प्रभाव प्राणियों पर क्यों पड़ता है? उसकी इसी जिज्ञासा ने उसे ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन के लिए प्रेरित किया है।

भारतीय ऋषियों ने अपने दिव्यज्ञान और सक्रिय साधन द्वारा आधुनिक यन्त्रों के अभाव में भी प्रागैतिहासिक काल में इस शास्त्र की अनेक गुत्थियों को सुलझाया था। यद्यपि आज पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगकर कुछ लोग इस विज्ञान को विदेशी देन बतलाते हैं; पर प्राचीन शास्त्रों का अवगाहन करने पर उक्त धारणा भ्रान्त सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती है।

जैन ज्योतिष की महत्ता

भारतीय विज्ञान की उन्नति में इतर धर्मावलम्बियों के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर चलनेवाले जैनाचार्यों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी अमर लेखनी से प्रसूत दिव्य रचनाएँ आज भी जैन-विज्ञान की यशःपताका को फहरा रही हैं। ज्योतिषशास्त्र के इतिहास का आलोडन करने पर ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों द्वारा निर्मित ज्योतिष ग्रन्थों से भारतीय ज्योतिष में अनेक नवीन बातों का समावेश तथा प्राचीन सिद्धान्तों में परिमार्जन हुए हैं। जैन ग्रन्थों की सहायता के बिना भारतीय ज्योतिष के विकास-क्रम को समझना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

भारतीय ज्योतिष कां शृंखलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के समय से मिलता है। इसके पूर्ववर्ती ग्रन्थ वेद, अंगसाहित्य, ब्राह्मण, सूर्यप्रज्ञप्ति, गर्गसंहिता, ज्योतिष्करण्डक एवं वेदांगज्योतिष प्रभृति ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन आया है। वेदांगज्योतिष में पञ्चवर्षीय युग पर से उत्तरायण और दक्षिणायन के तिथि, नक्षत्र एवं दिनमान आदि का साधन किया है। इसके अनुसार युग का आरम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्य और चन्द्रमा के धनिष्ठा नक्षत्र सहित क्रान्तिवृत्त में पहुँचने पर होता है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल कई शती ई. पू. माना जाता है। विद्वानों ने इसके रचनाकाल का पता लगाने

के लिए जैन ज्योतिष को ही पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया है। वेदांगज्योतिष पर उसके पूर्ववर्ती और समकालीन ज्योतिष्करण्डक, सूर्यप्रज्ञप्ति एवं षट्खण्डागम में फुटकर उपलब्ध ज्योतिष चर्चा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'हिन्दुत्व' के लेखक ने जैन ज्योतिष का महत्त्व और प्राचीनता स्वीकार करते हुए पृष्ठ ५८१ पर लिखा है—"भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रन्थ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार सनातनियों की वेदसंहिता में पञ्चवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्र गणना है; उसी प्रकार जैनों के अंग ग्रन्थों में भी।"

डॉ. श्यामशास्त्री ने 'वेदांग-ज्योतिष' की भूमिका में बताया है—"वेदांगज्योतिष के विकास में जैन ज्योतिष का बड़ा भारी सहयोग है, बिना जैन ज्योतिष के अध्ययन के वेदांगज्योतिष का अध्ययन अधूरा ही कहा जाएगा। भारतीय प्राचीन ज्योतिष में जैनाचार्यों के सिद्धान्त अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं।" पंचवर्षात्मक युग का सर्वप्रथम उल्लेख जैन ग्रन्थों में ही आता है। काललोकप्रकाश, ज्योतिष्करण्डक और सूर्यप्रज्ञप्ति में जिस पंचवर्षात्मक युग का निरूपण किया है, वह वेदांगज्योतिष के युग से भिन्न और प्राचीन है। 'सूर्यप्रज्ञप्ति' में युग का निरूपण करते हुए लिखा है—

सावणबहुलपडिवए बालवकरणे अभीइनक्खत्ते।
सव्वत्थ पडमसमये जुअस्स आइं वियाणाहि॥

अर्थात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र में पंचवर्षीय युग का आरम्भ होता है।

जैन ज्योतिष की प्राचीनता के अनेक सबल प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीन जैनागम में ज्योतिषी के लिए 'जोइसंगविउ' शब्द का प्रयोग आया है। 'प्रश्नव्याकरणांग' में बताया है—**"तिरियवासी पंचविहा जोइसीया देवा, वहस्सती, चंद, सूर, सुक्क, सणिच्छरा, राहू, धूमकेउ, बुद्धा य, अंगारगा य, तत्ततवणिज्ज कणगवण्णा जेयगहा जोइसियम्मि चारं चरंति, केतु य गतिरतीया। अट्ठावीसतिविहाय णक्खतरेवगणा णाणासंट्ठाणसंठियाओ य तारगाओ ठियलेस्साचारिणो य।"** इससे स्पष्ट है कि नवग्रहों का प्रयोग ग्रहों के रूप में ई. पू. तीसरी शती से भी पहले जैनों में प्रचलित था। 'ज्योतिष्करण्डक' का रचनाकाल ई. पू. तीसरी या चौथी शती निश्चित है। उसमें लग्न का जो निरूपण किया है, उससे भारतीय ज्योतिष की कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ता है।

लग्गं च दक्खिणायविसुवेसुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पंचसु वि दक्खिणे अयणे॥

इस पद्य में 'अस्स' यानी अश्विनी और 'साई' यानी स्वाति ये विषुव के लग्न बताये गये हैं। 'ज्योतिष्करण्डक' में विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को भी लग्न कहा गया है। यवनों के आगमन के पूर्व भारत में यही जैन लग्नप्रणाली प्रचलित थी। 'वेदांगज्योतिष' में भी इस लग्नप्रणाली का आभास मिलता है—"श्रविष्ठाभ्यां गुणाभ्यस्तान् प्राविलग्नान् विनिर्दिशेत्" इस

पद्यार्थ में वर्तमान लग्न नक्षत्रों का निरूपण किया गया है। प्राचीन भारत में विशिष्ट अवस्था की राशि के समान विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को भी लग्न कहा जाता था।

जैन ज्योतिष की प्राचीनता का एक प्रमाण पंचवर्षात्मक युग में व्यतीपात आनयन की प्रक्रिया है। 'वेदांगज्योतिष' से भी पहले इस प्रक्रिया का प्रचार भारतवर्ष में था। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

अयणाणं संबंधे रविसोमाणं तु वे हि व जुगम्मि।
जं हवइ भागलद्धं वइहया तत्तिया होंति॥
वावत्तपरीयमाणे फलरासी इच्छिते उजुगमे ए।
इच्छियवइवायंपि य इच्छं काऊण आणे हि॥[1]

इन गाथाओं की व्याख्या करते हुए टीकाकार मलयगिरि ने **"इह सूर्यचन्द्रमसौ स्वकीयेऽयने वर्तमानौ यत्र परस्परं व्यतिपततः स कालो व्यतिपातः, तत्र रविसोमयोः युगे युगमध्ये यानि अयनानि तेषां परस्परं सम्बन्धे एकत्र मेलने कृते द्वाभ्यां भागो ह्रियते। हृते च भागे यद्भवति भागलब्धं तावन्तः तावत्प्रमाणा युगे व्यतिपाता भवन्ति।"** गणितक्रिया—७२ व्यतिपात में १२४ पर्व होते हैं, तो एक व्यतिपात में कितने ? अनुपात करने पर—$\frac{१२४}{७२} \times १ = १\frac{५२}{७२}$ पर्व, $\frac{५२}{७२} \times १५ = १०\frac{६०}{७२}$ तिथि, $\frac{६०}{७२} \times ३० = २५$ मुहूर्त्त व्यतिपात ध्रुवराशि की पट्टिका एक युग में निम्न प्रकार आयेगी—

	पर्व	तिथि	मुहूर्त
(१) $\frac{१२४}{७२} \times १ =$	१	१०	२५
(२) $\frac{१२४}{७२} \times २ =$	३	६	२०
(३) $\frac{१२४}{७२} \times ३ =$	५	२	१५
(४) $\frac{१२४}{७२} \times ४ =$	६	१३	१०
(५) $\frac{१२४}{७२} \times ५ =$	८	९	५
(६) $\frac{१२४}{७२} \times ६ =$	१०	५	०
(७) $\frac{१२४}{७२} \times ७ =$	१२	०	२५
(८) $\frac{१२४}{७२} \times ८ =$	१३	११	२०
(९) $\frac{१२४}{७२} \times ९ =$	१५	७	१५
(१०) $\frac{१२४}{७२} \times १० =$	१७	३	१०

१. ज्योतिष्करण्डक, पृ. २००—२०५

जैन ज्योतिष की प्राचीनता उसकी नक्षत्रगणना से भी सिद्ध होती है। प्राचीनकाल में कृत्तिका से नक्षत्रगणना की जाती थी, पर मेरा विचार है कि अभिजित्वाली नक्षत्रगणना कृत्तिकावाली नक्षत्रगणना से प्राचीन है। जैन ग्रन्थों में अभिजित्वाली नक्षत्रगणना वर्तमान है। कृत्तिका से नक्षत्रगणना का प्रयोग भी प्राचीन ज्योतिषग्रन्थों में मिलता है तथा चान्द्र नक्षत्रों की अपेक्षा सावन नक्षत्रों का विधान अधिक है।

जैन संवत्सर-प्रणाली को देखने से प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग प्राचीन भारत में ई. पू. दसवीं शती से भी पहले था। वेदों में जो संवत्सर के नाम आये हैं, जैन ग्रन्थों में उनसे भिन्न नाम हैं। यह संवत्सर की प्रणाली अभिजित् नक्षत्र पर आश्रित है। नाक्षत्रसंवत्सर, युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर और शनिसंवत्सर। बृहस्पति जब सभी नक्षत्रसमूह को भोगकर पुनः अभिजित् नक्षत्र पर आता है, तब महानाक्षत्र संवत्सर होता है।

'षट्खण्डागम' धवला टीका में[1] रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वरुण, अर्यमन् और भाग्य—ये पन्द्रह मुहूर्त आये हैं। मुहूर्तों की नामावली टीकाकार की अपनी नहीं है, उन्होंने पूर्व परम्परा से प्राप्त श्लोकों को उद्धृत किया है। अतः मुहूर्तचर्चा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है।

जैन ज्योतिष के भेद-प्रभेदों का दिग्दर्शन

'षट्खण्डागम' की धवला टीका में प्राप्त प्राचीन उद्धरण, तिलोयपण्णत्ती, जम्बूद्वीपपण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक तथा आगम ग्रन्थों में प्राप्त ज्योतिष चर्चा के अतिरिक्त इस विषय के सैकड़ों स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। नक्षत्रों के सम्बन्ध में जितना ऊहापोह जैनाचार्यों ने किया है, उतना अन्य लोगों ने नहीं। 'प्रश्नव्याकरणांग' में नक्षत्र योगों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। इसमें नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुलों का निरूपण करते हुए बताया है[2]—"धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल एवं उत्तराषाढ़ा—ये नक्षत्र कुल संज्ञक; श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा एवं पूर्वाषाढ़ा ये नक्षत्र उपकुल संज्ञक और अभिजित्, शतभिषा, आर्द्रा एवं अनुराधा कुलोपकुल संज्ञक हैं।" यह कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को होनेवाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया है।

इस वर्गीकरण का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि श्रावणमास के धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित्; भाद्रपद मास के उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद और शतभिषा; आश्विन मास के अश्विनी और रेवती; कार्तिक मास के कृत्तिका और भरणी; अगहन या मार्गशीर्ष मास के मृगशिरा और रोहिणी; पौष मास के पुष्य, पुनर्वसु और आर्द्रा; माघ मास के मघा और आश्लेषा; फाल्गुन मास के उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी; चैत्र मास के चित्रा और हस्त;

---

१. देखें—धवला टीका, ४ जिल्द, पृ. ३१८

२. 'ता कहं ते कुला उवकुला कुलावकुला आहितेति वदेज्जा ? तत्थ खलु इमा बारस कुला बारस उवकुला चत्तारि कुलावकुला पण्णत्ता...।"—प्रश्न व्याकरणांग १०/५

वैशाख मास के विशाखा और स्वाति; ज्येष्ठ मास के मूल, ज्येष्ठा और अनुराधा एवं आषाढ़ मास के उत्तराषाढ़ा और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र बताये गये हैं। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक, दूसरा उपकुल संज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है। अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा को धनिष्ठा पड़े तो कुल, श्रवण हो तो उपकुल और अभिजित् हो तो कुलोपकुल संज्ञावाला होता है। इसी प्रकार आगे-आगे के महीनों के नक्षत्र भी बताये गये हैं।

'ऋग्वेद संहिता' में ज्योतिषविषयक ऋतु, अयन, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि आदि की जैसी चर्चा है, उसी प्रकार की प्राचीन परम्परा से चली आयी चर्चा इस ग्रन्थ में भी मौजूद है।

'समवायांग' में आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्र की एक-एक तारा; पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद की दो-दो ताराएँ; मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, अभिजित्, श्रवण, अश्विनी और भरणी नक्षत्र की तीन-तीन ताराएँ, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा की चार-चार ताराएँ; रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा और धनिष्ठा नक्षत्र की पाँच-पाँच ताराएँ; कृत्तिका और आश्लेषा की छह-छह ताराएँ एवं मघा नक्षत्र की सात ताराएँ बतायी गयी हैं[1]। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले; मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा ये सात दक्षिणद्वार वाले; अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण ये सात पश्चिमद्वार वाले एवं धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी ये सात नक्षत्र उत्तरद्वार[2] वाले हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में नक्षत्रों का विस्तृत विचार किया गया है।

फुटकर ज्योतिष चर्चा के अलावा सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, अंगविज्जा, गणिविज्जा, मण्डलप्रवेश, गणितसारसंग्रह, गणितसूत्र, व्यवहारगणित, जैन गणितसूत्र, सिद्धान्तशिरोमणि—त्रैवेद्य मुनि, गणितशास्त्र, गणितसार, जोइसार, पंचाङ्गानयनविधि, इष्टतिथिसारिणी, लोकविजययन्त्र, पंचाङ्गतत्त्व, केवलज्ञानहोरा, आयज्ञानतिलक, आयसद्भाव प्रकरण, रिट्ठसमुच्चय, अर्घकाण्ड, ज्योतिषप्रकाश, जातकतिलक, नक्षत्रचूड़ामणि आदि सैकड़ों ग्रन्थ हैं।

विषयविचार की दृष्टि से जैन ज्योतिष को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक गणित और दूसरा फलित। गणितज्योतिष-सैद्धान्तिक दृष्टि से गणित का महत्त्वपूर्ण स्थान है; ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, मध्यफल, मन्दफल, सूक्ष्मफल, कुज्या, त्रिज्या, बाण, चाप, व्यास, परिधिफल एवं केन्द्रफल आदि का प्रतिपादन बिना गणित ज्योतिष के नहीं हो सकता है। आकाशमण्डल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब कैसा

---

१. "अद्धाणक्खत्ते एगतारे। चित्ताणक्खत्ते एगतारे। सातिणक्खत्ते एगतारे। पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे। उत्तरा-फग्गुणीणक्खत्ते दुतारे। पुव्वभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे। उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे..."—समवायाङ्ग १।६, २।४, ३।२, ४।३, ५।६, ६।७

२. "कत्तिआइया सत्तणक्खत्ता पुव्वदारिआ। महाइआ सत्तणक्खत्ता दाहिणदारिआ। अणुराइआ सत्त णक्खत्ता अवरदारिआ। धणिद्धाइआ सत्तणक्खत्ता उत्तरदारिआ।"—समवायाङ्ग ७।५

सम्बन्ध होता है, इसका ज्ञान भी गणित प्रक्रिया से ही सम्भव है। जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष सम्बन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटीगणित, रेखागणित, बीजगणित, त्रिकोणमति, गोलीयरेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, शृंगोन्नतिगणित, पंचाङ्गनिर्माणगणित, जन्मपत्रनिर्माण गणित, ग्रहयुति, उदयास्त सम्बन्धी गणित एवं यन्त्रादि साधन सम्बन्धी गणित का प्रतिपादन किया है।

जैन पाटीगणित—इसके अन्तर्गत परिकर्माष्टक सम्बन्धी गणित—जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल आदि हैं। इसी प्रकार श्रेणीविभागसम्बन्धी गणित के भी अनेक भेद-प्रभेद बताये हैं जैसे—युगोत्तरश्रेणी, चितिघन, वर्गचितिघन, घनचितिघन आदि हैं। चितिघन से किसी स्तूप, मन्दिर एवं दीवार आदि की ईंटों का हिसाब आसानी से किया जा सकता है। गुणोत्तर श्रेणी के सिद्धान्तों को भी महावीराचार्य ने 'गणितसार' नामक ग्रन्थ में विस्तार से बताया है। 'गणितसारसंग्रह' में विलोमगणित या व्यस्तविधि, त्रैराशिक, स्वांशानुबन्ध, स्वांशापवाह, इष्टकर्म, द्विष्टकर्म, एकादिभेद, क्षेत्रव्यवहार, अंकपाश एवं समय-दूरी सम्बन्धी प्रश्नों की क्रियाएँ विस्तारपूर्वक बतायी गयी हैं। जैनगणित के विकास का स्वर्णयुग छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक है। इसके पूर्व प्रजातन्त्र रूप से एतद्विषयक रचना प्रायः अनुपलब्ध है। हाँ, फुटकर रूप में आगमसम्बन्धी ग्रन्थों में गणित के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निबद्ध किये गये हैं। 'षट्खण्डागम' के सूत्रों में भी गणित के बीजसूत्र मिलते हैं। चौथी शताब्दी के लगभग की रचना 'तिलोयपण्णत्ति' में बीजगणित, अंकगणित एवं रेखागणित सम्बन्धी अनेक नियम हैं। संकलित घन निकालने के लिए दिये गये निम्न सिद्धान्त गणित दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

पदवग्गं चयपहदं दुगुणिदगच्छेण गुणिदमुहजुत्तं।
वड्ढिहदपदविहीणं दलिदं जाणिज्ज संकलिदं ॥७६॥
पदवग्गं पदरहिदं चयगुणिदं पदहदादिजुगमद्धं।
मुहदलयहदपदेणं संजुत्तं होदि संकलिदं ॥८१॥

अर्थात्पद के वर्ग को चय से गुणा करके उसमें दुगुने पद से गुणित मुख को जोड़ देने पर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें-से चय से गुणित पद प्रमाण को घटाकर शेष को आधा कर देने पर प्राप्त हुई राशि के प्रमाण संकलित घन होता है ॥७६॥ पद का वर्गकर उसमें-से पद के प्रमाण को कम करके अवशिष्ट राशि को चय के प्रमाण से गुणा करना चाहिए, पश्चात् उसमें-से पद से गुणित आदि को मिलाकर और फिर उसका आधा कर प्राप्त राशि में मुख के अर्ध भाग से गुणित पद के मिला देने पर संकलित घन का प्रमाण निकलता है ॥८१॥

उपर्युक्त दोनों ही नियम गणित में महत्त्वपूर्ण और नवीन हैं। तुलनात्मक दृष्टि से आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कर जैसे गणितज्ञों के नियम भी उक्त नियमों की अपेक्षा स्थूल हैं। आर्यभट्टी ग्रन्थ का अवलोकन करने से मालूम होता है कि यह आचार्य भी जैन गणित के वर्गमूल और घनमूल सम्बन्धी सिद्धान्तों से अवश्य प्रभावित हुए हैं। डॉ. कर्ण साहब ने

आर्यभट्टी की भूमिका एवं अंग्रेजी नोट्स में इस बात का कुछ संकेत भी किया है। तथा आर्यभट्ट ने भी जैन युग की उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी सम्बन्धी कालगणना को स्वीकार किया है। आर्यभट्टी के निम्न श्लोक से यह बात स्पष्ट है–

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्धं च।
मध्ये युगस्य सुषमा आदावन्ते दुःसमान्यंसात्॥

आर्यभट्ट की संख्या गणना भी जैनाचार्यों की संख्या गणना के समान ही है। 'सूर्यप्रज्ञप्ति' में जिस वर्गाक्षर क्रम से संख्या का प्रतिपादन किया है, वही क्रम आर्यभट्ट का भी है।

प्राचीन जैन गणित ज्योतिष का एक और ग्रन्थ है, जिसका परिचय सिंहसूरि विरचित लोकतत्त्वविभाग में निम्न प्रकार मिलता है–

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाण(पाण्ड्य)राष्ट्रे शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी॥

इससे स्पष्ट है कि सर्वनन्दी आचार्य का गणित-ज्योतिषका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रहा होगा, जिसमें लोकवर्णन के साथ-साथ गणित के भी अनेक सिद्धान्त निबद्ध किये गये होंगे। आठवीं शताब्दी में पाटीगणित सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ लिखे गये हैं। इस काल में महावीराचार्य ने 'गणितसारसंग्रह', 'गणितशास्त्र' एवं 'गणितसूत्र' ये तीन ग्रन्थ प्रधान रूप से लिखे हैं। ये आचार्य गणित के बड़े भारी उद्भट विद्वान् थे। इनकी वर्ग करने की अनेक रीतियों में निम्नलिखित रीति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और भारतीय गणित में उल्लेख योग्य है–

कृत्वान्त्यकृतिं हन्याच्छेषपदैर्द्विगुणमन्त्यमुत्सार्य।
शेषानुत्सार्यैवं करणीयो विधिरयं वर्गे॥

अर्थात्–अन्त्य अंक का वर्ग करके रखना फिर जिसका वर्ग किया है, उसको दूना करके शेष अंकों से गुणा कर एक अंक आगे हटाकर रखना। इसी प्रकार अन्त तक वर्ग करके जोड़ देने से पूर्ण राशि का वर्ग होता है। इस वर्ग करने के नियम में हम उपपत्ति (वासना) अन्तर्निहित पाते हैं। क्योंकि–

$अ^२ = (क + ग)^२ = (क + ग)\ (क + ग) = अ^२ = क(क + ग) + ग(क + ग) = क^२ + क़ग + क़ग + ग^२ = क^२ + २क़ग + ग^२$

इससे स्पष्ट है कि उक्त राशि में अन्त्य अक्षर क का वर्ग करके वर्गित अक्षर क को दूना कर आगे वाले अक्षर ग से गुणा किया है तथा अन्त्य के अक्षर ग का वर्ग कर जोड़ दिया है। इस प्रकार उक्त सूत्र में बीजगणितगत वासना भी अन्तर्निहित है।

दशमी शताब्दी में कवि राजकुञ्जर ने कन्नड़ भाषा में 'लीलावती' नाम का महत्त्वपूर्ण गणित ग्रन्थ लिखा है। 'त्रिलोकसार' एवं 'गोम्मटसार' में गणित सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण नियम आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने बताये हैं। वस्तुतः जीवा, चाप, बाण और क्षेत्रफल सम्बन्धी गणित में ये आचार्य पूर्ण निष्णात थे। जैनाचार्यों ने ज्योतिष सम्बन्धी गणित ग्रन्थों की रचना संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, तमिल एवं मलयालम आदि भाषाओं में भी की

है। कवि राजकुञ्जर की 'लीलावती' में क्षेत्र-व्यवहार सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ बतायी गयी हैं। ग्यारहवीं शताब्दी का एक जैन गणित ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा मिलता है। इसमें मिश्रित प्रश्नों के उत्तर श्रेणी-व्यवहार और कुट्टक की रीति से दिये गये हैं। इसी काल में श्रीधराचार्य ने गणितशास्त्र नामक एक ग्रन्थ रचा है, इसमें ग्रहगणितोपयोगी आरम्भिक गणित सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है। चौदहवीं शताब्दी के आस-पास के गणित ग्रन्थ तथा जैनेतर कई गणित ग्रन्थों के ऊपर टीकाएँ लिखी गयी हैं। इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी तक मौलिक एवं टीका ग्रन्थ गणित सम्बन्धी लिखे जाते रहे हैं।

जैन रेखागणित—जैनाचार्यों ने गणितशास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों पर लिखा है। रेखागणित के द्वारा उन्होंने विशेष-विशेष संस्थान या क्षेत्र के भिन्न-भिन्न अंशों का परस्पर सम्बन्ध बतलाया है। इसमें कोण, रेखा, समकोण, न्यूनकोण, समतल और घनपरिमाण आदि विषय का निरूपण किया गया है। जैनज्योतिष में समतल और घन रेखागणित, व्यवच्छेदक या बैजिक रेखागणित, चित्ररेखागणित और उच्चतर रेखागणित के रूप में मिलता है। समतल रेखागणित में सरल रेखा, समतल क्षेत्र, घन क्षेत्र और वृत्त के सामान्य विषय का जैनज्योतिर्विदों ने निरूपण किया है। उच्चतर रेखागणित में—सूचीछेद, वक्ररेखा और उसकी क्षेत्रावली का आलोचन किया है। चित्ररेखागणित में—सूर्यपरिलेख, चन्द्रपरिलेख एवं भौमादि ग्रहों के परिलेख तथा यन्त्रों द्वारा ग्रहों के वेध के चित्र दिखलाये गये हैं। ज्योतिषशास्त्र में इस रेखागणित का बड़ा भारी महत्त्व है। इसके द्वारा ग्रहण आदि का साधन बिना पाटीगणित की क्रिया के सरलतापूर्वक किया जा सकता है। व्यवच्छेदक रेखागणित या बैजिक रेखागणित में बीज सम्बन्धी क्रियाओं को रेखाओं द्वारा हल किया जाता है। जैनाचार्य श्रीधर ने सरल रेखा, वृत्त, रैखिक क्षेत्र, नलाकृति, मोचाकृति और वर्तुलाकृति आदि विषयों का वर्णन बैजिकरेखागणित में किया है। यों तो जैन ज्योतिष में स्वतन्त्र रूप से रेखागणित के सम्बन्ध में प्रायः गणित ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, परन्तु पाटीगणित के साथ या पञ्चांग निर्माण अथवा अन्य सैद्धान्तिक ज्योतिष ग्रन्थों के साथ में रेखागणित मिलता है।

'गणितसारसंग्रह' में त्रिभुजों के कई भेद बतलाये गये हैं तथा उनसे भुज, कोटि, कर्ण और क्षेत्रफल भी सिद्ध किये हैं। जात्य त्रिभुज के भुजकोटि, कर्ण और क्षेत्रफल लाने का निम्न प्रकार बताया है—

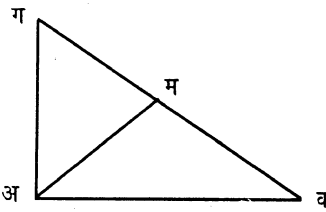

इस त्रिभुज में अ क, अ ग, भुज और कोटि हैं, क ग कर्ण है, ग अ क ∠ समकोण है, अ समकोण बिन्दु से क ग कर्ण के ऊपर लम्ब किया है—

$\because$ अ क^2 = क ग × क म; अ ग = क ग × ग म $\therefore$ अ क^2 + अ ग^2 = क ग × क म + क ग × ग म = क ग(क म + ग म) = क ग × क ग = क ग^2 = अ क^2 + क ग^2 = क ग$\sqrt{\text{अ क}^2 + \text{क ग}^2}$ $= \sqrt{\text{कोटि}^2 + \text{भु}^2 = \text{कर्ण}^2}$;

$\sqrt{\text{कोटि}^2 - \text{भु}^2 = \text{कर्ण}^2}$; $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2 = \text{भुज}^2}$;

जात्य त्रिभुज का क्षेत्रफल निम्न प्रकार से निकाला जाएगा–

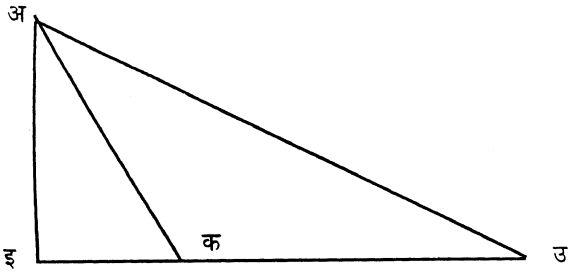

अ इ उ त्रिभुज में लघुभुज = भु; बृहद्भुज = भुं; भूमि = भू; अ क = लम्ब; छोटी आबाध इ क = $\frac{\text{भू}^2 - (\text{भुं}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भू}}$

लं^{2} = भु^{2}$\left\{\frac{\text{भू}^2 - (\text{भू}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भु}}\right\}$ = $\left\{\text{भु} + \frac{\text{भू}^2 - (\text{भुं}^2 - \text{भु})}{2\text{भू}}\right\}$ × $\left\{\text{भु} - \frac{(\text{भु}^2 - \text{भुं}^2 - \text{भु}^2)}{2\text{भू}}\right\}$

इस प्रकार जैनाचार्यों ने सरलरेखात्मक आकृतियों के निर्माण, क्षेत्रफलों के जोड़ तथा आकृतियों के स्वरूप आदि बतलाये हैं। अतः गणितसारसंग्रह के क्षेत्राध्याय पर-से रेखागणित सम्बन्धी निम्न सिद्धान्त सिद्ध होते हैं–

(१) समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग भुज और कोटि के वर्ग के योग के बराबर होता है[1]।

(२) वृत्तक्षेत्रफल का तृतीयांश सूची होती है।

---

१. देखें–गणितसारसंग्रहान्तर्गत क्षेत्र व्यवहाराध्याय का त्रिभुज प्रकरण।

(३) आयत क्षेत्र को वर्ग क्षेत्र में एवं वर्ग क्षेत्र को आयत क्षेत्र के रूप में बदला जा सकता है।

(४) चतुर्भुज क्षेत्र में चारों भुजाओं को जोड़कर आधा करने पर जो अवशेष रहे, उसमें-से पृथक्-पृथक् चारों भुजाओं को घटाने पर जो-जो बचे, उन्हें तथा पहले आधी की गयी राशि को गुणा करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर विषमबाहु चतुर्भुज का फल आता है[1]।

(५) दो वर्गों के योग अथवा अन्तर के समान वर्ग बनाने की प्रक्रिया।

(६) विषमकोण चतुर्भुज के कर्णानयन की विधि तथा लम्ब, लघ्वाबाधा एवं बृहदाबाधा आदि का विधान।

(७) त्रिभुज, विषमकोण, समचतुर्भुज, आयतक्षेत्र, वर्गक्षेत्र, पंचभुजक्षेत्र, षड्भुजक्षेत्र, ऋजुभुजक्षेत्र, एवं बहुभुज क्षेत्र आदि के क्षेत्रफलों का विधान।

(८) वृत्तक्षेत्र, जीवा, वृत्तखण्ड की ज्या, वृत्तखण्ड की चाप एवं वृत्तफल आदि निकालने का विधान।

(९) सूचीक्षेत्र, सूचीव्यास, सूचीफल एवं सूची के सम्बन्ध में विविध परामर्श आदि का विधान।

(१०) शंकु और वर्तुल के घनफलों का विधान; इत्यादि।

जैनाचार्यों ने रेखागणित से ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्तों को निश्चित करते हुए लिखा है कि क्रान्तिवृत्त और विषुव रेखा के मिलने से जो कोण होता है, वह २३$\frac{१}{२}$ अंश परिमित है। यहाँ से सूर्य उत्तरायण पथ से ६६$\frac{१}{२}$ अंश तक दूर चला जाता है।

इसी प्रकार दक्षिणायन पक्ष में भी ६६ अंश तक गमन करता है। अतएव खगोलस्थ उत्तर केन्द्र से सूर्य की गति ११३$\frac{१}{२}$ अंश दूर तक हुआ करती है। जैन मान्यता में जिन वृत्तों की कल्पना खगोलस्थ दोनों केन्द्रों के मध्य की गयी है, उन्हें होराचक्र और प्रथम होराचक्र से ज्योतिर्मण्डल के पूर्व भाग के दूरत्व को विक्षेप बताया है। इस प्रकार विक्षेपाग्र को केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से बना हुआ वृत्त जहाँ छाद्य बिम्ब को काटता है, उतना ही ग्रहण का परम ग्रास भाग होता है। इसी प्रकार चन्द्रशर द्वारा विमण्डलीय, ध्रुवप्रोत वृत्तीय एवं क्रान्तिवृत्तीय शरों का आनयन प्रधान रूप से किया है। रेखागणित के प्रवर्तक यतिवृषभ, श्रीधर, श्रीपति, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, पद्मप्रभसूरि, देवेन्द्रसूरि, राजकुंजर, महावीराचार्य, सर्वनन्दी, उदयप्रभसूरि एवं हर्षकीर्तिसूरि आदि प्रधान जैन गणक हैं।

जैन बीजगणित—इसमें प्रधान रूप से एक वर्ण समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, करणी, कल्पितराशियाँ समानान्तर, गुणोत्तर, व्युत्क्रम, समानान्तर श्रेणियाँ, क्रमसंचय, घातांकों और लघुगणकों का सिद्धान्त आदि बीज सम्बन्धी प्रक्रियाएँ मिलती हैं। 'धवला' में अ$\frac{३}{२}$

---

१. भुजयुत्यर्धचतुष्काद् भुजहीनाद्घातितात्पदं सूक्ष्मम्।
अथवा मुखतयुतितलमवलम्बगुणं न विषमचतुरस्रे ॥

को अ के घन का प्रथम वर्गमूल कहा है। अ^{६} को अ के घन का घन बताया है। अ^{६} को अ के वर्ग का घन बतलाया है। अ के उत्तरोत्तर-वर्ग और घनमूल निम्न प्रकार हैं–

अ का प्रथम वर्ग अर्थात् $(अ^{२}) = अ^{२}$

" द्वितीय वर्ग " $(अ^{२})^{२} = अ^{४} = अ^{२२}$

" तृतीय वर्ग " $(अ^{२})^{३} = अ^{६} = अ^{२३}$

" चतुर्थ वर्ग " $(अ^{२})^{४} = अ^{८} = अ^{२४}$

इसी प्रकार क वर्ग " $(अ)^{२क} = अ^{२क}$

इन्हीं सिद्धांतों पर से घातांक सिद्धांक निम्न प्रकार बनाया है–

(१) $\frac{क}{अ}+\frac{व}{अ}=\frac{क}{अ}+व$ (२) $\frac{म}{अ}-अ^{न}=\frac{म}{अ}-न$ (३) $\left(\frac{म}{अ}\right)न=\frac{म}{अ}न,$

इन घातांक सिद्धान्तों के उदाहरण 'धवला' के फुटकर गणित में मिलते हैं।[१]

'गणितसारसंग्रह' एवं 'गणितशास्त्र' आदि ग्रन्थों के आधार पर-से बीजगणित सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त नीचे दिये जाते हैं–

(१) ऋण राशि के समीकरण की कल्पना।

(२) वर्गप्रकृति, विचित्रकुट्टीकार, ज्ञाताज्ञातमूलानयन, भाटकानयन, इष्टवर्गानयन आदि प्रक्रियाओं के सिद्धान्त।

(३) अंकपाश, इष्टकानयन, छायानयन, खातव्यवहार एवं एकादि भेद सम्बन्धी नियम।

(४) केन्द्र फल का वर्णन, व्यक्त और अव्यक्त गणितों का विधान एवं मापक सिद्धान्तों की प्रक्रिया का विधान।

(५) एक वर्ण और अनेक वर्ण समीकरण सम्बन्धी सिद्धान्त।

(६) द्वितीयादि असीमाबद्ध वर्ग एवं घनों का समीकरण।

(७) अलौकिक गणित में असंख्यात, संख्यात, अनन्त आदि राशियों को बीजाक्षर द्वारा प्रतिपादन करने के सिद्धान्त।

जैन त्रिकोणमिति–इस गणित के द्वारा जैनाचार्यों ने त्रिभुज के भुज और कोणों का सम्बन्ध बताया है। प्राचीन काल में जैनाचार्यों ने जिन क्रियाओं को बीजगणित के सिद्धान्तों से निकाला था, उन क्रियाओं को श्रीधर और विजयप ने त्रिकोणमिति से निकाला है। जैनाचार्यों ने त्रिकोणमिति और रेखागणित का अन्तर बतलाते हुए लिखा है कि रेखागणित के सिद्धान्त के अनुसार जब दो भिन्न रेखाएँ भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं, तब कोण बनता है; किन्तु त्रिकोणमिति सिद्धान्त में इससे विपरित कोण की उत्पत्ति होती है। दूसरा अन्तर त्रिकोणमिति और रेखागणित में यह भी है कि रेखागणित के कोण के पहले कोई चिह्न नहीं लगता है; किन्तु त्रिकोणमिति में विपरीति दिशा में घूमने से कोई-न-कोई चिह्न लग ही जाता है। इसलिए इसके कोणों के नाम भी क्रम से योजक

---

१. छट्ठवग्गस्स उवरि सत्तमवग्गस्स हेट्ठदोत्ति बुत्ते अत्थवत्ती ण जादेत्ति।–धवला भाग ३, पृ. २५३

और वियोजक बताये गये हैं। सरल त्रिकोणमिति के द्वारा कोण नापने में अत्यन्त सुविधा होती है तथा कोणमान भी ठीक निकलता है।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में वृत्त की परिधि में व्यास का भाग देने से कोणमान निकाला गया है; पर बाद के जैन गणकों ने यन्त्रों के द्वारा भुज एवं कर्ण के सम्बन्ध से कोणमान स्थिर किया है। 'गणितसारसंग्रह' में ऐसी कई एक क्रियाएँ हैं जिनमें भुज, कर्ण एवं कोण के सम्बन्ध से ही कोणविषयक नियम निर्धारित किये गये हैं। कुछ आचार्यों ने भुज और कर्ण की निष्पत्ति सिद्ध करने के लिए अनेक नियम बताये हैं। इन्हीं नियमों से अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अग्रा, क्रान्ति, लम्बांश, भुजांश एवं समशंकु आदि का प्रतिपादन किया है। चापीय त्रिकोणमिति द्वारा ग्रह, नक्षत्र आदि के अवस्थान और उनके पथ का निर्णय होता है। यदि कोई समतल कोण वृत्त का केन्द्र भेद कर इसे दो खण्डों में विभक्त करे, तो प्रत्येक वृत्तक्षेत्र महावृत्त कहलाता है। जैनाचार्यों ने ग्रहों की स्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिस्पर्शरेखा एवं कोटिछेदनरेखा आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन त्रिकोणमिति से किया है।

प्रतिभा-गणित—इसके द्वारा जैनाचार्यों ने ग्रहवृत्तों के परिणामन का कथन किया है। अर्थात् किसी महद्वृत वाले ग्रह का गणित करने के लिए कल्पना द्वारा लघुवृत्त में परिणामन करानेवाली प्रक्रिया का नाम ही प्रतिभा है। यद्यपि इस गणित के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ नहीं मिलते, फिर भी ज्योतिष्चक्र एवं यन्त्रराज में परिणामन सम्बन्धी कई सिद्धान्त दिये गये हैं। कदम्बप्रोतवृत्त, मेरुछिन्नप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्त एवं नाड़ीवृत्त आदि लघु और महद्वृत्तों के परिणामन की नाना विधियाँ बतायी गयी हैं। श्रीधराचार्य विरचित ज्योतिर्ज्ञानविधि में भी इस परिणामन विधि का संकेत मिलता है। प्रतिभा की प्रक्रिया द्वारा ग्रहों की कक्षाएँ दीर्घवृत्त, परिवलय, वलय एवं अतिपरिवलय के रूप में सिद्ध की जाती हैं। प्राचीन सूची और वलय, व्यास एवं परिधि सम्बन्धी प्रक्रिया का विकसित रूप ही यह प्रतिभागणित है। 'गणितसारसंग्रह' के क्षेत्रसार व्यवहाराध्याय में आधार समानान्तर भूतल से छिन्न सूची क्षेत्र प्रदेश को वृत्तत्व स्वीकार किया गया है। उपर्युक्त सिद्धान्त के ऊपर यदि गणितदृष्टि से विचार किया जाय, तो यह सिद्धान्त भी समसूच्यन्तर्गत प्रतिभागणित का है। इसी प्रकार समतल शंकुमस्तक क्षेत्र व्यवस्था भी प्रतिभागणित के अन्तर्गत है।

पंचांगनिर्माणगणित

जैन पंचांग की प्रणाली बहुत प्राचीन है। जिस समय भारतवर्ष में ज्योतिष के गणित ग्रन्थों का अधिक प्रचार हुआ नहीं था, उस समय भी जैन पंचांगनिर्माण सम्बन्धी गणित पल्लवित और पुष्पित था। प्राचीन काल में गगनखण्डात्मक ग्रहों की गति लेकर पंचांग प्रणाली शुरू हुई थी, पर उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने इस प्रणाली को स्थूल समझकर सुधार किया। प्राचीन जैन प्रणाली में एक वीथी में सूर्य का जो भ्रमण करना माना जाता था, उसे उन्होंने अहोरात्र वृत्त मान लिया और इसी के आधार पर से आकाशमण्डल में नाड़ीवृत्त, क्रान्तिवृत्त, मेरुछिन्नप्रोतवृत्त एवं अयनप्रोतवृत्तादि २४ महद्वृत्त तथा कई-एक लघु वृत्त माने गये।

गगनखण्डात्मक गति को भी कलात्मक गति के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार प्राचीन जैन पंचांग की प्रणाली विकसित होकर नये रूप में आ गयी। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पाँचों का नाम ही पंचांग है। जैन पंचांगगणित में मेरु को केन्द्र मानकर ग्रहों का गमन होने से अनेक विशेषताएँ हैं।

तिथि[1]—सूर्य और चन्द्रमा के अन्तरांशों से तिथि बनती है और इसका मान १२ अंशों के बराबर होता है। सूर्य की गति प्रतिदिन लगभग १ अंश और चन्द्रमा की १३$\frac{१}{३}$ अंश है, पर सूर्य और चन्द्रमा अपनी गति से गमन करते हुए ३० दिनों में ३६० अंशों से अन्तरित होते हैं। अतः मध्यम मान से तिथि का मान १२ अंश अर्थात् ६० घटी अथवा ३० मुहूर्त है। कभी-कभी सूर्य की गति मन्द और कभी-कभी तेज हो जाती है। इसी प्रकार चन्द्रमा भी कभी शीघ्रगति और कभी मन्दगति होता है। इसलिए तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होती है। साधारणतः मध्यम मान के हिसाब से तिथि ६० घटी है, पर कभी-कभी ६५ घटी तक हो जाती है। तिथि का उदय सर्वदा सूर्योदय से ही लिया जाता है। तिथिक्षय और वृद्धि के कारण ही कभी पक्ष १६ दिन और कभी १४ दिन का ही होता है।

वार—नाक्षत्रमान के हिसाब से जैन पंचांग में वार लिया जाता है। वारों का क्रम ग्रहों के अनुसार न होकर उनके स्वामियों के अनुसार है। जिस दिन का स्वामी सूर्य होता है, उसे रविवार; जिस दिन का स्वामी चन्द्र होता है, उसे सोमवार; जिस दिन का स्वामी भौम होता है, उसे मंगलवार; जिस दिन का स्वामी बुध होता है, उसे बुधवार; जिस दिन का स्वामी गुरु होता है, उसे बृहस्पतिवार; जिस दिन का स्वामी भृगु होता है, उसे शुक्रवार; एवं जिस दिन का स्वामी शनैश्चर होता है, उसे शनिवार कहते हैं। इस वार नाम में वृद्धिह्रास नहीं होता है; क्योंकि सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय तक के काल का नाम वार है।

नक्षत्र—सूर्य जिस मार्ग से भ्रमण करता है, उसे क्रान्तिवृत्त या मेरुछिन्न-समानान्तरप्रोतवृत्त कहते हैं। क्रान्तिवृत्त की दोनों तरफ १८० अंश में जो कटिबन्ध-प्रदेश है, उसे राशि चक्र कहते हैं। इस राशिचक्र के २८ भाग करने पर अभिजित् आदि २८ नक्षत्र होते हैं। प्रत्येक ग्रह का नक्षत्रमान भिन्न-भिन्न होता है, किन्तु पंचांग के लिए चन्द्र नक्षत्र ही लिया जाता है। इसी को दैनिक नक्षत्र भी कहते हैं। चन्द्र नक्षत्र के लाने का प्रकार यह है कि स्पष्ट चन्द्र की कला बनाकर उनमें ८०० का भाग देने से लब्धिगत नक्षत्र, शेष वर्तमान नक्षत्र की गतकलाएँ आती हैं। उनको ८०० में से घटाने से भोग्य कलाएँ होती हैं। गत और भोग्य कलाओं को ६० से गुणा कर चन्द्रगति कला का भाग देने से गत और भोग्य घटी आती है। जैन सारणी ग्रन्थों के अनुसार अहर्गण बनाकर सारणी पर केन्द्रवल्ली, फलवल्ली, शीघ्रोच्चवल्ली एवं नक्षत्रवल्ली आदि पर से फल लाकर नक्षत्र का साधन करना चाहिए। जैन ग्रन्थ तिथिसारणी के अनुसार तिथिफल एवं तिथिकेन्द्रादि लाकर नक्षत्र मान और तिथिमान सिद्ध किया गया है।

---

१. विशेष जानने के लिए देखें, "जैनपंचांग" शीर्षक लेख—जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ८, कि. २

योग—यह सूर्य और चन्द्रमा के योग से पैदा होता है। प्राचीन जैन ग्रन्थों में मुहूर्तादि के लिए इसको प्रधान अंग माना गया है। इनकी संख्या २७ बतायी है[1]। व्यतिपात, परिघ और गण्ड इनका त्याग प्रत्येक शुभ कार्य में कहा गया है। योग के साधन का विधान बताते हुए लिखा है कि दैनिक स्पष्ट सूर्य एवं स्पष्ट चन्द्र के योग की कला बनाकर उनमें ८०० का भाग देने से लब्धिगत योग होता है। फिर गत और भोग्य कला को ६० से गुणाकर रवि-चन्द्र की गति कला योग से भाग देने पर गत और भोग्य घटियाँ आती हैं।

करण—गत तिथि को २ से गुणा कर ७ का भाग देने से जो शेष रहे, उसी के हिसाब से करण होता है। जैनाचार्य श्रीधर ने भी 'ज्योतिर्ज्ञानविधि' में करणों का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार लिखा है—

वव-वालव-कौलवतैत्तिलगरजा वणिजविष्टिचरकरणाः।
शकुनिचतुष्पदनागाः किंस्तुघ्नश्चेत्यमी स्थिराः करणाः॥
कृष्णचतुर्दश्यपरार्धतो भवन्ति स्थिराणि करणानि।
शकुनिचतुष्पदनागाः किंस्तुघ्नः प्रतिपदाद्यर्धे॥

अर्थात् वव, वालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि ये चर करण होते हैं एवं शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये स्थिर करण होते हैं। कृष्ण चतुर्दशी में परार्ध से चर करण और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के परार्ध से स्थिर करण होते हैं। यन्त्रराज के गणितानुसार भिन्न-भिन्न यन्त्रों से करणादिक का मान सूक्ष्म लाया गया है। जैन युग में ६० सौर मास, ६१ सावन मास, ६२ चान्द्रमास और ६७ नाक्षत्र मास होते हैं। १ नाक्षत्र वर्ष में ३२७$\frac{५१}{६७}$ दिन, १ चान्द्रवर्ष में ३५४ दिन, ११ घटी, ३६$\frac{४८}{६२}$ पल होते हैं। इसी प्रकार १ सौर वर्ष में ३६६ दिन और एक युग में सौर दिन १८००, चान्द्रदिन १८६०, नक्षत्रोदय १८३०, चान्द्रसावन दिन १७६८ बताये गये हैं। इन अंकों के साथ जैनेतर भारतीय ज्योतिष से तुलना करने पर चान्द्र वर्षमान और सौर वर्षमान में पर्याप्त अन्तर होता है। जैनाचार्यों ने यन्त्रों के द्वारा जिस सूक्ष्म पंचांग निर्माण सम्बन्धी गणित का प्रतिपादन किया है, वह प्रशंसनीय है। प्रत्यक्षवेधगत जो गणित मान आता है, वही मान जैनाचार्यों के यन्त्रों पर से सिद्ध होता है।[2]

इस पंचांगगणित में जैनाचार्यों ने देशान्तर, कालान्तर एवं अक्षांश सम्बन्धी संस्कार

---

१. 'विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यं शोभनं तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलं तथैव च ॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघाती हर्षणस्तथा।
वज्रः सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः ॥
सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रो वैधृतिस्तथा।
स्युः सप्तविंशतिर्योगाः शास्त्रे ज्योतिष्कनामनि॥" जैन ज्योतिर्ज्ञानविधि; पत्र ३

२. यन्त्रराज गणित ग्रन्थ का यन्त्रप्रकरण।

करके ग्रहानयन की अत्यन्त सूक्ष्म विधि बतलायी है। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् सुधाकर द्विवेदी ने गणकतरंगिणी में जैनाचार्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यन्त्रराज में क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्यानयन, भुजफलानयन, द्विज्याफलानयन एवं क्रान्तिज्या साधन इत्यादि गणितों के द्वारा ग्रहों के स्पष्टीकरण का विधान किया है। इस गणित को सिद्ध करने के लिए १४ यन्त्र यन्त्रराज में महत्त्वपूर्ण दिये गये हैं। इनसे तात्कालिक लग्न एवं तात्कालिक सूर्य आदि का साधन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ होता है।

जन्मपत्र-निर्माणगणित

जन्मपत्र निर्माण करने के लिए सर्व-प्रथम इष्टकाल का साधन करना चाहिए। इष्टकाल साधने के लिए लब्धिचन्द्रविरचित जन्मपत्री पद्धति एवं हर्षकीर्ति विरचित जन्मपत्र पद्धति में अनेक प्रकार दिये गये हैं।

प्रथम नियम यह है कि सूर्योदय से १२ बजे दिन के भीतर का जन्म-समय हो, तो जन्म-समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को $२\frac{१}{२}$ गुना करने से इष्टकाल होता है अथवा सूर्योदय काल से लेकर जन्म समय तक जितना समय हो, उसी के घट्यादि बनाने पर इष्टकाल हो जाता है।

दूसरा नियम—यदि १२ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो, तो जन्म-समय तथा सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को $२\frac{१}{२}$ गुनाकर दिनमान में घटाने से इष्टकाल होता है।

तीसरा नियम—यदि सूर्यास्त से १२ बजे रात्रि के अन्दर का जन्म हो, तो जन्म-समय तथा सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को $२\frac{१}{२}$ गुनाकर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है।

चौथा नियम—यदि १२ बजे रात्रि के बाद और सूर्योदय के अन्दर का जन्म हो तो जन्म-समय तथा सूर्योदय समय का अन्तर कर शेष को $२\frac{१}{२}$ गुणाकर ६० घटी में घटाने से इष्टकाल होता है।

इस इष्टकाल पर से सर्वर्क्ष और गतर्क्ष का साधन भी निम्न प्रकार से करना चाहिए—गत नक्षत्र घटी को ६० घटी में-से घटाकर शेष में सूर्योदयादि इष्टघटी जोड़ने से गतर्क्ष होता है और उस गत नक्षत्र में जन्म नक्षत्र के घटी, पल जोड़ने से भभोग अर्थात् सर्वर्क्ष होता है। इस सर्वर्क्ष में ४ का भाग देने से लब्ध घटी, पल तुल्य एक चरण का मान होता है। इसी मान के हिसाब से गतर्क्ष में चरण निकालकर राशि एवं नक्षत्र चरण का मान होता है।

लग्न साधन[१]—लग्न साधन करने के जैनाचार्यों ने कई नियम बताये हैं। पहला नियम तो तात्कालिक सूर्य पर-से बताया है। विस्तार के भय से यहाँ पर एक संक्षेप प्रक्रिया का उल्लेख किया जाता है—

पंचाग में जो लग्नसारणी लिखी हो, वह यदि सायनसारणी हो तो सायनसूर्य और

---

१. विशेष जानने के लिए इस पुस्तक का परिशिष्ट भाग देखें।

निरयणसारणी हो तो निरयणसूर्य के राशि और अंश के सामने जो अंक घट्यादि हों, उनमें इष्टकाल सम्बन्धी घटी, पल जोड़ देने चाहिए। यदि घटी के स्थान में ६० से अधिक हों तो अधिक को छोड़कर शेष तुल्य अंक उस सारणी में जहाँ हों, उस राशि अंश को लग्न समझना चाहिए। पूर्व और उत्तर अंशवाले घट्यादि का अन्तर कर अनुपात से कला-विकलादि का साधन करना चाहिए।

जन्मपत्र के ग्रह-स्पष्टीकरण—जिस ग्रह को स्पष्ट करना हो, उसकी तात्कालिक गति से ऋण अथवा धन चालन को व्यतिरिक्ता रीति (गोमूत्रिका रीति) से गुणा करने पर जो अंशादि हों, उनको पंचांग स्थित ग्रह में ऋण या धन कर देने पर ग्रह स्पष्ट होता है। किन्तु, इन ग्रहों के स्पष्टीकरण में यह विशेषता है कि जो ग्रह वक्री हो, उसके साधन में ऋणगत चालन होने पर पंचांग स्थित ग्रह में धन एवं धन चालन होने पर पंचांग स्थित ग्रह में ऋण कर दिया जाता है।

चन्द्रस्पष्टीकरण—जन्मपत्र के गणित में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गणित चन्द्रमा के स्पष्टीकरण का है। इसकी रीति जैनाचार्यों ने इस प्रकार बतायी है कि भयात और भभोग को सजातीय करके भयात को ६० से गुणा कर भभोग का भाग देने पर जो लब्ध आये, उसमें ६० से गुणा किये हुए अश्विनी आदि गत नक्षत्रों को जोड़ दें, फिर उसमें दो से गुणा करें। गुणनफल में ९ का भाग दें, जो लब्ध हो उसी को अंश मानें, शेष को फिर ६० से गुणा करें, ९ का भाग दें, जो लब्ध हो उसे कला जानें, शेष को फिर ६० से गुणा करके ९ का भाग दें, जो लब्ध हो, उसे विकला समझें। इस प्रकार चन्द्रमा के राश्यंशादि होंगे।

लग्न ग्रहस्पष्ट एवं भयात-भभोग के साधन के अनन्तर द्वादश भावों का साधन करना चाहिए। तथा इसी भयात और भभोग पर से विंशोत्तरी, योगिनी एवं अष्टोत्तरी आदि दशाओं का साधन करना चाहिए। जैनाचार्यों ने प्रधानतया विंशोत्तरी का कथन किया है।

जैन फलितज्योतिष

इसमें ग्रहों के अनुसार फलाफल का निरूपण किया जाता है। प्रधानतया इसमें ग्रह, नक्षत्रादि की गति या संचार आदि को देखकर प्राणियों की भावी दशा, कल्याण-अकल्याण आदि का वर्णन होता है। इस शास्त्र में होराशास्त्र, संहिताशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, स्वप्नशास्त्र एवं निमित्तशास्त्र आदि हैं।

होरा—इसका अर्थ है लग्न अर्थात् लग्न पर से शुभ-अशुभ फल का ज्ञान कराना होरा शास्त्र का काम है। इसमें जातक के उत्पत्ति के समय के नक्षत्र, तिथि, योग, करण आदि का फल अत्युत्तमता के साथ बताया जाता है। जैनाचार्यों ने इसमें ग्रह एवं राशियों के वर्णस्वभाव, गुण, आकार-प्रकार आदि बातों का प्रतिपादन किया है। जन्मकुण्डली का फल बतलाना इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। आचार्य श्रीधर ने यह भी बतलाया है कि आकाशस्थ राशि और ग्रहों के बिम्बों में स्वाभाविक शुभ और अशुभपना मौजूद है; किन्तु उनमें परस्पर साहचर्यादि तात्कालिक सम्बन्ध से फल-विशेष शुभाशुभ रूप में परिणत हो जाता है, जिसका

स्वभाव पृथ्वीस्थित प्राणियों पर भी पूर्णरूप से पड़ता है। इस शास्त्र में प्रधानता से देह, द्रव्य, पराक्रम, सुख, सुत, शत्रु, कलत्र, भाग्य, राज्यपद, लाभ और व्यय इन बारह भावों का वर्णन रहता है। इस शास्त्र में सबसे विशेष ध्यान देने लायक लग्न और लग्नेश बताये गये हैं। ये जब तक स्थिति में सुधरे हुए हैं, तब तक जातक के लिए कोई अशुभ सम्भावना नहीं होती है। जैसे—लग्न तथा लग्नेश बलवान् हैं, तो शरीर सुख, सन्ततिसुख, अधिकारसुख, सभा में सम्मान, कारोबार में लाभ तथा साहस आदि की कमी नहीं पड़ती। यदि लग्न अथवा लग्नेश की स्थिति विरुद्ध है तो जातक को सब तरह से शुभ कामों में विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। लग्न के सहायक १२ भाव हैं। क्योंकि आचार्यों ने भचक्र को जातक का पूर्ण शरीर माना है। इसीलिए यदि जन्मकुण्डली के १२ भावों में से कोई भाव बिगड़ जाए, तो जातक को सुख में कमी पड़ जाती है। अतएव लग्न-लग्नेश, भाग्य-भाग्येश, पंचम-पंचमेश, सुख-सुखेश, अष्टम-अष्टमेश, बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, मंगल, बुध इनकी स्थिति तथा ग्रह स्फुट में वक्री, मार्गी, भावोद्धारक चक्र, द्रेष्काणचक्र, कुण्डली एवं नवांशकुण्डली आदि का विचार इस शास्त्र में जैनाचार्यों ने विस्तार से किया है।

संहिता—इस शास्त्र में भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, ग्रहोपकरण, इष्टिकाद्वार, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, जलाशय, उल्कापात एवं ग्रहों के उदयास्त का फल आदि अनेक बातों का वर्णन रहता है। जैनाचार्यों ने संहिता ग्रन्थों में प्रतिमा-निर्माण विधि एवं प्रतिष्ठा आदि का भी विधान लिखा है। यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र आदि का विधान भी इस शास्त्र में है।

मुहूर्त—इस शास्त्र में प्रत्येक मांगलिक कार्य के लिए शुभ मुहूर्तों का वर्णन किया गया है। बिना मुहूर्त के किसी भी मांगलिक कार्य का प्रारम्भ करना उचित नहीं है। क्योंकि समय का प्रभाव प्रत्येक जड़ एवं चेतन पदार्थ पर पड़ता है। इसीलिए हमारे जैनाचार्यों ने गर्भाधानादि अन्यान्य संस्कार एवं प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, यात्रा आदि सभी मांगलिक कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त का ही आश्रय लेना आवश्यक बतलाया है। कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रतिष्ठापाठ एवं आराधनादि ग्रन्थों में भी मुहूर्तों का प्रतिपादन मिलता है। मुहूर्त विषय का निरूपण करनेवाले सैकड़ों ग्रन्थ हैं। जैन और अजैन ज्योतिष की मुहूर्त प्रक्रिया में मौलिक भेद है। जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा के लिए उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, श्रवण और रेवती ये नक्षत्र उत्तम बतलाये हैं। चित्रा, मघा, मूल, भरणी इन नक्षत्रों में भी प्रतिष्ठा का विधान बतलाया है। परन्तु 'मुहूर्तचिन्तामणि' आदि ग्रन्थों में चित्रा, स्वाति, भरणी और मूल प्रतिष्ठा में ग्राह्य नहीं बतलाये हैं। आचार्य जयसेन ने मुहूर्त के प्रकरण में क्रूरासन्न, दूषित, उत्पात, लता, विद्धपात, राशिवेध, नक्षत्रवेध, युति, बाणपंचक एवं जामित्र त्याज्य बतलाये हैं। इसी प्रकार सूर्यदग्धा और चन्द्रदग्धा आदि तिथियों का भी विश्लेषण किया है। आचार्य वसुनन्दि ने अमृतसिद्धि योग का लक्षण लिखा है—

हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रविणा चोत्तरात्रयम्। पुष्यर्क्षगुरुवारेण शशिना मृगरोहिणी॥
अश्विनी रेवती भौमे शुक्रे श्रवण-रेवती। विशाखा कृत्तिका मन्दे रोहिणी श्रवणस्तथा॥
मैत्रवारुणनक्षत्रं बुधवारेण संयुतम्। अमृताख्या इमे योगाः प्रतिष्ठादिषु शोभनाः॥

अर्थात् रविवार को हस्त, पुनर्वसु, पुष्य; गुरुवार को उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), पुष्य; सोमवार को मृगशिर, रोहिणी; मंगलवार को अश्विनी, रेवती; शुक्रवार को श्रवण, रेवती; शनिवार को विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, श्रवण और बुधवार को अनुराधा, शतभिषा नक्षत्र, अमृसिद्धि योग संज्ञक हैं।

सामुद्रिक—जिस शास्त्र से मनुष्य के प्रत्येक अंग के शुभाशुभ का ज्ञान हो, उसे सामुद्रिकशास्त्र कहते हैं। हस्तसंजीवन में आचार्य मेघविजयगणि ने बताया है कि सब अंगों में हाथ श्रेष्ठ है, क्योंकि सभी कार्य हाथों द्वारा किये जाते हैं। इसीलिए पहले-पहल हाथ के लक्षणों का ही विचार इस शास्त्र में प्रधान रूप से रहता है।[1] हाथ में जन्मपत्री की तरह ग्रहों का अवस्थान बताया है। तर्जनी मूल में बृहस्पति का स्थान, मध्यमा उँगली के मूल देश में शनि स्थान, अनामिका के मूलदेश में रवि स्थान, कनिष्ठा के मूलदेश में बुध स्थान तथा बृहद् अंगुष्ठ के मूल में शुक्रदेव का स्थान है। मंगल के दो स्थान बताये गये हैं। १. तर्जनी और बृहदंगुलि के बीच में पितृरेखा के समाप्ति स्थान के नीचे और २. बुध के स्थान के नीचे तथा चन्द्र के स्थान के ऊपर आयुरेखा और पितृरेखा के नीचेवाले स्थान में बताया गया है। रेखाओं के वर्ण का फल बतलाते हुए जैनाचार्यों ने लिखा है कि रेखाओं के रक्तवर्ण होने से मनुष्य आमोदप्रिय, सदाचारी और उग्र स्वभाव का होता है। यदि रक्तवर्ण में काली आभा मालूम पड़े तो प्रतिहिंसापरायण, शठ और क्रोधी होता है। जिसकी रेखा पीली होती है, पित्त के आधिक्यवश क्रुद्ध स्वभाव का, उच्चाभिलाषी, कार्यक्षम और प्रतिहिंसापरायण होता है। यदि उसकी रेखा पाण्डुक आभा की हो तो वह स्त्री स्वभाव का, दाता और उत्साही होता है। मेघविजयगणि ने भाग्यवान् के हाथ का लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

श्लाघ्य उष्णारुणोऽच्छिद्रोऽस्वेदः स्निग्धश्च मांसलः।
श्लक्ष्णस्ताम्रनखो दीर्घाङ्गुलिको विपुलः करः॥

अर्थात्—गरम, लाल रंग, अँगुलियाँ अच्छिद्र—सटी हों, पसीना न हो, चिकना, मांस से भरा हो, चमकीला, ताम्रवर्ण के नखवाला तथा लम्बी और पतली अंगुलियोंवाला हाथ सर्वश्रेष्ठ होता है, ऐसा मनुष्य संसार में सर्वत्र सम्मान पाता है।

इस शास्त्र में प्रधान रूप से आयुरेखा, मातृरेखा, पितृरेखा एवं समयनिर्णयरेखा, ऊर्ध्वरेखा, अन्तःकरण रेखा, स्त्रीरेखा, सन्तानरेखा, समुद्रयात्रारेखा या मणिबन्ध रेखा आदि रेखाओं का विचार किया जाता है। सभी ग्रहों के पर्वत के चिह्न भी सामुद्रिक शास्त्र में बतलाये गए हैं। इनके फल का विश्लेषण बहुत सुन्दर ढंग से जैनाचार्यों ने किया है।

प्रश्न—इस शास्त्र में प्रश्नकर्ता से पहले किसी फल, नदी और पहाड़ का नाम पूछकर अर्थात् प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न काल तक फल का नाम, मध्याह्नकाल से लेकर सन्ध्याकाल तक नदी का नाम और सन्ध्याकाल से लेकर रात के १०-११ बजे तक पहाड़ का नाम पूछकर तब प्रश्न का फल बताया गया है। जैनाचार्यों ने प्रश्न के फल का उत्तर

---

१. सर्वाङ्गलक्षणप्रेक्षा-व्याकुलानां नृणां मुदे। श्रीसामुद्रेण मुनिना तेन हस्तः प्रकाशितः॥

देने के लिए अ ए क च ट त प य श अक्षरों का प्रथम वर्ग, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष अक्षरों का द्वितीय वर्ग, इ ओ ग ज ड द ब ल स अक्षरों का तृतीय वर्ग, ई औ घ झ ढ ध भ व ह अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः अक्षरों का पंचम वर्ग बताया है। आचार्यों ने इन अक्षरों के भी संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ भेद बतलाये हैं। इन भेदों पर से जातक के जीवन-मरण, हानि-लाभ, संयोग-वियोग एवं सुख-दुःख का विवेचन किया है। दो-चार ग्रन्थों में प्रश्न की प्रणाली लग्न के अनुसार मिलती है। यदि लग्न या लग्नेश बली हुए और स्वसम्बन्धी ग्रहों की दृष्टि हुई तो कार्य की सिद्धि और इससे विपरीत में असिद्धि होती है। भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की ग्रहस्थिति का भिन्न-भिन्न नियमों से विचार किया है। 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' में आचार्य ने लाभालाभ के प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है—

यदि दीर्घमक्षरं प्रश्ने प्रथमतृतीयपंचमस्थानेषु दृष्टं तदेव लाभकरं स्यात्, शेषा अलाभकराः स्युः। जीवितमरणं लाभालाभं साधयन्तीति साधकाः॥ अर्थात्—दीर्घाक्षर प्रश्न में प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान में हों तो लाभ करनेवाले होते हैं, शेष अलाभकर—हानि करनेवाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरों पर से जीवन, मरण, लाभ और हानि आदि को सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार जैनाचार्यों ने उत्तर, अधर, उत्तराधर एवं अधरोत्तर आदि प्रश्न के अनेक भेद करके उत्तर देने के नियम निकाले हैं। चन्द्रोन्मीलनप्रश्न में चर्या, चेष्टा एवं हाव-भाव आदि से प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। वास्तव में जैन प्रश्नशास्त्र बहुत उन्नत है। ज्योतिष के अंगों में जितना अधिक यह शास्त्र विकसित हुआ है, उतना दूसरा शास्त्र नहीं।

स्वप्न[1]—जैन मान्यता में स्वप्न संचित कर्मों के अनुसार घटित होनेवाले शुभाशुभ फल के द्योतक बताये गये हैं। स्वप्नशास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट अवगत हो जाता है कि कर्मबद्ध प्राणिमात्र की क्रियाएँ सांसारिक जीवों को उनके भूत और भावी जीवन की सूचना देती हैं। स्वप्न का अंतरंग कारण ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय के क्षयोपशम के साथ मोहनीय का उदय है। जिस व्यक्ति के जितना अधिक इन कर्मों का क्षयोपशम होगा, उस व्यक्ति के स्वप्नों का फल भी उतना ही अधिक सत्य निकलेगा। तीव्रकर्मों के उदयवाले व्यक्तियों के स्वप्न निरर्थक एवं सारहीन होते हैं। इसका मुख्य कारण जैनाचार्यों ने यही बताया है कि सुषुप्तावस्था में भी आत्मा तो जागृत ही रहती है, केवल इन्द्रियों और मन की शक्ति विश्राम करने के लिए सुषुप्त-सी हो जाती है। जिसके उपर्युक्त कर्मों का क्षयोपशम है, उसके क्षयोपशमजन्य इन्द्रिय और मन सम्बन्धी चेतना या ज्ञानावस्था अधिक रहती है। इसलिए ज्ञान की उज्ज्वलता से निद्रित अवस्था में जो कुछ देखते हैं, उसका सम्बन्ध हमारे भूत, वर्तमान और भावी जीवन से हैं। इसी कारण स्वप्नशास्त्रियों ने स्वप्न को भूत, वर्तमान और भावी जीवन का द्योतक बतलाया है। पौराणिक

---

१. विशेष जानने के लिए देखें—"स्वप्न और उसका फल"—जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण १

स्वप्नसम्बन्धी अनेक जैन आख्यानों से भी यही सिद्ध होता है कि स्वप्न मानव को उसके भावी जीवन में घटनेवाली घटनाओं की सूचना देते हैं।

उपलब्ध जैन ज्योतिष में स्वप्नशास्त्र अपना विशेष स्थान रखता है। जहाँ जैनाचार्यों ने जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं के इष्टानिष्ट कारणों का विश्लेषण किया है, वहाँ स्वप्न के द्वारा भावी जीवन की उन्नति और अवनति का विश्लेषण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ढंग से किया है। यों तो प्राचीन वैदिकं धर्मावलम्बी ज्योतिषशास्त्रियों ने भी इस विषय पर पर्याप्त लिखा है, पर जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित स्वप्नशास्त्र में कई विशेषताएँ हैं। वैदिक ज्योतिषशास्त्रियों ने ईश्वर को सृष्टिकर्ता माना है, इसलिए स्वप्न को ईश्वरप्रेरित इच्छाओं का फल बताया है। वराहमिहिर, बृहस्पति और पौलस्त्य आदि विख्यात गणकों ने ईश्वर की प्रेरणा को ही स्वप्न में प्रधान कारण माना है। फलाफल के विवेचन में भी दस-पाँच स्थलों में भिन्नता मिलेगी। जैन स्वप्नशास्त्र में प्रधानतया सात प्रकार के स्वप्न बताये गये हैं—१. दृष्ट—जो कुछ जागृत अवस्था में देखा हो, उसी को स्वप्नावस्था में देखा जाए। २. श्रुत—सोने के पहले कभी किसी से सुना हो, उसी को स्वप्नावस्था में देखा जाए। ३. अनुभूत—जिसका जागृत अवस्था में किसी भाँति अनुभव किया हो, उसी को स्वप्न में देखें। ४. प्रार्थित—जिसकी जागृत अवस्था में प्रार्थना—इच्छा की हो, उसी को स्वप्न में देखें। ५. कल्पित—जिसकी जागृत अवस्था में कभी भी कल्पना की गयी हो, उसी को स्वप्न में देखें। ६. भाविक—जो कभी न देखा गया हो, न सुना गया हो पर जो भविष्य में होनेवाला हो, उसे स्वप्न में देखा जाए। ७. वात, पित्त और कफ इनके विकृत हो जाने से देखा जाए। इन सात प्रकार के स्वप्नों में से पहले के पाँच प्रकार के स्वप्न प्रायः निष्फल होते हैं। वस्तुतः भाविक स्वप्न का फल ही सत्य होता है।

निमित्त—इस शास्त्र में बाह्य निमित्तों को देखकर आगे होनेवाले इष्टानिष्ट का कथन किया जाता है; क्योंकि संसार में होनेवाले हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि सभी विषय कर्मों की गति पर अवलम्बित हैं। मानव जिस प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का संचय करता है, उन्हीं के अनुसार उन्हें सुख-दुःख भोगना पड़ता है। बाह्य निमित्तों के द्वारा घटनेवाले कर्मों का आभास हो जाता है। इस शास्त्र में इन बाह्य निमित्तों का ही विस्तार के साथ विश्लेषण किया जाता है। जैनाचार्यों ने निमित्तशास्त्र के तीन भेद बतलाए हैं—

जे दिट्ठ भुविरसण्ण जे दिट्ठा कुहमेण कत्ताणं।
सदसंकुलेन दिट्ठा तय-सत्थिएण णाणधिया॥

अर्थात् पृथ्वी पर दिखाई देनेवाले निमित्तों के द्वारा फल का कथन करनेवाला निमित्त शास्त्र, आकाश में दिखाई देनेवाले निमित्तों के द्वारा फल प्रतिपादन करनेवाला निमित्तशास्त्र और शब्द श्रवण मात्र से फल का कथन करनेवाला निमित्त शास्त्र ये तीन निमित्त शास्त्र के प्रधान भेद हैं। आकाश सम्बन्धी निमित्तों का कथन करते हुए लिखा है कि—

सूरोदय अत्थमणे चंदमसरिक्खमग्गहचरियं।
तं पिच्छियं निमित्तं सव्वं आएसिहं कुणह॥

अर्थात्—सूर्योदय के पहले और अस्त होने के पीछे चन्द्रमा, नक्षत्र एवं उल्का आदि के गमन एवं पतन को देखकर शुभाशुभ फल का ज्ञान करना चाहिए। इस शास्त्र में दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम इन तीनों प्रकार के उत्पातों का वर्णन भी विस्तार से किया है।

फलित जैन ज्योतिषशास्त्र शक संवत् की ५वीं शताब्दी में अत्यन्त पल्लवित और पुष्पित था। इस काल में होनेवाले वराहमिहिर जैसे प्रसिद्ध गणक ने सिद्धसेन और देवस्वामी का स्मरण किया है तथा दो-चार योगों में मतभेद भी दिखलाया है। तथा इसी शताब्दी के कल्याणवर्मा ने कनकाचार्य का उल्लेख किया है। यह कनकाचार्य भी जैन गणक प्रतीत होते हैं। इन जैनाचार्यों के ग्रन्थों का पता अद्यावधि नहीं लग पाया है, पर इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ये जैन गणक ज्योतिषशास्त्र के महान् प्रवर्तकों में से थे। संहिताशास्त्र के रचयिताओं में वामदेव का नाम भी बड़े गौरव के साथ लिया गया है। यह वामदेव लोकशास्त्र के वेत्ता, गणितज्ञ एवं संहिताशास्त्र में धुरीण कहे गये हैं। इस प्रकार फलित जैन ज्योतिष विकासशील रहा है।

जैन प्रश्नशास्त्र का मूलाधार

प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार बिना जन्मकुण्डली के फल बताया जाता है। तात्कालिक फल बतलाने के लिए यह शास्त्र बड़े काम का है। जैन ज्योतिष के विभिन्न अंगों में यह एक अत्यन्त विकसित एवं विस्तृत अंग है। उपलब्ध दिगम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थों में प्रश्नग्रन्थों की ही बहुलता है। इस शास्त्र में जैनाचार्यों ने जितने सूक्ष्म फल का विवेचन किया है, उतना जैनेतर प्रश्न ग्रन्थों में नहीं है। प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार प्रश्नों का उत्तर ज्योतिष में तीन प्रकार से दिया जाता है—

पहला—प्रश्नकाल को जानकर उसके अनुसार फल बतलाना। इस सिद्धान्त का मूलाधार समय का शुभाशुभत्व है—प्रश्न समयानुसार तात्कालिक प्रश्नकुण्डली बनाकर उससे ग्रहों के स्थान विशेष के द्वारा फल कहा जाता है। इस सिद्धान्त में मूलरूप से फलादेश सम्बन्धी समस्त कार्य समय पर ही अवलम्बित हैं।

दूसरा—स्वरसम्बन्धी सिद्धान्त है। इसमें फल बतानेवाला अपने स्वर (श्वास) के आगमन और निर्गमन से इष्टानिष्ट फल का प्रतिपादन करता है। इस सिद्धान्त का मूलाधार प्रश्नकर्ता का अदृष्ट है; क्योंकि उसके अदृष्ट का प्रभाव तत्स्थानीय वातावरण पर पड़ता है। इसी से वायु प्रकम्पित होकर प्रश्नकर्ता के अदृष्टानुकूल बहने लगती है और चन्द्र एवं सूर्य स्वर के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह सिद्धान्त मनोविज्ञान के निकट नहीं है, केवल अनुमान पर ही आश्रित है। अतः इसे अति प्राचीन काल का अविकसित सिद्धान्त कह सकते हैं।

तीसरा—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों से फल बतलाना है। इस सिद्धान्त का मूलाधार मनोविज्ञान है, क्योंकि विभिन्न मानसिक परिस्थितियों के अनुसार प्रश्नकर्ता भिन्न-भिन्न प्रश्नाक्षरों का उच्चारण करते हैं। उच्चरित प्रश्नाक्षरों से मानसिक स्थिति का पता लगाकर

आगामी-भावी फल का निर्णय करना इस सिद्धान्त का काम है।

इन तीनों सिद्धान्तों की तुलना करने पर लग्न और स्वर वाले सिद्धान्तों की अपेक्षा प्रश्नाक्षरवाला सिद्धान्त अधिक मनोवैज्ञानिक है तथा पहलेवाले दोनों सिद्धान्त कभी कदाचित् व्यभिचरित भी हो सकते हैं। जैसे उदाहरण के लिए मान लिया कि सौ व्यक्ति एक साथ एक ही समय में एक ही प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए आएँ, तो इस समय का लग्न सभी व्यक्तियों का एक ही होगा तथा उस समय का स्वर भी एक ही होगा। अतः सबका फल सदृश ही आएगा। हाँ, एक-दो सेकिण्ड का अन्तर पड़ने से नवांश, द्वादशांशादि में अन्तर भले ही पड़ जाए, पर इस अन्तर से स्थूल फल में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इससे सभी के प्रश्नों का फल हाँ या ना के रूप में आएगा। लेकिन यह सम्भव नहीं है कि सभी व्यक्तियों के फल एक सदृश हों; क्योंकि किसी का कार्य सिद्ध होगा, किसी का नहीं भी हो। परन्तु तीसरे-प्रश्नाक्षरवाले सिद्धान्त के अनुसार सभी व्यक्तियों के प्रश्नाक्षर एक नहीं होंगे; भिन्न-भिन्न मानसिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होंगे। इससे फल भी सभी का पृथक्-पृथक् आएगा।

जैन प्रश्नशास्त्र में प्रश्नाक्षरों से ही फल का प्रतिपादन किया गया है। इसमें लग्नादि का प्रपंच नहीं है। अतः इसका मूलाधार मनोविज्ञान है। बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों के अधीन मानव मन की भीतरी तह में जैसी भावनाएँ छिपी रहती हैं, वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। मनोविज्ञान के पण्डितों का कथन है—मस्तिष्क में किसी भौतिक घटना या क्रिया का उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया मानव के आचरण में प्रदर्शित हो जाती है। क्योंकि अबाधभावानुषंग से हमारे मन के अनेक गुप्त भाव भावी शक्ति, अशक्ति के रूप में प्रकट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहज में ही मन की धारा और उससे घटित होनेवाले फल को समझ लेता है।

आधुनिक मनोविज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित फ्रॉयड के मतानुसार मन की दो अवस्थाएँ हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकार से निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा नियन्त्रित होती रहती है। प्रश्नों की छान-बीन करने पर इस सिद्धान्त के अनुसार पूछे जाने पर मानव विज्ञान अवस्था विशेष के कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था पर पड़ता है। अतएव प्रश्न के मूल में प्रवेश करने पर संज्ञात इच्छा, असंज्ञात इच्छा, अन्तर्ज्ञात इच्छा और निर्ज्ञात इच्छा ये चार प्रकार की इच्छाएँ मिलती हैं। इन इच्छाओं में से संज्ञात इच्छा बाधा पाने पर नाना प्रकार से व्यक्त होने की चेष्ट करती है तथा इसी के कारण रुद्ध या अवदमित इच्छा भी प्रकाश पाती है। यद्यपि हम संज्ञात इच्छा के प्रकाशकाल में रूपान्तर जान सकते हैं, किन्तु असंज्ञात या अज्ञात इच्छा के प्रकाशित होने पर भी हठात् कार्य देखने से उसे नहीं जान सकते। विशेषज्ञ प्रश्नाक्षरों के विश्लेषण से ही असंज्ञात इच्छा का पता लगा लेते हैं तथा उससे सम्बद्ध भावी घटनाओं को भी जान लेते हैं।

फ्रॉयड ने इसी विषय को स्पष्ट करते हुए बताया कि मानव मन का संचालन प्रवृत्तिमूलक शक्तियों से होता है और ये प्रवृत्तियाँ सदैव उसके मन को प्रभावित करती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का अधिकांश भाग अचेतन मन के रूप में है, जिसे प्रवृत्तियों का अशान्त

समुद्र कह सकते हैं। इन प्रवृत्तियों में प्रधान रूप से काम और गौण रूप से अन्य इच्छाओं की तरंगें उठती रहती हैं। मनुष्य का दूसरा अंश चेतन मन के रूप में है, जो घात-प्रतिघात करनेवाली कामनाओं से प्रादुर्भूत है और उन्हीं को प्रतिबिम्बित करता रहता है। बुद्धि मानव की एक प्रतीक है; उसी के द्वारा वह अपनी इच्छाओं को चरितार्थ करता है। अतः सिद्ध है कि हमारे विचार, विश्वास, कार्य और आचरण जीवन में स्थित वासनाओं की प्रतिच्छाया मात्र हैं। सारांश यह है कि संज्ञात इच्छा प्रत्यक्ष रूप से प्रश्नाक्षरों के रूप में प्रकट होती है और इन प्रश्नाक्षरों में छिपी हुई असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओं को उनके विश्लेषण से अवगत किया जाता है। जैनाचार्यों ने प्रश्नशास्त्र में असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है कि हमारे मस्तिष्क के मध्य स्थित कोष के आभ्यन्तरिक परिवर्तन के कारण मानसिक चिन्ता की उत्पत्ति होती है। मस्तिष्क में विभिन्न ज्ञानकोष परस्पर संयुक्त हैं। जब हम किसी व्यक्ति से मानसिक चिन्ता सम्बन्धी प्रश्न पूछने जाते हैं, तो उक्त ज्ञानकोषों में एक विचित्र प्रकार का प्रकम्पन होता है, जिससे सारे ज्ञानतन्तु एक साथ हिल उठते हैं। इन तन्तुओं में से कुछ तन्तुओं का प्रतिबिम्ब अज्ञात रहता है। प्रश्नशास्त्र के विभिन्न पहलुओं में चर्या, चेष्टा आदि के द्वारा असंज्ञात या निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्ब का ज्ञान किया जाता है। यह स्वयं सिद्ध बात है कि जितना असंज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्बित अंश, जो छिपा हुआ है, केवल अनुमानगम्य है, स्वयं प्रश्नकर्ता भी जिसका अनुभव नहीं कर पाया है; प्रश्नकर्ता की चर्या और चेष्टा से प्रकट हो जाता है। जो सफल गणक चर्या—प्रश्नकर्ता के उठने, बैठने, आसन, गमन आदि का ढंग एवं चेष्टा, बातचीत का ढंग, अंग स्पर्श, हाव-भाव, आकृति-विशेष आदि का मर्मज्ञ होता है, वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-द्वारा भूत और भविष्यकाल सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर बड़े सुन्दर ढंग से दे सकता है। आधुनिक पाश्चात्य फलित ज्योतिष के सिद्धान्तों के साथ प्रश्नाक्षर सम्बन्धी ज्योतिषसिद्धान्त की बहुत कुछ समानता है। पाश्चात्य फलित ज्योतिष का प्रत्येक अंग मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर रखा गया है, इसमें ग्रहों के सम्बन्ध से जो फल बतलाया है, वह जातक और गणक दोनों की असंज्ञात और संज्ञात इच्छाओं का विश्लेषण ही है।

सूक्ष्म फल जानने के लिए अधरोत्तर और वर्गोत्तर वाला नियम निम्न प्रकार बताया है—

अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्गसंयुक्त अधरोत्तर इन वर्गत्रय के संयोगी नौ भंगों—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर के द्वारा अज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओं का विश्लेषण किया है।

जैन प्रश्नशास्त्र में प्रश्नों के प्रधानतः दो भेद बताये हैं—वाचिक और मानसिक। वाचिक प्रश्नों के उत्तर देने की विधि उपर्युक्त है तथा मानसिक प्रश्नों के उत्तर प्रश्नाक्षरों पर से जीव, धातु और मूल ये तीन प्रकार की योनियाँ निकालकर बताये हैं। अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य ष ह ये इक्कीस वर्ण जीवाक्षर; उ ऊ अं त थ द ध प फ़ ब भे व स ये तेरह वर्ण धात्वक्षर और ई ऐ ओ ङ ञ ण न म र ल

ष ये ग्यारह वर्ण मूलाक्षर संज्ञक कहे हैं। प्रश्नाक्षरों में जीवाक्षरों की अधिकता होने पर जीव सम्बन्धिनी, धात्वक्षरों की अधिकता होने पर धातुसम्बन्धिनी और मूलाक्षरों की अधिकता होने पर मूलाक्षरसम्बन्धिनी चिन्ता होती है। सूक्ष्मता के लिए जीवाक्षरों के भी द्विपद, चतुष्पद, अपद, पादसंकुल ये चार भेद बताये हैं अर्थात् आ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपद, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये अक्षर चतुष्पद; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अक्षर अपद और ई और घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पादसंकुल संज्ञक हैं। इस प्रकार योनियों के अनेक भेद-प्रभेदों-द्वारा प्रश्नों की सूक्ष्मता का वर्णन किया है।

जैन प्रश्नशास्त्र का मूलाधार मनोविज्ञान है। वर्गविभाजन में जो स्वर और व्यंजन रखे हैं, वे अत्यन्त सार्थक और मन की अव्यक्त भावनाओं को प्रकाशित करने वाले हैं।

जैन प्रश्नशास्त्र का विकासक्रम

व्यंजन, अंग, स्वर, भौम, छिन्न, अन्तरिक्ष, लक्षण और स्वप्न ये आठ अंग निमित्तज्ञान के माने गये हैं। इनका 'विद्यानुवादपूर्व' में विस्तार से वर्णन आया है। 'परिकर्म' में चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रों के स्वरूप, संचार, परिभ्रमण आये हैं। 'कल्याणवाद' में चान्द्र, नक्षत्र, सौर नक्षत्र, ग्रहण, ग्रहों की स्थिति, मांगलिक कार्यों के मुहूर्त आदि बातों का निरूपण किया गया है। 'प्रश्नव्याकरणांग' में प्रश्नशास्त्र की अनेक बातों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुष्टिप्रश्न एवं मूकप्रश्नों का विचार प्रधानतया उल्लिखित है। इस कल्प के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के मुख से निकली दिव्यध्वनि को ग्रहण करने वाले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने द्वादशांग की रचना एक मुहूर्त में की। उन्होंने दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान—भाव और द्रव्यश्रुत लोहाचार्य को दिया, लोहाचार्य ने जम्बूस्वामी को दिया। उनके निर्वाण के पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य चौदह पूर्व के धारी हुए। उनके पश्चात् विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दस पूर्वों के ज्ञाता तथा शेष चार पूर्वों के एक-देश के ज्ञाता हुए। उनके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के एक देश के ज्ञाता हुए। इस प्रकार प्रश्नशास्त्र का ज्ञान परम्परा रूप में कई शतियों तक चलता रहा।

प्रश्नशास्त्र का सर्वप्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ 'अर्हच्चूडामणिसार' मिलता है। इसके रचयिता भद्रबाहु स्वामी बताये जाते हैं। उपलब्ध अर्हच्चूडामणिसार में ७४ गाथाएँ हैं। इसमें ग्रन्थकर्ता का नाम, प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हाँ, उपलब्ध ग्रन्थ की भाषा और विषयविवेचन को देखने से उसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं रहता। प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हुए लिखा है—

नमिऊण जिणसुरअणचूडामणिकिरणसोहि पयजुयलं।
इय चूडामणिसारं कहिए मए जाणदीवक्खं॥
पढमं तईयसत्तम रघसर पढमतईयवग्गवणाइं।
आलिंगियाहिं सुहया उत्तरसंकडअ णामाइं॥२॥

अर्थात्—देवों के मुकुट में जटित मणियों की किरण से जिनके चरणयुगल शोभित हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर इस 'चूड़ामणिसार' ज्ञानदीपक को बनाता हूँ। प्रथम, तृतीय, सप्तम और नवम स्वर—अ इ ए ओ, प्रथम और तृतीय व्यंजन—क च ट त प य श, ग ज ड द ब ल स इन १८ वर्णों की आलिंगित, सुभग, उत्तर और संकट संज्ञा है। इस प्रकार अक्षरों की नाना संज्ञाएँ बतलाकर फलाफल का विवेचन किया है।

'अर्हच्चूडामणिसार' के पश्चात् प्रश्न ग्रन्थों की परम्परा जैनों में बहुत जोरों से चली। दक्षिण भारत में प्रश्न-निरूपण करने की प्रणाली अक्षरों पर ही आश्रित थी। ५वीं, ६ठी शती में 'चन्द्रोन्मीलन' नाम प्रश्न-ग्रन्थ बनाया गया है। इस ग्रन्थ का प्रमाण चार हजार श्लोक है। अब तक मुझे इसकी सात प्रतियाँ देखने को मिली हैं पर सभी अधूरी हैं। यह प्रश्नग्रन्थ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। इसकी एक प्रति मुझे श्रीमान् पं. सुन्दरलाल जी शास्त्री सागर से मिली है, जिसमें प्रधान श्लोकों की केवल संस्कृत टीका है। 'ज्योतिषमहार्णव' नामक संग्रहग्रन्थ में चन्द्रोन्मीलन मुद्रित भी किया गया है। मुद्रित श्लोकों की संख्या एक हजार से भी अधिक है। श्री जैन-सिद्धान्त भवन में चन्द्रोन्मीलन की जो प्रति है, उसकी श्लोक संख्या तीन सौ है। श्री पं. सुन्दरलाल जी के पास चन्द्रोन्मीलन की दो प्रतियाँ और भी हैं, पर उनको उन्होंने अभी मुझे दिखलाया नहीं है। इसकी एक प्रति गवर्नमेण्ट संस्कृत पुस्तकालय बनारस में है, जिसकी श्लोक संख्या तेरह सौ के लगभग है। यह प्रति सबसे अधिक शुद्ध मालूम होती है। चन्द्रोन्मीलन के नाम से मेरा अनुमान है कि पाँच-सात ग्रन्थ और भी लिखे गये हैं। जैनों की ५वीं ६ठी शताब्दी की यह प्रणाली बहुत प्रसिद्ध थी, इसलिए इस प्रणाली को ही लोग चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली कहने लगे थे। 'चन्द्रोन्मीलन' के व्यापक प्रचार के कारण घबराकर दक्षिण भारत में 'केरल' नामक प्रश्न प्रणाली निकाली गयी है। केरल प्रश्नसंग्रह, केरल प्रश्नरत्न, केरल प्रश्नतत्त्व संग्रह आदि केरलीय प्रश्न ग्रन्थों में चन्द्रोन्मीलन के व्यापक प्रचार का खण्डन किया गया है—

प्रोक्तं चन्द्रोन्मीलनं दिक्वस्त्रैस्तच्चाशुद्धम्।

केरलीयप्रश्नसंग्रह में 'दिक्वस्त्रैः' के स्थान में 'शुक्लवस्त्रैः' पाठ भी है। शेष श्लोक ज्यों का त्यों है। केरल प्रश्न संग्रह की एक हस्तलिखित ताड़पत्रीय प्रति जैन सिद्धान्त-भवन में है। इसमें 'दिक्वस्त्रैः' पाठ है, जो कि दिगम्बर जैनाचार्यों के लिए व्यवहृत हुआ है। प्रश्नशास्त्र का विकास वस्तुतः द्राविड़ नियमों के आधार पर हुआ प्रतीत होता है। अतः 'शुक्लवस्त्रैः' के स्थान में दिक्वस्त्रैः' ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है।

आठवीं, नौवीं और दसवीं शताब्दी में चन्द्रोन्मीलन प्रश्न प्रणाली के साथ-साथ 'आय' प्रश्न प्रणाली का जैनों में प्रचार हुआ। इस प्रणाली पर कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। दामनन्दी के शिष्य भट्ट वोसरि ने आयज्ञानतिलक, मल्लिषेणाचार्य ने आयसद्भाव प्रकरण लिखे हैं। इनके अलावा आयप्रदीपिका, आयप्रश्नतिलक, प्रश्नज्ञानप्रदीप, आयसिद्धि, आयस्वरूप आदि अनेक ग्रन्थ रचयिताओं के नामों से रहित भी मिलते हैं। चन्द्रोन्मीलन और आय प्रश्न प्रणाली में मौलिक अन्तर संज्ञाओं का है। चन्द्रोन्मीलन प्रणाली में अक्षरों की संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत,

अनभिहत, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ संज्ञाएँ हैं तथा आयप्रणाली में अक्षरों की ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और वायस ये सज्ञाएँ बतायी हैं। फलनिरूपण में भी थोड़ा-सा अन्तर है। चन्द्रोन्मीलन में चर्या-चेष्टा को भी स्थान दिया गया है, तथा चर्या-चेष्टा के आधार पर भी फलों का प्रतिपादन किया गया है। 'आयज्ञानतिलक' के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हुए आयप्रणाली की स्वतन्त्रता की ओर संकेत किया है–

नमिऊण नमियनमियं दुत्तरसंसारसायरूतिन्नं।
सव्वन्नं वीरजिणं पुलिंदिणिं सिद्धसंघं च॥
जं दामनन्दिगुरुणो मणयं आयाण जाणिगुज्झं।
तं आयनाणतिलए वोसिरिणा भन्नए पयडं॥२॥

आयप्रश्न प्रणाली का आविष्कर्ता सुग्रीव मुनि को बताया गया है। सुग्रीव मुनि के प्रश्नशास्त्र पर तीन ग्रन्थ बताये जाते हैं, पर मुझे देखने को एक भी नहीं मिला है। आयप्रश्नतिलक, प्रश्नरत्न, आयसद्भाव के नाम सूचियों में मिलते हैं। शकुन पर भीं 'सुग्रीवशकुन' नाम का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बताया जाता है। पुलिन्दिनी आय की अधिष्ठात्री देवी की स्तुति करते हुए भट्टवोसरि ने सुग्रीवमुनि का नामोल्लेख करते हुए लिखा है–

सुग्रीवपूर्वमुनिसूचितमन्त्रबीजैः तेषां वचांसि न कदापि मुधा भवन्ति॥

आयसद्भावप्रकरण में भी सुग्रीव मुनि के सम्बन्ध में बताया गया है–

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत्सम्प्रत्यार्याभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन॥

इससे सिद्ध है कि आय प्रणाली के प्रवर्तक सुग्रीव आदि प्राचीन मुनि थे। आयप्रणाली का प्रचार चन्द्रोन्मीलन प्रणाली से अधिक हुआ है। आयप्रणाली में प्रश्नों के उत्तरों के साथ-साथ चमत्कारी मन्त्र, यन्त्र, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि बातों का विचार-विनिमय भी गर्भित किया है।

एक तीसरी प्रश्नप्रणाली १४वीं, १५वीं और १६वीं शती में प्रश्नलग्न की भी जैनों में प्रचलित हुई है। उत्तर भारत में श्वेताम्बर जैनाचार्यों द्वारा इस प्रणाली में बहुत काम हुआ है। इतर आचार्यों की तुलना में जैनाचार्यों ने प्रश्नविषयक रचनाएँ इस प्रणाली के आधार पर बहुत की हैं। पद्मप्रभसूरि का 'भुवनदीपक', हेमप्रभसूरि का त्रैलोक्यप्रकाश, नरचन्द्र के प्रश्नशतक, प्रश्नचतुर्विंशिका आदि लग्नाधारित प्रश्नग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन प्रश्नग्रन्थों में प्रश्नकालीन लग्न बनाकर फल बताया गया है। 'त्रैलोक्यप्रकाश' में कहा गया है कि लग्नज्ञान का प्रचार म्लेच्छों में है, पर प्रभुप्रसाद से जैनों में भी इसका पूर्ण प्रचार विद्यमान है। लग्न के गूढ़ रहस्य को जैनाचार्यों ने अच्छी तरह जान लिया है–

म्लेच्छेषु विस्तृतं लग्नं कलिकालप्रभावतः।
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते॥६॥

लग्न की प्रशंसा हेमप्रभसूरि ने अत्यधिक की है, उन्होंनें प्रश्नों का उत्तर निकालने के लिए इस प्रणाली को उत्तम माना है। उनके मत से लग्न ही देवता, लग्न ही स्वामी, लग्न ही माता, लग्न ही पिता, लग्न ही लक्ष्मी, लग्न ही सरस्वती, लग्न ही नवग्रह, लग्न ही पृथ्वी, लग्न ही जल, लग्न ही अग्नि, लग्न ही वायु, लग्न ही आकाश और लग्न ही परमानन्द है।[1] यह लग्नप्रणाली दिव्यज्ञान के तुल्य जीव के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, लाभ, हानि, जय, पराजय, जीवन, मरण का साक्षात् निरूपण करनेवाली है। इसमें ग्रहों का रहस्य, भावों—द्वादश स्थानों का रहस्य, ग्रहों का द्वादश भावों से सम्बन्ध आदि विभिन्न दृष्टिकोणों द्वारा फलादेश का निरूपण किया गया है।

लग्नप्रणाली में उत्तर भारत में चार-पाँच सौ वर्षों तक कोई संशोधन नहीं हुआ है। एक ही प्रणाली के आधार से फल प्रतिपादन की प्रक्रिया चलती रही। हाँ, इस प्रणाली में परिवर्धन उत्तरोत्तर होता गया है। इस प्रणाली का सर्वांगपूर्ण और व्यवस्थित ग्रन्थ ११६० श्लोक प्रमाण में 'त्रैलोक्यप्रकाश' नाम का मिलता है। इस ग्रन्थ के प्रणयन के पश्चात् लग्नप्रणाली पर कोई सुन्दर और सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ लिखा ही नहीं गया। यों तो १७वीं और १८वीं शती में भी लग्नप्रणाली पर दो-एक ग्रन्थ लिखे गये हैं, पर उनमें कोई नयी बात नहीं बतायी गयी।

दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में लग्न सम्बन्धिनी प्रश्नप्रणाली जैनों में उत्तर की अपेक्षा भिन्न रूप में मिलती है। दक्षिण में लग्न, द्वादश भाव और उनमें स्थित रहनेवाले ग्रहों पर से सीधे-सादे ढंग से फल नहीं बताया गया है, बल्कि कुछ विशेष संज्ञाएँ निर्धारित कर फल कहा है। 'ज्ञानप्रदीपिका' के प्रारम्भ में बताया गया है—

भूतं भव्यं वर्तमानं शुभाशुभनिरीक्षणम्। पञ्चप्रकारमार्गं च चतुष्केन्द्रबलाबलम्॥
आरूढछत्रवर्गं चाभ्युदयादिबलाबलम्। क्षेत्रं दृष्टिं नरं नारीं युग्मरूपं च वर्णकम्।
मृगादिनररूपाणि किरणान्योजनानि च। आयूरसोदयाद्यं च परीक्ष्य कथयेद् बुधः॥

अर्थात्—भूत, भविष्य, वर्तमान, शुभाशुभ दृष्टि, पाँच मार्ग, चार केन्द्र, बलाबल, आरूढ़, छत्र, वर्ग, उदयबल, अस्तबल, क्षेत्र, दृष्टि, नर, नारी, नपुंसक, वर्ण, मृग तथा नर आदि का रूप, किरण योजन, आयु, रस, उदय आदि की परीक्षा करके बुद्धिमान को, फल कहना चाहिए।

धातु, मूल, जीव, नष्ट, मुष्टि, लाभ, हानि रोग, मृत्यु, भोजन, शयन, शकुन, जन्म, कर्म, अस्त्र, शल्य—मकान में से हड्डी आदि का निकालना, कोष, सेना का आगमन, नदियों की बाढ़, अवृष्टि, अतिवृष्टि, नौका-सिद्धि आदि प्रश्नों के उत्तरों का निरूपण किया गया

---

१. लग्नं देवः प्रभुः स्वामी लग्नं ज्योतिः परं मतम्। लग्नं दीपो महान् लोके लग्नं तत्त्वं दिशन् गुरुः॥
लग्नं माता-पिता लग्नं लग्नं बन्धुर्निजः स्मृतम्। लग्नं बुद्धिर्महालक्ष्मीर्लग्न देवी सरस्वती॥
लग्नं सूर्यो विधुलग्नं भौमो बुधोऽपि च। लग्नं गुरुः कविर्मन्दो लग्नं राहुः सकेतुकः॥
लग्नं पृथ्वी जलं लग्नं लग्नं तेजस्तथानिलः। लग्नं व्योम परानन्दो लग्नं विश्वमयात्मकम्॥
—त्रैलोक्यप्रकाश, श्लो. २-५।

है। इस प्रणाली में द्वादश राशियों की संज्ञाएँ, उनकी भ्रमणवीथियाँ, उनकी विशेष अवस्थाएँ, उनकी किरणें, उनका भोजन, उनका वाहन, उनका आकार-प्रकार, उनकी योजनसंख्या, उनकी आयु, उनका उदय, उनकी धातु, उनका रस, उनका स्थान आदि सैकड़ों संज्ञाओं के आधार पर नाना विचारविनिमयों द्वारा फलादेश का कथन किया गया है। यद्यपि उस लग्नप्रणाली का मूलाधार भी समय का शुभाशुभत्व ही है, किन्तु इसमें विचार-विमर्श करने की विधि त्रैलोक्यप्रकाश, भुवनदीपक, प्रश्नचतुर्विंशिका आदि ग्रन्थों से भिन्न है।

दक्षिण भारत में जैनाचार्यों में इस प्रणाली का प्रचार दसवीं शती से पन्द्रहवीं शती तक पाया जाता है। इस प्रणाली के प्रश्नसम्बन्धी दस-बारह ग्रन्थ मिलते हैं। प्रश्नदीपक, प्रश्नप्रदीप, ज्ञानप्रदीप, रत्नदीपक, प्रश्नरत्न आदि ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। यदि अन्वेषण किया जाए, तो इसी प्रणाली के और भी ग्रन्थ मिल सकते हैं। सोलहवीं शती में दक्षिण में भी उत्तरवाली लग्नप्रणाली मिलती है। ज्योतिषसंग्रह, ज्योतिषरत्न ग्रन्थों के देखने-से मालूम होता है कि चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में ही उत्तर-दक्षिण की लग्न-प्रक्रिया एक हो गयी थी। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के मंगलाचरण जैन हैं, रचनाशैली द्राविड़ है। कहीं-कहीं आरूढ़, क्षत्र आदि संज्ञाएँ भी मिलती हैं; पर ग्रहों और भावों के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं है। इन प्रश्नप्रणालियों के साथ-साथ रमल प्रश्नप्रणाली भी जैनाचार्यों में प्रचलित थी। कालकाचार्य रमलशास्त्र के बड़े भारी ज्ञाता थे। उन्होंने रमल प्रक्रिया में कई नवीन संशोधन किये थे। कुछ विद्वान् तो यहाँ तक मानते हैं कि रमलप्रणाली के भारत में मूल प्रचारक कालकाचार्य ही थे। उन्होंने ही इस प्रणाली का प्रचार संस्कृत भाषा में निबद्ध कर आर्यों में किया।

रमलशास्त्र पर मेघविजय, भोजसागर, विजयदानसूरि के ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थों में पाशक और प्रस्तारज्ञान, तत्त्वज्ञान, शाकुनक्रम, दशक्रम, साक्षज्ञान, वर्णज्ञान, षोडश भाव फल, शून्यचालन, दिनज्ञान, प्रश्नज्ञान, भूमिज्ञान, धनमानपरीक्षा आदि विषय वर्णित हैं। दिगम्बर जैनाचार्यों में रमलशास्त्र का प्रचार नहीं पाया जाता है। उन्होंने रमल के स्थान पर 'पाशाकेवली' नामक प्रणाली का प्रचार किया है। संस्कृत भाषा में सकलकीर्ति, गर्गाचार्य, सुग्रीव मुनि आदि के 'पाशाकेवली' ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थों को देखने से प्रतीत होता है कि दिगम्बर जैनाचार्यों ने रमल के समान 'पाशाकेवली' की भी दो प्रणालियाँ निकाली थीं—१. सहज पाशा और २. यौगिक पाशा। सहज पाशा प्रणाली में 'अरहन्त' शब्द के पृथक्-पृथक् चारों वर्णों को एक चन्दन या अष्टधातु के बने पाशे पर लिखकर इष्टदेव का १०८ बार स्मरण कर अथवा 'ॐ नमः पञ्चपरमेष्ठिभ्यः' मन्त्र का १०८ बार जाप कर पवित्र मन से चार बार उक्त पाशे को डालना चाहिए। इससे जो शब्द बने उसका फल ग्रन्थ में देख लेने से प्रश्नों का फल ज्ञात हो जाएगा।

यौगिक पाशा प्रणाली की दो विधियाँ देखने को मिलती हैं। पहली विधि है कि अष्टधातु के निर्मित पाशे पर १, २, ३ और चार अंकों को निर्मित करें। पश्चात् उपर्युक्त मन्त्र का या इष्टदेव का १०८ बार स्मरण कर पाशे को प्रथम चार बार गिराएँ, उससे जो अंक संख्या निकले उसे एक स्थान पर रख लें। द्वितीय बार पाशे को चार बार फिर गिराएँ,

उससे जो अंक संख्या आए, उसे एक स्थान पर पुनः अंकित कर लें। तृतीय बार इसी प्रकार पाशा गिराने पर जो अंक संख्या प्राप्त हो, उसे भी अंकित कर लें। इन तीनों प्रकार की अंकित अंक संख्या में जो सबसे अधिक अंक संख्या हो, उसी का फलाफल देख लें। द्वितीय विधि यह बतायी गयी है कि प्रथम चार बार पाशा डालने पर यदि निष्पन्न अंक राशि विषम हो, तो विषम राशि लग्न और सम हो तो सम राशि लग्न होती है। राशियों के सम, विषम की गणना द्वितीय बार में डाले गये पाशे के प्रथम अंक से करनी चाहिए। इस प्रकार लग्न राशि का निश्चय कर पाशा द्वारा ग्रहों का भी निर्णय कर राशि, नक्षत्र, ग्रहों के बलाबल, दृष्टि आदि विचार से फलाफल ज्ञात करना चाहिए। द्वितीय प्रणाली का आभास सुग्रीव मुनि के नाम से उल्लिखित पाशा केवली के चार श्लोकों में ही मिलता है। 'पाशाकेवली' की प्रणाली को देखने से ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों में प्रश्ननिरूपण की नाना प्रणालियों में इस प्रणाली को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। संस्कृत भाषा में 'गर्भप्रश्न' और 'अक्षरकेवली' प्रश्नग्रन्थ सरल और आशुबोधगम्य प्रथम प्रणाली-सहज पाशाकेवली में निर्मित हुए हैं। इन दोनों ग्रन्थों में यौगिक पाशाप्रणाली और सहज पाशाप्रणाली मिश्रित है।

हिन्दी भाषा में विनोदीलाल और वृन्दावन के 'अरहन्त' पाशाकेवली सहज पाशाप्रणाली पर मिलते हैं। १६वीं, १७वीं और १८वीं सदियों में पाशाकेवली प्रणाली का प्रश्नोत्तर निकालने के लिए अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार जैन प्रश्नशास्त्र में उत्तरोत्तर विकास होता रहा है।

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का जैन प्रश्नशास्त्र में स्थान

जैन प्रश्नशास्त्र की उपर्युक्त प्रणालियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' में 'चन्द्रोन्मीलन' प्रश्नप्रणाली का वर्णन किया गया है। इस छोटे-से ग्रन्थ में वर्णों का वर्ग विभाजन कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिंगित और दग्ध इन संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इस ग्रन्थ की रचनाशैली बड़ी सरल और रोचक है। 'चन्द्रोन्मीलन' में जहाँ विस्तारपूर्वक फल बताया है, वहाँ इस ग्रन्थ में संक्षेप में। आयप्रणाली की कुछ प्राचीन गाथाएँ इस ग्रन्थ में उद्धृत की गयी हैं। गद्य में स्वयं रचयिता ने 'आयप्रश्नप्रणाली' पर प्रकाश डाला है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से इस ग्रन्थ में सभी आवश्यक बातें आ गयी हैं। कतिपय प्रश्नों के उत्तर विलक्षण ढंग से दिये गये हैं। नष्ट जन्मपत्र बनाने की विधि इसकी सर्वथा नवीन और मौलिक है। यह विषय 'आयप्रश्नप्रणाली' में गर्भित नहीं होता है। चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली में नष्ट जन्मपत्र निर्माण का विषय आ जाता है, परन्तु चन्द्रोन्मीलन ग्रन्थ की अब तक जितनी प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें यह विषय नहीं आया है।

'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' को देखने से मालूम होता है कि यह ग्रन्थ चन्द्रोन्मीलन प्रणाली के विस्तार को संक्षेप में समझाने के लिए लिखा गया है। इस शैली के अन्य ग्रन्थों में जिस बात को दस-बीस श्लोकों में कहा गया है, इस ग्रन्थ में उसी बात को एक छोटे-से

गद्य अंश में कह दिया है। रचयिता की अभिव्यंजना शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। इसमें एक भी शब्द व्यर्थ नहीं आया है। भाषा का कम प्रयोग करने पर भी ग्रन्थकार को जिस बात का निरूपण करना चाहिए, सरलता से कर दिया है। फलित ज्योतिष के प्रश्न ग्रन्थों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इसका कलेवर 'आयज्ञानतिलक' या 'आयसद्भाव' की तुलना में बहुत कम है, फिर भी विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इसका स्थान उपलब्ध जैन प्रश्नसाहित्य में महत्त्वपूर्ण है। इस एक ग्रन्थ के सांगोपांग अध्ययन से कोई भी व्यक्ति प्रश्नशास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। 'प्रश्नचूडामणि' नाम का एक ग्रन्थ चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली की संशोधित केरल प्रश्नप्रणाली में भी है; पर इस ग्रन्थ में वह खूबी नहीं जो इसमें है। प्रश्नचूडामणि या दिव्यचूड़ामणि में पद्यों में वर्णों के अष्टवर्गों का निरूपण कियां है तथा फलकथन में कई स्थानों में त्रुटियाँ हैं। 'प्रश्नचूडामणि' ग्रन्थ भी जैनाचार्य द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। इसमें मंगलाचरण नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में 'ऊँ शान्ति श्रीजिनाय नमः' आया है। यह पाठ मूल ग्रन्थकार का प्रतीत होता है।

जैन प्रश्नशास्त्र में 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' स्थान विषयनिरूपण शैली की अपेक्षा से यदि सर्वोपरि माना जाए, तो भी अत्युक्ति न होगी। इस एक ग्रन्थ में 'आयप्रश्नप्रणाली' 'चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली' तथा 'कल्पितसंज्ञालग्नप्रणाली' इन तीनों का सामान्य आभास मिल जाता है। यों तो इसमें 'चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली' का ही अनुकरण किया गया है।

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का विषय-परिचय

इस ग्रन्थ में अ क च ट त प य श अथवा अ ए क च ट त प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग; इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग; ई औ घ झ ढ ध भ व ह इन अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का पंचम वर्ग बताया गया है। इन अक्षरों को प्रश्नकर्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों से ग्रहण कर अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को स्थापित कर प्रश्नकर्ता से स्पर्श कराके अच्छी तरह फलाफल का विचार करना चाहिए। संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत और अभिघातित इन पाँचों द्वारा तथा आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन क्रियाविशेषणों द्वारा प्रश्नों के फलाफल का विचार करना चाहिए।

प्रथम वर्ग और तृतीय वर्ग के संयुक्त अक्षर प्रश्नवाक्य में हों तो वह प्रश्नवाक्य संयुक्त कहलाता है। प्रश्नवर्णों में अ इ ए ओ ये स्वर हों तथा क च ट त प श ग ज ड द ब ल स ये व्यंजन हों, तो संयुक्त संज्ञक होता है। संयुक्त प्रश्न होने पर पृच्छक का कार्य सिद्ध होता है। यदि पृच्छक लाभ, जय, स्वास्थ्य, सुख और शान्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने आया है, तो संयुक्त प्रश्न होने पर उसके वे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। यदि प्रश्नवर्णों में कई वर्गों के अक्षर हैं अथवा प्रथम, तृतीय वर्ग के अक्षरों की बहुलता होने पर भी संयुक्त प्रश्न ही माना जाता है। जैसे पृच्छक के मुख से प्रथम वाक्य 'कार्य' निकला, इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया। इसका क् + आ + र् + य् + अ यह स्वरूप हुआ। इस विश्लेषण में

क + य् + अ ये तीन अक्षर प्रथम वर्ग के हैं तथा आ और र् द्वितीय वर्ग के हैं। यहाँ प्रथम वर्ग के तीन वर्ण और द्वितीय वर्ग के दो वर्ण हैं, अतः प्रथम द्वितीय वर्ग का संयोग होने से यह प्रश्न संयुक्त नहीं कहलाएगा।

प्रश्न पूछने के लिए जब कोई आए तो उसके मुख से जो पहला वाक्य निकले, उसी को प्रश्नवाक्य मानकर अथवा उससे किसी पुष्प, फल, देवता, नदी और पहाड़ का नाम पूछकर अर्थात् प्रातः काल में आने पर पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायंकाल में नदी या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नवाक्य ग्रहण करना चाहिए। पृच्छक के प्रश्न वाक्य का स्वर, व्यंजनों के अनुसार विश्लेषण कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन आठ भेदों के द्वारा फल का निर्णय करना चाहिए।

यदि प्रश्नवाक्य में संयुक्त वर्णों की अधिकता हो—प्रथम और तृतीय वर्ग के वर्ण अधिक हों अथवा प्रश्नवाक्य का प्रारम्भ कि, चि, टि, ति, पि, यि, शि, को, चो, टो, तो, पो, यो, शो, ग, ज, ड, द, ब, ल, स, गे, जे, दे, वे, ले, से अथवा, क् + ग्, क् + ज्, क् + ड्, क् + द्, क् + ब्, क् + ल्, क् + स्, च् + ज्, च् + ड, च् + द्, च् + ब्, च् + ल्, च् + स्, ट् + ग्, ट् + ज्, ट् + ड्, ट् + द्, ट् + ब्, ट् + ल्, ट् + स्, त् + ग्, त् + ज्, त् + ड्, त् + द्, त् + ब, त् + ल, त् + स्, प् + ग्, प् + ज्, प् + ड्, प् + द्, प् + ब्, प् + ल्, प् + स्, य् + ग्, य + ज्, य् + ड्, य् + द्, य् + ब्, य् + ल्, य् + स्, श् + ग्, श् + ज्, श् + ड्, श् + द्, श् + ब्, श् + ल्, श् + स्, ग् + क्, ग् + च्, ग् + ट्, ग् + त्, ग् + प्, ग् + य्, ग् + श्, ज् + क्, ज् + च्, ज् + ट्, ज् + प्, ज् + य्,ज् + श्, ड् + क्, ड् + च्, ड् + ट्, ड् + त्, ड् + प्, ड् + य्, ड् + श्, द् + क्, द् + च्, द् + ट्, द् + त्, द् + प्, द् + य्, द् + श्, ब् + क्, ब् + च्, ब् + ट्, ब् + त्, ब् + प्, ब् + य्, ब् + श्, ल् + क्, ल् + च्, ल् + ट्, ल् + त्, ल् + य्, ल् + श्, स् + क्, स् + च्, स् + ट्, स् + त्, स् + प्, स् + य्, स् + श् से होता हो तो संयुक्त प्रश्न होता है, संयुक्त प्रश्न का फल शुभकारक बताया है।

प्रथम और द्वितीय वर्ग, द्वितीय और चतुर्थ वर्ग, तृतीय और चतुर्थ वर्ग एवं चतुर्थ और पंचम वर्ग के वर्णों के मिलने पर असंयुक्त प्रश्न कहलाता है। प्रथम और द्वितीय वर्गाक्षरों के संयोग से—क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, य र इत्यादि; द्वितीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों से संयोग से—ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ, र व, इत्यादि; तृतीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से—ग घ, ज झ, ड ढ, द ध, ब भ, व ल इत्यादि एवं चतुर्थ और पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से—घ ङ, झ ञ, ढ ण, ध न, भ म इत्यादि विकल्प बनते हैं। असंयुक्त प्रश्न होने से फल की प्राप्ति बहुत दिनों के बाद होती है। यदि प्रथम द्वितीय वर्गों के अक्षर मिलने से असंयुक्त प्रश्न हो, तो धनलाभ, कार्य-सफलता और राजसम्मान अथवा जिस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा गया हो, उस फल की प्राप्ति तीन महीने के उपरान्त होती है। द्वितीय चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो, तो मित्र-प्राप्ति, उत्सववृद्धि, कार्यसाफल्य की प्राप्ति छह महीने में होती है। तृतीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो, तो अल्पलाभ, पुत्र प्राप्ति, मांगल्यवृद्धि और प्रियजनों से झगड़ा एक महीने के अन्दर होता है। चतुर्थ और

पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो, तो घर में विवाह आदि मांगलिक उत्सवों की वृद्धि, स्वजन-प्रेम, यशःप्राप्ति, महान् कार्यों में लाभ और वैभव की वृद्धि इत्यादि फलों की प्राप्ति शीघ्र होती है।

यदि पृच्छक रास्ते में हो, शयनागार में हो, पालकीपर सवार हो, मोटर, साइकिल, घोड़े, हाथी आदि किसी भी सवारी पर सवार हो तथा हाथ में कुछ भी चीज न लिये हो, तो असंयुक्त प्रश्न होता है। यदि पृच्छक पश्चिम दिशा की ओर मुँह कर प्रश्न करे तथा प्रश्न करते समय कुर्सी, टेबुल, बेंच अथवा अन्य लकड़ी की वस्तुओं को छूता हुआ हो या नोंचता हुआ प्रश्न करे, तो उस प्रश्न को भी असंयुक्त जानना चाहिए। असंयुक्त प्रश्न का फल प्रायः अनिष्टकर ही होता है। प्रस्तुत ग्रन्थों में असंयुक्त प्रश्न में चिन्ता, मृत्यु, पराजय, हानि एवं कार्यनाश आदि फल बताये गये हैं।

यदि प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर गा, जा, डा, दा, बा, ला, सा, गै, जै, डै, दै, बै, लै, सै, घि, झि, ढि, भि, वि, हि, घो, झो, ढो, भो, वो, हो, में से कोई हो तो असंयुक्त प्रश्न होता है। इस प्रकार से असंयुक्त प्रश्न का फल अशुभ होता है। कार्य विनाश, मानसिक चिन्ताएँ, मृत्यु आदि फल ढो, झो, हो, लै आद्य प्रश्नाक्षरों के होने पर तीन महीने के भीतर होते हैं।

प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों में कख, खग, गघ, घङ, चछ, छज, जझ, झञ, डठ, ठड, ढण, तथ, थद, दध, धन, पफ, फब, बभ, भम, मय, यर, रल, लव, वश, शष, षस एवं सह, इन वर्णों के क्रमशः विपर्यय होने पर—परस्पर में पूर्व और उत्तरवर्ती हो जाने पर अर्थात् फप, बफ, भब, मभ, रय, लर, वल, शव, षश, सष एवं हस होने पर अभिहत प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्नाक्षरों के होने पर कार्यसिद्धि नहीं होती है। प्रश्नवाक्य के विश्लेषण करने पर पंचमवर्ग के वर्णों की संख्या अधिक हो तो भी अभिहत प्रश्न होता है। प्रश्नवाक्य का आरम्भ उपर्युक्त अक्षरों के संयोग से निष्पन्न वर्गों से हो, तो अभिहत प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्न का फल भी अशुभ है।

आकार स्वर सहित और अन्य स्वरों से रहित अ, क, च, ट, त, प, य, श, ङ, अ, ण, न, म ये प्रश्नाक्षर या प्रश्नवाक्य के आद्यक्षर हों तो अनभिहत प्रश्न होता है। अनभिहत प्रश्नाक्षर स्ववर्गाक्षरों में हों तो व्याधि-पीड़ा और अन्य वर्गाक्षरों में हों, तो शोक, सन्ताप, दुःख, भय और पीड़ा फल होता है। जैसे मोतीलाल नामक व्यक्ति प्रश्न पूछने आया। प्रश्नवाक्य पूछने पर उसने 'चमेली' का नाम लिया। चमेली यह प्रश्नवाक्य कौन-सा है? यह जानने के लिए उस वाक्य का विश्लेषण किया, तो प्रश्नवाक्य का प्रारम्भिक अक्षर च है, इसमें अ स्वर और च् व्यंजन का संयोग है, द्वितीय वर्ण 'मे' में ए स्वर और म् व्यंजन का संयोग है तथा तृतीय वर्ण 'ली' में ई स्वर और ल् व्यंजन का संयोग है। च् + अ् + म् + ए + ल् + ई इस विश्लेषण में अ + च् + म् ये तीन वर्ण अनभिहत, ई अभिधूमित, आलिंगित और ल् अभिहत संज्ञक हैं। 'परस्परं शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः' इस नियम के अनुसार यह प्रश्न अनभिहत हुआ, क्योंकि सबसे अधिक वर्ण अनभिहत प्रश्न के हैं। अथवा प्रथम वर्ण जिस प्रश्न का हो, उसी संज्ञक प्रश्नवाक्य को मानना चाहिए, जैसे ऊपर के

प्रश्नवाक्य 'चमेली' में प्रथम अक्षर 'च' है। यह अनभिहत प्रश्नवाक्य का है, अतः अनभिहत प्रश्न माना जाएगा। इसका फल कार्य-असिद्धि कहना चाहिए।

प्रश्नश्रेणी के सभी वर्ण चतुर्थ वर्ग और प्रथम वर्ग के हों अथवा पंचम वर्ग और द्वितीय वर्ग के हों तो अभिघातित प्रश्न होता है। इस प्रश्न का फल अत्यन्त अनिष्टकर बताया गया है। यदि पृच्छक कमर, हाथ, पैर और छाती को खुजलाता हुआ प्रश्न करे तो भी अभिघातित प्रश्न होता है।

प्रश्नवाक्य के प्रारम्भ में या समस्त प्रश्नवाक्य में अधिकांश स्वर अ इ ए औ ये चार हों तो आलिंगित प्रश्न, आ ई ऐ औ ये चार हों तो अभिधूमित प्रश्न और उ ऊ अं अः ये चार हों तो दग्ध प्रश्न होता है। आलिंगित प्रश्न होने पर कार्यसिद्धि, अभिधूमित होने पर धनलाभ, कार्यसिद्धि, मित्रागमन एवं यशलाभ और दग्ध प्रश्न होने पर दुःख, शोक, चिन्ता पीड़ा एवं धनहानि होती है। जब पृच्छक दाहिने हाथ से दाहिने अंग को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो आलिंगित, दाहिने या बायें हाथ से समस्त शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो अभिधूमित प्रश्न एवं रोते हुए नीचे की ओर दृष्टि किये हुए प्रश्न करे तो दग्ध होता है। प्रश्नाक्षरों के साथ-साथ उपर्युक्त चर्या-चेष्टा का भी विचार करना आवश्यक है। यदि प्रश्नाक्षर आलिंगित हों और पृच्छक की चेष्टा दग्ध प्रश्न की हो, ऐसी अवस्था में फल मिश्रित कहना चाहिए। प्रश्नवाक्य में अथवा प्रश्नवाक्य का आद्य स्वर आलिंगित होने पर तथा चेष्टा-चर्या के अभिधूमित या दग्ध होने पर प्रश्न का फल मिश्रित होगा, पर इस अवस्था में गणक को अपनी बुद्धि का विशेष उपयोग करना होगा। यदि प्रश्नाक्षरों में आलिंगित स्वरों की प्रधानता है, तो उसे निस्संकोच रूप से आलिंगित प्रश्न का फल कहना चाहिए, भले ही चर्या-चेष्टा अन्य प्रश्न की है।

उदाहरण—किसी ने आकर पूछा 'मेरा कार्य सिद्ध होगा या नहीं?' इस प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर विश्लेषण किया तो—

म् + ए + र् + आ + क् + आ + र् + य् + अ + स् + इ + द् + ध् + अ + ह + ओ + ग + आ यह स्वरूप हुआ। इसमें अ, अ, इ, ए, ओ, ये पाँच अक्षर स्वर आलिंगित और आ, आ, आ ये तीन अभिधूमित प्रश्न के हुए। "परस्परम् अक्षराशि शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः" इस नियम के अनुसार शोधन किया, तो आलिंगित प्रश्न के दो स्वर अवशेष आये—५ आलिंगित, ३ अभिधूमित=२ स्वर आलिंगित। अतः यह प्रश्न आलिंगित हुआ। यदि इस पृच्छक की चर्या-चेष्टा अभिधूमित प्रश्न की हो, तो मिश्रित फल होने पर भी आलिंगित प्रश्न का ही फल प्रधानरूप से कहना चाहिए।

उपर्युक्त आठ प्रकार से प्रश्न का विचार करने के पश्चात् अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्ग संयुक्त अधर इन भंगों के द्वारा भी प्रश्नों का विचार करना चाहिए। उत्तर के नौ भेद कह गये हैं—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर। अ और कवर्ग उत्तरोत्तर, चवर्ग और टवर्ग उत्तराधर, तवर्ग और पवर्ग अधरोत्तर एवं यवर्ग और शवर्ग अधराधर होते हैं। प्रथम और तृतीय वर्ग वाले अक्षर वर्गोत्तर, द्वितीय और चतुर्थ

वर्गवाले अक्षर अक्षरोत्तर एवं पंचम वर्गवाले अक्षर दोनों—प्रथम और तृतीय मिला देने से क्रमशः वर्गोत्तर और वर्गाधर होते हैं।

क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये उन्नीस वर्ण उत्तरसंज्ञक, ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह ये चौदह वर्ण अधर संज्ञक, अ इ उ ए ओ अं ये छह वर्ण स्वरोत्तरसंज्ञक; अ च त य उ ज द ल ये आठ वर्ण गुणोत्तर संज्ञक और क ट प श ग ड व ह ये आठ वर्ण गुणाधर संज्ञक हैं। संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत एवं अनभिहत आदि आठ प्रकार के प्रश्नों के साथ नौ प्रकार के इन प्रश्नों का भी विचार करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता के प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान के वाक्याक्षर उत्तर एवं द्वितीय और चतुर्थ स्थान के वाक्याक्षर अधर कहलाते हैं। यदि प्रश्न में दीर्घाक्षर प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान में हों तो लाभ करानेवाले होते हैं, शेष स्थानों में रहनेवाले ह्रस्व और प्लुताक्षर हानि करानेवाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरों पर-से जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, जय, पराजय आदि फलों को ज्ञात कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से आचार्य ने वाचिक प्रश्नों का विचार किया है।

ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न दो प्रकार के बताये हैं—मानसिक और वाचिक। वाचिक प्रश्न में प्रश्नकर्ता जिस बात को पूछना चाहता है, उसे ज्योतिषी के सामने प्रकट कर उसका फल ज्ञात करता है। परन्तु मानसिक प्रश्न में पृच्छक अपने मन की बात नहीं बतलाता है; केवल प्रतीकों फल, पुष्प, नदी, पहाड़, देवता आदि के नाम द्वारा ही ज्योतिषी को उसके मन की बात जानकर कहना पड़ता है।

संसार में प्रधानतया तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं—जीव, धातु और मूल। मानसिक प्रश्न भी उक्त तीन ही प्रकार के हो सकते हैं। आचार्य ने सुविधा के लिए इनका नाम तीन प्रकार की योनि—जीव, धातु और मूल रखा है। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इन बारह स्वरों में से अ आ इ ए ओ अः ये छह स्वर तथा क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये पन्द्रह व्यंजन इस प्रकार कुल २१ वर्ण जीव संज्ञक; उ ऊ अं ये तीन स्वर तथा त थ द ध प फ ब भ व स ये दस व्यंजन इस प्रकार कुल १३ वर्ण धातु संज्ञक और ई ऐ औ ये तीन स्वर तथा ङ ञ ण न म र ल ष ये आठ व्यंजन इस प्रकार कुल ११ वर्ण मूल संज्ञक होते हैं।

जीवयोनि में अ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपद संज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये अक्षर चतुष्पद संज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अक्षर अपद संज्ञक और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पादसंकुल संज्ञक होते हैं। द्विपद योनि के देव, मनुष्य, पशु या पक्षी और राक्षस ये चार भेद हैं अ क ख ग घ ङ प्रश्न वर्णों के होने पर देवयोनि; च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण प्रश्न वर्णों के होने पर मनुष्य योनि; त थ द ध न प फ ब भ म के होने पर पशु या पक्षी योनि और य र ल व श ष स ह प्रश्नवर्णों के होने पर राक्षस योनि होती है। देवयोनि के चार भेद हैं—कल्पवासी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी। देवयोनि के वर्णों में अकार की मात्रा होने पर कल्पवासी, इकार की मात्रा होने

पर भवनवासी, एकार की मात्रा होने पर व्यन्तर और ओकार की मात्रा होने पर ज्योतिष्कदेवयोनि होती है।

मनुष्य योनि के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज ये पाँच भेद हैं। अ ए क च ट त प य श ये वर्ण ब्राह्मण योनि संज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण क्षत्रिय योनि संज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण वैश्य योनि संज्ञक; ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये वर्ण शूद्रयोनि संज्ञक एवं उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये वर्ण अन्त्यज योनि संज्ञक होते हैं। इन पाँचों योनियों के वर्णों में यदि अ इ ए ओ ये मात्राएँ हों तो पुरुष, आ ई ऐ औ ये मात्राएँ हों तो स्त्री एवं उ ऊ अं अः ये मात्राएँ हों तो नपुंसक संज्ञक होते हैं। पुरुष, स्त्री और नपुंसक में भी आलिंगित प्रश्न होने पर गौर वर्ण, अभिधूमित होने पर श्याम और दग्ध होने पर कृष्ण वर्ण होता है। आलिंगित प्रश्न होने पर बाल्यावस्था, अभिधूमित होने पर युवावस्था और दग्ध प्रश्न होने पर वृद्धावस्था होती है। आलिंगित प्रश्न होने पर सम–न कद अधिक बड़ा न अधिक छोटा, अभिधूमित होने पर लम्बा और दग्ध प्रश्न होने पर कुब्जक और बौना होता है।

त थ द ध न प्रश्नाक्षरों के होने पर जलचर पक्षी और प फ ब भ म प्रश्नाक्षरों के होने पर थलचर पक्षियों की चिन्ता कहनी चाहिए। राक्षस योनि के दो भेद हैं–कर्मज और योनिज। भूत, प्रेतादि राक्षस कर्मज कहलाते हैं और असुरादि को योनिज कहते हैं। त थ द ध न प्रश्नाक्षरों के होने पर कर्मज और श ष स ह प्रश्नाक्षरों के होने पर योनिज राक्षस की चिन्ता समझनी चाहिए।

चतुष्पद योनि के खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी ये चार भेद हैं। यदि प्रश्नाक्षरों में आ और ऐ स्वर हों तो खुरी; छ और ठ प्रश्नाक्षरों में हों तो नखी; थ और फ प्रश्नाक्षरों में हों तो दन्ती एवं र और ष प्रश्नाक्षरों में हों तो शृंगी योनि होती है। खुरी योनि के ग्रामचरः और अरण्यचर ये दो भेद हैं। आ, ऐ प्रश्नाक्षर के होने पर ग्रामचर–घोड़ा, गधा, ऊँट आदि मवेशी की चिन्ता और ख प्रश्नाक्षर होने पर वनचारी पशु–रोझ, हरिण, खरगोश आदि पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिए।

नखी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। प्रश्नवाक्य में छ प्रश्नाक्षर हों तो ग्रामचर अर्थात् कुत्ता, बिल्ली आदि नखी पशुओं की चिन्ता और ठ प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर–व्याघ्र, चीता, सिंह, भालू आदि जंगली जीवों की चिन्ता कहनी चाहिए।

दन्ती योनि के दो भेद हैं–ग्रामचर और अरण्यचर। प्रश्नवाक्य में थ अक्षर हो तो ग्रामचर–शूकर आदि ग्रामीण पालतू दन्ती जीवों की चिन्ता और फ अक्षर हो तो अरण्यचर जंगली हाथी, सेही आदि दन्ती पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिए।

शृंगी योनि के दो भेद हैं–ग्रामचर और अरण्यचर। प्रश्नवाक्य में र अक्षर हो तो भैंस, बकरी, गाय, बैल आदि पालतू सींगवाले पशुओं की चिन्ता एवं ष अक्षर हो तो अरण्यचर–हरिण, कृष्णसार आदि वनचारी सींगवाले पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिए।

अपद योनि के दो भेद हैं–जलचर और थलचर। प्रश्नवाक्य में इ ओ ग ज ड अक्षर

हों, तो जलचर–मछली, शंख इत्यादि की चिन्ता और द ब ल स अक्षर हों, तो साँप, मेंढक आदि थलचर अपदों की चिन्ता समझनी चाहिए।

पादसंकुल योनि के दो भेद हैं–अण्डज और स्वेदज। इ और घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर अण्डज संज्ञक–भ्रमर, पंतग इत्यादि और ध भ व ह ये प्रश्नाक्षर स्वेदक संज्ञक–जूँ, खटमल आदि हैं।

धातु योनि के भी दो भेद बताये हैं–धाम्य और अधाम्य। त द प ब उ अं स इन प्रश्नाक्षरों के होने पर धाम्य धातु योनि और घ थ ध फ ऊ ब ए इन प्रश्नाक्षरों के होने पर अधाम्य धातु योनि होती है। धाम्य योनि के आठ भेद हैं–सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, राँगा, काँसा, लोहा, सीमा और पित्तल। धाम्य योनि के प्रकारान्तर से दो भेद हैं–घटित और अघटित। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों में रहने पर घटित और अधराक्षर रहने पर अघटित धातु योनि होती है। घटित धातु योनि के तीन भेद हैं–जीवाभरण, आभूषण, गृहाभरण–बर्तन और नाणक–सिक्के, नोट आदि। अ ए क च ट त प य श प्रश्नाक्षर हों, तो द्विपदाभरण–दो पैरवाले जीवों के आभूषण होते हैं। इसके तीन भेद हैं–देवता-भूषण, पक्षिआभूषण और मनुष्याभूषण। मनुष्याभूषण के शिरसाभरण, कर्णाभरण, नासिकाभरण, ग्रीवाभरण, हस्ताभरण, जंघाभरण और पादाभरण ये सात भेद हैं। इन आभूषणों में मुकुट, खौर, सीसफूल आदि शिरसाभरण; कानों में पहने जानेवाले कुण्डल, एरिंग आदि कर्णाभरण, नाक में पहनी जानेवाली लौंग, बाली, नथ आदि नासिकाभरण, कण्ठ में पहनी जानेवाली हँसुली, हार, कण्ठी आदि ग्रीवाभरण; हाथों में पहने जानेवाले कंकण, मुदरी, छल्ला, छाप आदि हस्ताभरण; जंघों में बाँधे जानेवाले घुँघरू, क्षुद्रघण्टिका आदि जंघाभरण और पैरों में पहने जानेवाले बिछुए, छल्ला, पाजेब आदि पादाभरण होते हैं। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नाक्षरों के होने पर मनुष्याभूषण की चिन्ता एवं ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह प्रश्नाक्षरों के होने पर स्त्रियों के आभूषणों की चिन्ता समझनी चाहिए।

उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दक्षिण अंग का आभूषण और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर वाम अंग का आभूषण समझना चाहिए। अ क ख ग घ ङ प्रश्नाक्षरों के होने पर या प्रश्नवर्णों में उक्त प्रश्नाक्षरों की बहुलता होने पर देवों के उपकरण–छत्र, चामर आदि अथवा आभूषण (पद्मावती देवी एवं धरणेन्द्र आदि रक्षक देवों के आभूषण) और त थ द ध न प फ ब भ म इन प्रश्नवर्णों के होने पर पक्षियों के आभूषणों की चिन्ता कहनी चाहिए। प्रश्नकर्ता के प्रश्नवाक्य में प्रथम वर्ण की मात्रा अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई हो, तो जीवाभरण की चिन्ता; आ ई ऐ औ इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो गृहाभरण की चिन्ता और उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो सिक्के, नोट, रुपये आदि की चिन्ता समझनी चाहिए। प्रश्नवाक्य के आद्य वर्ण की मात्रा अ आ इन दोनों में से कोई हो तो शिरसाभरण की चिन्ता; इ ई इन दोनों में-से कोई हो तो कर्णाभरण की चिन्ता, उ ऊ इन दोनों मात्राओं में से कोई हो तो नासिकाभरण की चिन्ता; ए मात्रा के होने से ग्रीवाभरण की चिन्ता; ऐ मात्रा के होने से कण्ठाभरण की चिन्ता; ऋ तथा संयुक्त व्यंजन में उकार की मात्रा होने से हस्ताभरण की चिन्ता; ओ औ इन मात्राओं

में-से किसी के होने पर जंघाभरण की चिन्ता और अं अः इन दोनों मात्राओं में-से किसी के होने पर पादाभरण की चिन्ता समझनी चाहिए।

यदि प्रश्नवाक्य का आद्य वर्ण क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स इन अक्षरों में-से कोई हो तो हीरा, माणिक्य, मरकत, पद्मराग और मूंगा की चिन्ता; ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह इन अक्षरों में-से कोई हो तो हरिताल, शिला, पत्थर आदि की चिन्ता एवं उ ऊ अं अः इन स्वरों से युक्त व्यंजन प्रश्न के आदि में हो तो शर्करा (चीनी), लवण, बालू आदि की चिन्ता समझनी चाहिए। यदि प्रश्नवाक्य के आदि में अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई हो तो हीरा, मोती, माणिक्य आदि जवाहरात की चिन्ता; आ ई ऐ औ इन मात्राओं में से कोई हो तो शिला, पत्थर, सीमेंट चूना, संगमरमर आदि की चिन्ता एवं उ ऊ अं अः इन मात्राओं में-से कोई मात्रा हो तो चीनी, बालू आदि की चिन्ता कहनी चाहिए। मृष्टिका प्रश्न में मुट्ठी के अन्दर भी इन्हीं प्रश्न विचारों के अनुसार योनि का निर्णय कर वस्तु कहनी चाहिए।

मूल योनि के चार भेद हैं—वृक्ष, गुल्म, लता और वल्ली। यदि प्रश्नवाक्य के आद्यवर्ण की मात्रा आ हो तो वृक्ष, ई हो तो गुल्म, ऐ हो तो लता और औ हो तो वल्ली समझनी चाहिए। पुनः मूलयोनि के चार भेद कहे गये हैं—वल्कल, पत्ते, फूल और फल। प्रश्नवाक्य के आदि में, क च ट त वर्णों के होने पर बल्कल, ख छ ठ थ वर्णों के होने पर पत्ते; ग ज ड द वर्णों के होने पर फूल और घ झ ढ ध वर्णों के होने पर फल की चिन्ता कहनी चाहिए। इन चारों भेदों के भी दो-दो भेद हैं—भक्ष्य और अभक्ष्य। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्न वर्णों के होने पर या प्रश्नवाक्य में उक्त वर्णों की अधिकता होने पर भक्ष्य और ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष प्रश्नवर्णों के होने पर या प्रश्नवाक्य में इन वर्णों की अधिकता होने पर अभक्ष्य मूल योनि की चिन्ता कहनी चाहिए। भक्ष्याभक्ष्य के अवगत हो जाने पर उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूल योनि की चिन्ता समझनी चाहिए। अथवा क च ट त प य श प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित एवं घ झ ढ ध भ व स प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूल योनि की चिन्ता समझनी चाहिए।

उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर आर्द्र मूल योनि, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर शुष्क, उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर स्वदेशस्थ, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर परदेशस्थ मूल योनि समझनी चाहिए। ङ ञ ण न म प्रश्नाक्षरों के होने पर सूखे हुए तृण, काठ, देवदारु, दूब, चन्दन आदि समझने चाहिए। इ और ज प्रश्नवर्णों के होने पर शस्त्र और वस्त्र सम्बन्धी मूल योनि कहनी चाहिए।

जीवयोनि से मानसिक चिन्ता और मुष्टिगत प्रश्नों के उत्तरों के साथ चोर की जाति, अवस्था, आकृति, रूप, कद, स्त्री, पुरुष एवं बालक आदि का पता लगाया जा सकता है। धातु योनि में चोरी गयी वस्तु का स्वरूप, नाम पृच्छक के बिना कहे भी ज्योतिषी जान सकता है। धातु योनि के विश्लेषण से कहा जा सकता है कि अमुक प्रकार की वस्तु चोरी गयी

है या नष्ट हुई है। इन योनियों के विचार द्वारा किसी भी व्यक्ति की मनःस्थित विचारधारा का पता सहज में लगाया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में मूक प्रश्नों के अनन्तर मुष्टिका प्रश्नों का विचार किया है। यदि प्रश्नाक्षरों में पहले के दो स्वर आलिंगित हों और तृतीय स्वर अभिधूसित हो तो मुट्ठी में श्वेत रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर अभिधूमित हों और तृतीय स्वर दग्ध हो तो पीले रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर दग्ध और तृतीय आलिंगित हो तो रक्त-श्याम वर्ण की वस्तु; प्रथम स्वर दग्ध, द्वितीय आलिंगित और तृतीय अभिधूमित हो तो श्याम-श्वेत वर्ण की वस्तु; प्रथम आलिंगित, द्वितीय दग्ध और तृतीय अभिधूमित हो तो काले रंग की वस्तु एवं प्रथम दग्ध द्वितीय अभिधूमित और तृतीय आलिंगित स्वर हो तो मुट्ठी में हरे रंग की वस्तु समझनी चाहिए। यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में प्रथम स्वर अभिधूमित, द्वितीय आलिंगित और तृतीय दग्ध हो तो विचित्र वर्ण की वस्तु; तीनों स्वर आलिंगित हों तो कृष्ण वर्ण की विचित्र वस्तु; तीनों दग्ध हों तो नील वर्ण की वस्तु और तीनों अभिधूमित स्वर हों तो कांचन वर्ण की वस्तु समझनी चाहिए।

लाभालाभ सम्बन्धी प्रश्नों का विचार करते हुए कहा है कि प्रश्नाक्षरों में आलिंगित—आ इ ए ओ मात्राओं के होने पर शीघ्र अधिक लाभ; अभिधूमित—आ ई ऐ औ मात्राओं के होने पर अल्प लाभ एवं दग्ध—उ ऊ अं अः मात्राओं के होने पर अलाभ एवं हानि होती है। उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं से संयुक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये प्रश्नाक्षर हों तो बहुत लाभ होता है। आ ई ऐ औ मात्राओं से संयुक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नाक्षरों के होने पर अल्प लाभ होता है। अ इ ए ओ मात्राओं से संयुक्त उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर कष्ट द्वारा अल्पलाभ होता है। अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह प्रश्नाक्षर हों तो जीवलाभ और रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, मोती, माणिक्य आदि का लाभ होता है। ई ऐ औ ङ ञ ण न म ल र ष प्रश्नाक्षर हों तो लकड़ी, वृक्ष, कुरसी, टेबुल, पलंग आदि वस्तुओं का लाभ होता है।

शुभाशुभ प्रश्न प्रकरण में प्रधानतया रोगी के स्वास्थ्य लाभ एवं उसकी आयु का विचार किया गया है। प्रश्नवाक्य में आद्य वर्ण आलिंगित मात्रा से युक्त हो तो रोगी का रोग यत्नसाध्य, अभिधूमित मात्रा से युक्त हो तो कष्टसाध्य और दग्धमात्रा से युक्त हो तो मृत्यु फल समझना चाहिए। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण आ ई ऐ औ मात्राओं से संयुक्ताक्षर हों तो पृच्छक जिसके सम्बन्ध में पूछता है उसकी दीर्घायु कहनी चाहिए। आ ई ऐ औ इन मात्राओं से युक्त क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स वर्णों में से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर हो तो लम्बी बीमारी भोगने के बाद रोगी स्वास्थ्यलाभ करता है। इस प्रकार शुभाशुभ प्रकरण में विस्तार से स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य, जीवन-मरण का विचार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण प्रकरण नष्ट-जन्मपत्र बनाने का है। इसमें प्रश्नाक्षरों पर से ही जन्ममास, पक्ष, तिथि और संवत् आदि का आनयन किया गया है। मासानयन करते

हुए बताया है कि यदि अ ए क प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इनमें-से कोई हो तो फाल्गुन मास का जन्म, च ट प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इनमें-से कोई अक्षर हो तो चैत्र मास का जन्म, त प प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इनमें-से कोई अक्षर हो तो कार्तिक मास का जन्म, य श प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नवाक्य के आदि में इनमें-से कोई अक्षर हो तो मार्गशीर्ष का जन्म, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष प्रश्नाक्षर हों या प्रश्न वाक्य के आदि का अक्षर इनमें से कोई हो तो माघ मास का जन्म; इ ओ ग ज ड द प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो वैशाख मास का जन्म, द ब ल ये प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो ज्येष्ठ मास का जन्म, ई औ घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो आषाढ़ मास का जन्म, ध भ व ह प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो श्रावण मास का जन्म, उ ऊ ङ ण ञ ये प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आदि अक्षर हो तो भाद्रपद मास का जन्म, न म अं अः ये प्रश्नाक्षर हों या इनमें से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य के आदि में हो तो आश्विन मास का जन्म एवं आ ई ख छ ठ ये प्रश्नाक्षर हों या इनमें-से कोई भी वर्ण प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर हो तो पौष मास का जन्म समझना चाहिए। इसी प्रकार आगे पक्ष और तिथि का भी विचार किया है। इस ग्रन्थ में प्रतिपादित विधि से नष्ट जन्मपत्र सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में आगे मूकप्रश्न, मुष्टिकाप्रश्न, लूकाप्रश्न इत्यादि प्रश्नों के लिए उपयोगी वर्ग पंचाधिकार का वर्णन किया है। क्योंकि प्रश्नाक्षर जिस वर्ग के होते हैं, वस्तु का नाम उस वर्ग के अक्षरों पर नहीं होता। इसलिए सिंहावलोकन, गजावलोकन, नन्द्यावर्त, मण्डूकप्लवन और अश्वमोहित क्रम ये पाँच प्रकार के सिद्धान्त वर्गाक्षरों के परिवर्तन में कार्य करते हैं। इस पंचाधिकार के स्वरूप, गणित और नियमोपनियम आदि आवश्यक बातों को जानकर प्रश्नों के रहस्य को अवगत करना चाहिए। इस ग्रन्थ के लगभग अन्त में सभी वर्गों के पंचाधिकार दिए गए हैं तथा चक्रों के आधार पर उनका स्वरूप परिवर्तन भी दिखलाया गया है।

प्रश्न निकालने की विधि

यद्यपि प्रश्न निकालने की विधि का पहले उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु पाठक इस नवीन विषय को सरलतापूर्वक जान सकें; इसलिए संक्षेप में प्रश्नविधि पर प्रकाश डाला जाएगा।

१. जब पृच्छक प्रश्न पूछने के लिए आए तो पूर्वोक्त पाँचों वर्गों को एक कागज पर लिखकर उससे अक्षरों का स्पर्श तीन बार कराएँ। पृच्छक द्वारा स्पर्श किये गये तीनों अक्षरों को लिख लें; फिर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिंगित और दग्ध इन संज्ञाओं द्वारा तथा अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्ग संयुक्त अधर इन ग्रन्थोक्त संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का विचार कर उत्तर दें।

२. वर्णमाला के अक्षरों में-से पृच्छक से कोई भी तीन अक्षर पूछें। पश्चात् उसके

प्रश्नाक्षरों को लिखकर ग्रन्थोक्त पाँचों वर्गों के अक्षरों से मिलान करें तथा संयुक्त, असंयुक्त आदि संज्ञाओं द्वारा फल का विचार करें।

३. पृच्छक के आने पर किसी अबोध बालक से अक्षरों का स्पर्श कराएँ या वर्णमाला के अक्षरों में-से तीन अक्षरों का नाम पूछें; पश्चात् उस अबोध शिशु द्वारा बताये गये अक्षरों को प्रश्नाक्षर मानकर प्रश्नों का विचार करें।

४. पृच्छक आते ही जिस वाक्य से बातचीत आरम्भ करे; उसी वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर संयुक्त, असंयुक्त आदि संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का फलाफल ज्ञात करें।

५. प्रातःकाल में पृच्छक के आने पर उससे किसी पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्नकाल में देवता का नाम और सायंकाल में नदी या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नवाक्य ग्रहण करना चाहिए। इस प्रश्नवाक्य-पर से संयुक्त आदि संज्ञाओं द्वारा प्रश्नों का फलाफल अवगत करना चाहिए।

६. पृच्छक की चर्या, चेष्टा जैसी हो, उसके अनुसार प्रश्नों का फल बताना चाहिए।

७. प्रश्नलग्न निकालकर उसके आधार से प्रश्नों के फल बतलाने चाहिए।

८. पृच्छक से किसी अंक संख्या को पूछकर उस पर गणित क्रिया द्वारा प्रश्नों का फलाफल अवगत करना चाहिए।

ग्रन्थ का बहिरंग रूप

उपयोगी प्रश्न—पृच्छक से किसी फल का नाम पूछना तथा कोई एक अंकसंख्या पूछने के पश्चात् अंकसंख्या को द्विगुणा कर फल और नाम के अक्षरों की संख्या जोड़ देनी चाहिए। जोड़ने के पश्चात् जो योग संख्या आए, उसमें १३ जोड़कर योग में नौ का भाग देना चाहिए। १ शेष में धनवृद्धि, २ में धनक्षय, ३ में आरोग्य, ४ में व्याधि, ५ में स्त्रीलाभ, ६ में बन्धुनाश, ७ में कार्यसिद्धि, ८ में मरण और ९ में राज्यप्राप्ति होती है।

कार्य सिद्धि-असिद्धि का प्रश्न—पृच्छक का मुख जिस दिशा में हो, उस दिशा की अंकसंख्या (पूर्व १, पश्चिम २, उत्तर ३, दक्षिण ४), प्रहरसंख्या (जिस प्रहर में प्रश्न किया गया है उसकी संख्या, तीन-तीन घण्टे का एक प्रहर होता है। प्रातः काल सूर्योदय से तीन घण्टे तक प्रथम प्रहर, आगे तीन-तीन घण्टे पर एक-एक प्रहर की गणना कर लेनी चाहिए।) वारसंख्या (रविवार १, सोमवर २, मंगलवार ३, बुधवार ४, बृहस्पति ५, शुक्र ६, शनि ७) और नक्षत्रसंख्या (अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३ इत्यादि गणना) को जोड़कर योगफल में आठ का भाग देना चाहिए। एक अथवा पाँच शेष रहे तो शीघ्र कार्यसिद्धि; छह अथवा चार शेष में तीन दिन में कार्यसिद्धि, तीन अथवा सात शेष में विलम्ब से कार्यसिद्धि एवं एक अथवा आठ शेष में कार्य असिद्धि होती है।

२. पृच्छक से एक से लेकर एक सौ आठ अंक के बीच की एक अंकसंख्या पूछनी चाहिए। इस अंकसंख्या में १२ का भाग देने पर १।७।९ शेष बचे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि, ८।४।१०।५ शेष में कार्यनाश एवं २।६।११।० शेष में शीघ्र कार्यसिद्धि होती है।

३. पृच्छक से किसी फूल का नाम पूछकर उसकी स्वर संख्या को व्यंजन संख्या से गुणा कर दें; गुणनफल में पृच्छक के नाम के अक्षरों की संख्या जोड़कर योगफल में ९ का भाग दें। एक शेष में शीघ्र कार्यसिद्धि; २।५।० में विलम्ब से कार्यसिद्धि और ४।६।८ शेष में कार्यनाश तथा अवशिष्ट शेष में कार्य मन्दगति से होता है।

४. पृच्छक के नाम के अक्षरों को दो से गुणाकर गुणनफल में ७ जोड़ दें। इस योग में ३ का भाग देने पर सम शेष में कार्यनाश और विषम शेष में कार्यसिद्धि फल कहना चाहिए।

५. पृच्छक से एक से लेकर नौ तक की अंक संख्या में-से कोई भी अंक पूछना चाहिए। बतायी गयी अंकसंख्या को उसके नाम की अक्षरसंख्या से गुणा कर देना चाहिए। इस गुणफल में तिथिसंख्या और प्रहरसंख्या जोड़ देनी चाहिए। तिथि की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से होती है। अतः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की संख्या १, द्वितीया की २ इसी प्रकार अमावास्या की ३० संख्या मानी जाती है। वार संख्या रविवार को १, सोमवार को २, मंगल को ३, इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शनि को ७ मानी जाती है। उपर्युक्त योग संख्या में ७ का भाग देने पर ०।७।१ शेष में कार्य असिद्धि, मतान्तर से ७।१ में विलम्ब से सिद्धि, २।६।४ शेष में सिद्धि, ३।५ शेष में कुछ विलम्ब से सिद्धि होती है।

६. निम्न चक्र बनाकर पृच्छक से अंगुली रखवाना चाहिए। यदि पृच्छक ८।२ अंक पर अंगुली रखे तो कार्याभाव; ४।६ पर अंगुली रखे तो कार्यसिद्धि; ७।३ पर अंगुली रखे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि एवं १।५।९ पर अंगुली रखे तो शीघ्र ही कार्यसिद्धि फल कहना चाहिए।

चक्र

१	२	३
६	५	४
७	८	९

७. पृच्छक यदि ऊपर को देखता हुआ प्रश्न करे तो कार्यसिद्धि और जमीन की ओर देखता हुआ प्रश्न करे तो कार्य की असिद्धि होती है। अपने शरीर को खुजलाता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि; जमीन खरोंचता हुआ प्रश्न करे तो कार्य असिद्धि एवं इधर-उधर देखता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्य-सिद्धि होती है।

८. मेष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न में प्रश्न किया गया हो तो कार्यसिद्धि; तुला, कर्क, सिंह और वृष लग्न में प्रश्न किया हो तो विलम्ब से सिद्धि एवं वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ लग्न में प्रश्न किया गया हो तो प्रायः असिद्धि; मतान्तर से धनु और कुम्भ लग्न में कार्यसिद्धि होती है। मकर लग्न में प्रश्न करने पर कार्यसिद्धि नहीं होती। लग्न के अनुसार प्रश्न का विचार करने पर ग्रह-दृष्टि का विचार कर लेना भी आवश्यक-सा है। अतः दशम

भाव और पंचम भाव के सम्बन्ध विचारकर फल कहना चाहिए।

६. पिण्ड बनाकर इस ग्रन्थ के विवेचन में प्रतिपादित विधि से कार्यसिद्धि के प्रश्नों का विचार करना चाहिए।

लाभालाभ प्रश्न—पृच्छक से एक से लेकर इक्यासी तक की अंकसंख्या में-से कोई एक अंकसंख्या पूछनी चाहिए। उसकी अंकसंख्या को २ से गुणाकर नाम के अक्षरों की संख्या जोड़ देनी चाहिए। इस योगफल में ३ का भाग देने पर दो शेष में लाभ, एक शेष में अल्पलाभ पर कष्ट अधिक और शून्य में हानि फल कहना चाहिए।

२. लाभालाभ के प्रश्न में पृच्छक से किसी नदी का नाम पूछना चाहिए। यदि नदी के नाम के आद्यक्षर में अ इ ए ओ मात्राएँ हों तो बहुत लाभ, आ ई ऐं औ मात्राएँ हों तो अल्प लाभ एवं उ ऊ अं अः ये मात्राएँ हों तो हानि फल कहना चाहिए।

३. पृच्छक के नामाक्षर की मात्राओं को नामाक्षर के व्यंजनों से गुणाकर दो का भाग देना चाहिए। एक में लाभ और शून्य शेष में हानि फल समझना चाहिए।

४. पृच्छक के प्रश्नाक्षरों से आलिंगितादि संज्ञाओं में जिस संज्ञा की मात्राएँ अधिक हों, उन्हें तीन स्थानों में रखकर एक जगह आठ से, दूसरी जगह चौदह से और तीसरी जगह चौबीस से गुणा कर तीनों गुणनफल राशियों में सात का भाग देना चाहिए। यदि तीनों स्थानों में सम शेष बचे तो अपरिमित लाभ; दो स्थानों में सम शेष और एक स्थान में विषम शेष रहे तो अल्प लाभ होता है, तीनों स्थानों में विषम शेष रहने से निश्चित हानि होती है।

चोरी गयी वस्तु की प्राप्ति का प्रश्न—पृच्छक जिस दिन पूछने आया हो उस तिथि की संख्या, वार संख्या, नक्षत्र संख्या और लग्न संख्या (जिस लग्न में प्रश्न किया हो उसकी संख्या, ग्रहण करनी चाहिए। मेष में १, वृष में २, मिथुन में ३, कर्क में ४ आदि) को जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में तीन और जोड़कर जो संख्या आए, उसमें पाँच का भाग देना चाहिए। एक शेष बचे तो चोरी गयी वस्तु पृथ्वी में, दो बचे तो जल में, तीन बचे तो आकाश में (ऊपर किसी स्थान पर रखी हुई), चार बचे तो राज्य में (राज्य के किसी कर्मचारी ने ली है) और पाँच बचे तो ऊबड़-खाबड़ ज़मीन में नीचे खोदकर रखी हुई कहना चाहिए।

पृच्छक के प्रश्न पूछने के समय स्थिर लग्न—वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ हो तो चोरी गयी वस्तु घर के समीप; चर लग्न—मेष, कर्क, तुला, मकर हों तो चोरी गयी वस्तु घर से दूर किसी बाहरी आदमी के पास; द्विस्वभाव—मिथुन, कन्या, धनु मीन हों तो कोई सामान्य परिचित नौकर, दासी आदि चोर होता है। यदि लग्न में चन्द्रमा हों तो चोरी गयी वस्तु पूर्व दिशा में, दशम में चन्द्रमा हो तो दक्षिण दिशा में, सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो पश्चिम दिशा में और चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा हो तो खोयी वस्तु अथवा चोर का निवास स्थान उत्तर दिशा में जाना चाहिए। लग्न पर सूर्य और चन्द्रमा दोनों की दृष्टि हो तो अपने ही घर का चोर होता है।

पृच्छक की मेष लग्न राशि हो तो ब्राह्मण चोर, वृष हो तो क्षत्रिय चोर, मिथुन हो तो वैश्य चोर, कर्क हो तो शूद्र चोर, सिंह हो तो अन्त्यज चोर, कन्या हो तो स्त्री चोर, तुला हो तो पुत्र, भाई अथवा मित्र चोर, वृश्चिक हो तो सेवक चोर, धनु हो तो भाई अथवा स्त्री

चोर, मकर हो तो वैश्य चोर, कुम्भ हो तो चूहा चोर और मीन लग्न राशि हो तो पृथ्वी के नीचे चोरी गयी वस्तु होती है। चरलग्न–मेष, कर्क, तुला, मकर हों तो चोरी गयी वस्तु किसी अन्य स्थान पर; स्थिर–वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ हों तो चोरी गई वस्तु उसी स्थान पर (घर के भीतर ही) और द्विस्वभाव–मिथुन, कन्या, धनु, मीन हों तो घर के आस-पास बाहर कहीं चोरी गयी वस्तु होती है। मेष, कर्क, तुला और मकर लग्न राशियों के होने पर चोर का नाम दो अक्षर का; वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों के होने पर चोर का नाम तीन-चार अक्षरों का एवं मिथुन, कन्या, धनु और मीन लग्न राशियों के होने पर चोर का नाम तीन अक्षरों का होता है।

अन्धलोचन संज्ञक नक्षत्रों में वस्तु की चोरी हुई हो तो शीघ्र मिलती है। मन्दलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु प्रयत्न करने से मिलती है। मध्यलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु प्रयत्न करने से मिलती है या खोयी हुई वस्तु का पता बहुत दिनों में लगता है। सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गयी वस्तु कभी नहीं मिलती। अन्धलोचन नक्षत्रों में चोरी गयी या खोयी हुई वस्तु पूर्व दिशा में, काण संज्ञक नक्षत्रों में दक्षिण दिशा में, चिपटलोचन संज्ञक नक्षत्रों में पश्चिम दिशा में एवं सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गई वस्तु उत्तर दिशा में होती है। माघ, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों में खोई वस्तु घर के भीतर; हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों में खोयी वस्तु घर से दूर–४, ७, १०, १७, २१, २३, २४, २५, ३०, ३४, ४३ और ४५ कोश की दूरी पर; शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रों में खोयी वस्तु घर में या घर के आस-पास पड़ोस में ५० गज की दूरी पर एवं कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रों में खोयी वस्तु बहुत दूर चली जाती है और कभी नहीं मिलती।

अन्ध-मन्दलोचनादि नक्षत्र बोधक चक्र

रोहिणी	पुष्य	उत्तरा-फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढ़ा	धनिष्ठा	रेवती	अन्ध लोचन
मृग-शिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तरा-षाढ़ा	शतभिषा	अश्विनी	मन्दलोचन या चिपटलोचन
आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्वा-भाद्रपद	भरणी	मध्यलोचन या काणलोचन
पुनर्वसु	पूर्वा-फाल्गुनी	स्वाति	मूल	श्रवण	उत्तरा-भाद्रपद	कृत्तिका	सुलोचन

यदि प्रश्नकर्ता कपड़ों के भीतर हाथ छिपाकर प्रश्न करे तो घर का ही चोर और बाहर हाथ कर प्रश्न करे तो बाहर के व्यक्ति को चोर समझना चाहिए। चोर का स्वरूप, आयु, कद एवं अन्य बातें अवगत करने के लिए इस ग्रन्थ का चोर तथा योनि विचार प्रकरण देखना चाहिए।

प्रवासी-आगमन सम्बन्धी प्रश्न—१. प्रश्नाक्षरों की संख्या को ११ से गुणा कर देना चाहिए। इस गुणनफल में ७ जोड़ देने पर जो योगफल आए, उसमें ७ से भाग देना चाहिए। एक शेष रहने पर परदेशी परदेश में सुखपूर्वक निवास करता है दो शेष में आने की चिन्ता करता है, तीन शेष में रास्ते में आता है, चार शेष में गाँव के पास आया हुआ होता है, पाँच शेष में परदेशी व्यर्थ इधर-उधर मारा-मारा घूमता रहता है, छह शेष में कष्ट में रहता है और सात शेष में रोगी अथवा मृत्यु शय्या पर पड़ा रहता है।

२. प्रश्नाक्षर संख्या को छह से गुणा कर, गुणनफल में आठ जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में सात से भाग देने पर यदि एक शेष रहे तो परदेशी की मृत्यु, दो शेष रहने पर धन-धान्य से पूर्ण सुखी, तीन शेष रहने पर कष्ट में, चार शेष रहने पर आनेवाला, पाँच शेष रहने पर शीघ्र आने वाला, छह शेष रहने पर रोग से पीड़ित तथा मानसिक सन्ताप से दग्ध एवं सात शेष में प्रवासी का मरण या महाकष्ट फल कहना चाहिए।

३. प्रश्नाक्षर संख्या को छह से गुणा कर, उसमें एक जोड़ दें। योगफल में सात का भाग देने पर एक शेष रहे तो प्रवासी आधे मार्ग में, दो शेष रहे तो घर के समीप, तीन शेष रहे तो घर पर, चार शेष रहे तो सुखी धन-धान्य पूर्ण, पाँच शेष रहे तो रोगी, छह शेष रहे तो पीड़ित एवं सात अर्थात् शून्य शेष रहने पर आने के लिए उत्सुक रहता है।

गर्भिणी को पुत्र या कन्या प्राप्ति का प्रश्न—१.जब यह पूछने के लिए पृच्छक आए कि अमुक गर्भवती स्त्री को पुत्र होगा या कन्या, तो गर्भिणी के नाम के अक्षर संख्या में वर्तमान तिथि तथा पन्द्रह जोड़कर नौ का भाग देने से यदि सम अंक शेष रहे, तो कन्या और विषम अंक शेष रहे तो पुत्र होता है।

२. पृच्छक की प्रश्न तिथि को शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से गिनकर तिथि, प्रहर, वार, नक्षत्र का योग कर देना चाहिए। इस योगफल में-से एक घटाकर सात का भाग देने से विषम अंक शेष रहने पर पुत्र और सम अंक शेष रहने पर कन्या होती है।

३. पृच्छक की तिथि, वार, नक्षत्र में गर्भिणी के अक्षर को जोड़कर सात का भाग देने से एक आदि शेष में रविवार आदि होते हैं। रवि, भौम और गुरुवार निकलें तो पुत्र, शुक्र, चन्द्र और बुधवार निकलें तो कन्या एवं शनिवार आए तो गर्भस्राव अथवा उत्पत्ति के अनन्तर सन्तान की मृत्यु होती है।

४. गर्भिणी के नाम के अक्षरों में २० का अंक, पूछने की तिथि (शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से एकादि गणना कर) तथा ५ जोड़कर जो योग आए, उसमें-से एक घटाकर नौ का भाग देने पर सम अंक शेष रहे तो कन्या और विषम अंक शेष रहे तो पुत्र होता है।

५. गर्भिणी के नाम के अक्षरों की संख्या को तिगुना कर स्थान (जिस गाँव में रहती हो, उसका नाम) की अक्षर संख्या, पूछने के दिन की तिथि-संख्या तथा सात और जोड़कर सबका योग कर लेना चाहिए। इस योगफल में आठ का भाग देने पर सम शेष बचे तो कन्या और विषम बचे तो पुत्र होता है।

रोगीप्रश्न—१. रोगी के रोग का विचार प्रश्नकुण्डली[1] में सप्तम भाव से करना चाहिए। यदि सप्तम भाव में शुभग्रह हो तो जल्द रोग शान्त होता है, और अशुभ ग्रह हो तो विलम्ब से रोग शान्त होता है।

२. रोगी के नाम के अक्षरों को तीन से गुणा कर ४ युक्त करें, जो योगफल आवे, उसमें तीन का भाग दें। एक शेष रहे तो जल्द आरोग्य लाभ, दो शेष में बहुत दिन तक रोग रहता है और शून्य शेष में मृत्यु होती है। प्रश्नकुण्डली में अष्टम स्थान में शनि, राहु, केतु और मंगल हों, तो भी रोगी की मृत्यु होती है।

मुष्टिप्रश्न—प्रश्न के समय मेष लग्न हो तो मुट्ठी में लाल रंग की वस्तु, वृष लग्न हो तो पीले रंग की वस्तु, मिथुन हो तो नीले रंग की वस्तु, कर्क हो तो गुलाबी रंग की, सिंह हो तो धूम्र वर्ण की, कन्या में नीले वर्ण की, तुला में पीले वर्ण की, वृश्चिक में लाल वर्ण की, धनु में पीले वर्ण की, मकर और कुम्भ में कृष्ण वर्ण की और मीन में पीले रंग की वस्तु होती है। इस प्रकार लग्नेश के अनुसार वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन करना चाहिए।

मूकप्रश्न—प्रश्न के समय मेष लग्न हो तो प्रश्नकर्ता के मन में मनुष्यों की चिन्ता, वृष लग्न हो तो चौपायों की, मिथुन हो तो गर्भ की, कर्क हो तो व्यवसाय की, सिंह हो तो अपनी, कन्या हो तो स्त्री की, तुला हो तो धन की, वृश्चिक हो तो रोग की, धनु हो तो शत्रु की, कुम्भ हो तो स्थान और मीन हो तो देव-सम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिए।

मुकदमा सम्बन्धी प्रश्न—१. प्रश्न लग्न-लग्नेश, दशम-दशमेश तथा पूर्णचन्द्र बलवान्, शुभ ग्रहों से युक्त, दृष्ट होकर परस्पर मित्र तथा 'इत्थशाल' आदि योग करते हों और सप्तम-सप्तमेश तथा चतुर्थ-चतुर्थेश हीन बली होकर 'मणऊ' आदि अनिष्ट योग करते हों, तो प्रश्नकर्ता को मुकदमे में यशपूर्वक विजय लाभ होता है।

२. पापग्रह लग्न में हों तो पृच्छक की विजय होती है। यदि लग्न और सप्तम इन दोनों में पापग्रह हों तो पृच्छक की विशेष प्रयत्न करने पर विजय होती है।

३. प्रश्न लग्न में सूर्य और अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तथा इन दोनों पर शनि मंगल की दृष्टि हो तो पृच्छक की निश्चय हार होती है।

४. यदि बुध, गुरु, सूर्य और शुक्र क्रमशः प्रश्नकुण्डली में ५।४।१।१० में हों और शनि मंगल लाभ स्थान में हों तो मुकदमे में विजय मिलती है।

५. पृच्छक के प्रश्नाक्षरों को पाँच से गुणा कर गुणनफल में तिथि, वार, नक्षत्र, प्रहर की संख्या जोड़ देनी चाहिए। योगफल में सात का भाग देने पर एक शेष में सम्मानपूर्वक विजय लाभ, दो में पराजय, तीन में कष्ट से विजय, चार शेष में व्ययपूर्वक विजय, पाँच शेष में व्यय सहित पराजय, छह शेष में पराजय और शून्य शेष में प्रयत्नपूर्वक विजय मिलती है।

---

१. प्रश्नकुण्डली बनाने की विधि इसी ग्रन्थ के प्रारम्भ में दी गयी है। अथवा परिशिष्ट में दी गयी जन्मकुण्डली की विधि से प्रश्नकुण्डली का निर्माण करना चाहिए।

६. पृच्छक से किसी फूल का नाम पूछकर उसके स्वरों को व्यंजन संख्या से गुणा कर तीन का भाग देने पर दो शेष में विजय और एक तथा शून्य शेष में पराजय होती है।

ग्रन्थकार

इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र बताये गये हैं। ग्रन्थकर्ता का नाम ग्रन्थ के मध्य या किसी प्रशस्तिवाक्य में नहीं आया है। प्रारम्भ में मंगलाचरण भी नहीं है। अन्त में प्रशस्ति भी नहीं आयी है, जिससे ग्रन्थकर्ता के नाम का निर्णय किया जा सके तथा उसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त की जा सके। केवल ग्रन्थारम्भ में लिखा है–"श्री समन्तभद्रविरचित-केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः"। मूडबिद्री से प्राप्त ताड़पत्रीय प्रति के अन्त में भी 'समन्तभद्रविरचितकेवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः समाप्तः' ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः यह निर्विवादरूप से स्वीकार करना पड़ता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र ही हैं।

यह समन्तभद्र कौन हैं, इन्होंने अपने जन्म से किस स्थान को कब सुशोभित किया है? इनके गुरु कौन थे, इन्होंने कितने ग्रन्थों का निर्माण किया है, आदि बातों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। समन्तभद्र नाम के कई व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने जैनागम की श्रीवृद्धि करने में सहयोग दिया है। तार्किक-शिरोमणि सुप्रसिद्ध श्रीस्वामी समन्तभद्र तो इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं। हाँ, एक समन्तभद्र जो अष्टांगनिमित्तज्ञान और आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता थे, जिन्होंने साहित्य शास्त्र का पूर्ण परिज्ञान प्राप्त किया था, इस शास्त्र के रचयिता माने जा सकते हैं।

'प्रतिष्ठातिलक' में कविवर नेमिचन्द्र ने जो अपनी वंशावली बतायी है, उससे 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' के रचयिता के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। वंशावली में बताया गया है कि कर्मभूमि के आदि में भगवान् ऋषभदेव के पुत्र श्रीभरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण नाम की जाति बनायी। इस जाति के कुछ विवेकी, चारित्रवान्, जैनधर्मानुयायी ब्राह्मण कांची नाम के नगर में रहते थे। इस वंश के लोग देवपूजा, गुरुवन्दना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट् कर्मों में प्रवीण थे। श्रावक की ५३ क्रियाओं का वे भलीभाँति पालन करते थे। इस वंश के ब्राह्मणों को विशाखाचार्य ने 'उपासकाध्ययनांग' की शिक्षा दी थी, जिससे वे श्रावकाचार का पालन करने में तनिक भी त्रुटि नहीं करते थे। जैनधर्म में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। राजा-महाराजाओं द्वारा वे स्तुत्य थे। इस वंश के निर्मल बुद्धिवाले कई ब्राह्मणों ने दिगम्बरीय दीक्षा धारण की थी। इस प्रकार इस कुल में व्रतपालन करनेवाले अनेक ब्राह्मण हुए।

कालान्तर में इसी कुल में भट्टाकलंक स्वामी हुए। उन्होंने अपने वचनरूपी वज्र द्वारा वादियों के गर्वरूपी पर्वत को चूर-चूर किया था। उनके ज्ञान की यशःपताका दिगूदिगन्त में फहराई। इसके पश्चात् इसी वंश में सिद्धान्तपारगामी, सर्वशास्त्रोपदेशक इन्द्रनन्दी नाम के आचार्य हुए। अनन्तर इस वंश में अनन्तवीर्य नाम के मुनि हुए। वह अकलंक स्वामी के कार्यों को प्रकाश में लाने के लिए दीपवर्तिका के समान थे। पश्चात् इस वंशरूपी पर्वत पर वीरसेन नामक सूर्य का उदय हुआ, जिसके प्रकाश से जैनशासनरूपी आकाश प्रकाशित हुआ।

इस वंश में आगे जिनसेन, वादीभसिंह, हस्तिमल्ल, परवादिमल्ल आदि कई नरपुंगव

हुए, जिन्होंने जैन शासन की प्रभावना की। पश्चात् इस वंश में ऐसे बहुत से ब्राह्मण हुए, जिन्होंने श्रावकाचार या मुनि आचार का पालन कर अपना आत्मकल्याण किया था।

आगे इस वंश में लोकपालाचार्य नामक विद्वान् हुए। यह गृहस्थाचार्य थे, फिर भी संसार से विरक्त रहा करते थे। इनका सम्मान चोल राजा करते थे। यह किसी कारण कांची को छोड़कर बन्धु-बान्धव सहित कर्नाटक देश में जाकर रहने लगे। इनका समयनाथ नाम का पुत्र तर्कशास्त्र का पारगामी, कुशाग्रबुद्धि था। समयनाथ का कविराजमल्ल नाम का पुत्र कविशिरोमणि, आशुकवि था। इसका चतुर विद्वान् पुत्र चिन्तामणि नाम का था। चिन्तामणि का अनन्तवीर्य नाम का पुत्र घटवाद में निपुण हुआ। इसका पार्यनाथ नाम का पुत्र संगीतशास्त्र में निपुण हुआ। पार्यनाथ का आदिनाथ नाम का पुत्र आयुर्वेद में प्रवीण हुआ। इसका ब्रह्मदेव नाम का पुत्र धनुर्विद्या में प्रवीण हुआ। इसका देवेन्द्र नाम का पुत्र हुआ। यह देवेन्द्र संहिता शास्त्र में निपुण, कलाओं में प्रवीण, राजमान्य, जिनधर्माराधक, त्रिवर्गलक्ष्मी सम्पन्न और बन्धुवत्सल था। इसकी स्त्री का नाम आदिदेवी था। इस आदिदेवी के पिता का नाम विजयप और माता का नाम श्रीमती था। आदिदेवी के ब्रह्मसूरि, चन्दपार्य और पार्श्वनाथ ये तीन भाई थे। देवेन्द्र और आदिदेवी के आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप ये तीन पुत्र हुए। आदिनाथ संहिताशास्त्र में पारगामी था। उसके त्रैलोक्यनाथ और जिनचन्द्र नाम के दो पुत्र हुए।

विजयप ज्योतिषशास्त्र का पारगामी था। इस विजयप का साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों का ज्ञाता समन्तभद्र नाम का पुत्र था। 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' का कर्ता यही समन्तभद्र मुझे प्रतीत होता है। ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान इन्हें परम्परागत भी प्राप्त हुआ होगा। विजयप के ग्रन्थ भी चन्द्रोन्मीलन प्रणाली पर हैं। आयसद्भाव में विजयप का नाम भी आया है। प्रतिष्ठातिलक में समन्तभद्र का उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है–

धीमान् विजयपाख्यस्तु ज्योतिःशास्त्रादिकोविदः।
समन्तभद्रस्तत्पुत्रः साहित्यरससान्द्रधीः।।

'प्रतिष्ठातिलक' के उक्त कथन का समर्थन 'कल्याणकारक' की प्रशस्ति से भी होता है। इस प्रशस्ति में समन्तभद्र को अष्टांग आयुर्वेद का प्रणेता बतलाया है। मेरा अनुमान है कि यह समन्तभद्र आयुर्वेद के साथ ज्योतिष शास्त्र के भी प्रणेता थे। इन्होंने अपने पिता विजयप से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। 'कल्याणकारक' के रचयिता उग्रादित्य ने कहा है–

अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः प्रोक्तं स्वविस्तरवचोविभवैर्विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम् ॥

सेनगण की पट्टावली में तथा श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में भी समन्तभद्र नाम के दो-तीन विद्वानों का उल्लेख मिलता है। परन्तु विशेष परिचय के बिना यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि इस ग्रन्थ के रचयिता समन्तभद्र कौन से हैं? वंश-परम्परा को देखते हुए 'प्रतिष्ठातिलक' के रचयिता नेमिचन्द्र के भाई विजयप के पुत्र समन्तभद्र ही प्रतीत होते हैं। 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' में भी विजयवर्णी ने एक समन्तभद्र का महाकवीश्वर के रूप में उल्लेख किया है; पर यह समन्तभद्र प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं जँचते। यह तो आयुर्वेद और ज्योतिष के ज्ञाता उक्त समन्तभद्र ही हो सकते हैं।

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का रचनाकाल

इस ग्रन्थ में इसके रचनाकाल का कहीं भी निर्देश नहीं है। अनुमान के आधार पर ही इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली का प्रचार ९वीं शती से लेकर १३-१४वीं शती तक रहा है। यदि विजयप के पुत्र समन्तभद्र को इस ग्रन्थ का रचयिता मान लेते हैं, तो इसका रचना समय १३वीं शती का मध्य भाग होना चाहिए। विजयप के भाई नेमिचन्द्र ने 'प्रतिष्ठातिलक' की रचना आनन्द नाम के संवत्सर में चैत्र मास की पंचमी को की है। इस आधार पर इसका रचनाकाल १३वीं शती होता है। 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' में जो प्राचीन गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं, उनके मूल ग्रन्थ का पता कहीं भी नहीं लगता है। पर उनकी विषयप्रतिपादन शैली ९-१० शती से पीछे की प्रतीत नहीं होती है। प्रतिष्ठातिलक में दी गयी प्रशस्ति के आधार पर विजयप का समय १२वीं शती आता है।

दक्षिण भारत में चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली का प्रचार ४-५ सौ वर्ष तक रहा है। यह ग्रन्थ इस प्रणाली का विकसित रूप है। इसमें च-त-य-क-ट-प-श-वर्ग पंचाधिकार का निरूपण किया गया है। यह विषय १०-११वीं शती में स्वतन्त्र था। सिंहावलोकन, गजावलोकन, नन्द्यावर्त, मण्डूकप्लवन, अश्वमोहित इन पाँच परिवर्तनशील दृष्टियों द्वारा चवर्ग, तवर्ग, यवर्ग, कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग और शवर्गों को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार कोई भी वर्ग उक्त कर्मों द्वारा दूसरे वर्ग को प्राप्त हो जाता है। १०-११वीं शती में यह विषय संहिताशास्त्र के अन्तर्गत था तथा गणित द्वारा इसका विचार होता था। १२वीं शताब्दी में इसका समावेश प्रश्नशास्त्र के भीतर किया गया है तथा प्रश्नाक्षरों पर-से ही उक्त दृष्टियों का विचार भी होने लग गया। ९वीं शताब्दी के ज्योतिष के विद्वान् गर्गाचार्य ने सर्वप्रथम वर्गपंचक को परिवर्तनशील दृष्टियों का रूप प्रदान कर चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली में स्थान दिया। गर्गाचार्य के समय में चन्द्रोन्मीलनप्रश्नप्रणाली में केवल पंचवर्ग सम्बन्धी असंयुक्त, संयुक्त, अभिहत आदि आठ संज्ञावाली विधि ही थी। उस समय केवल वाचिक प्रश्नों के उत्तर ही इस प्रणाली द्वारा निकाले जाते थे। मूक प्रश्नों के लिए 'पाशाकेवली' प्रणाली थी। इस प्रणाली के आद्य आविष्कर्ता गर्गाचार्य ही हैं। इनका पाशाकेवली अंक प्रणाली पर है तथा मूकप्रश्नों का उत्तर निकालने के लिए इसका प्रवर्तन किया गया था। ११वीं शती में मूक प्रश्नों के निकालने का बड़ा भारी रिवाज था। उस समय इनके निकालने की तीन विधियाँ प्रचलित थीं—(१) मन्त्रसाधना (२) स्वरसाधना (३) अष्टांगनिमित्तज्ञान। इन तीनों प्रणालियों का जैन सम्प्रदाय में प्रचार था। गर्गाचार्य ने पाशाकेवली के आदि में "ओं नमो भगवति कूष्माण्डिनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि, एह्येहि एह्येहि वरं देहि देहि हलि हलि मतङ्गिनि सत्यं ब्रूहि ब्रूहि स्वाहा" इस मन्त्र को सात बार पढ़कर मुख से "सत्यं वद, मृषा परिहाराय" कहते हुए तीन बार पाशा डालने का विधान बताया है। इससे सिद्ध है कि मन्त्रसाधना द्वारा ही पाशे से फल कहा जाता था। प्रथम संख्या १११ का फल बताया है—"इस प्रश्न का फल बहुत शुभ है; तुम्हारे दिन अच्छी तरह व्यतीत होंगे। तुमने मन में विलक्षण बात विचार रखी है, वह सिद्ध

होगी। तुम्हारे मन में व्यापार और युद्ध सम्बन्धी चिन्ता है, वह शीघ्र दूर होगी।"

स्वरसाधना का निरूपण भी गर्गाचार्य ने किया है। यह स्वरसाधना उत्तरकालीन स्वर-विज्ञान से भिन्न थी। यह एक यौगिक प्रणाली थी, जिसका ज्ञान एकाध ऋषि मुनि को ही था। स्वर-विज्ञान का प्रचार १३वीं शती के उपरान्त हुआ प्रतीत होता है। अष्टांगनिमित्त ज्ञान का प्रचार बहुत पहले से था और ६-१०वीं शताब्दी में इसका बहुत कुछ भाग लुप्त भी हो गया था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मूक प्रश्न, मुष्टिका प्रश्न एवं लूका प्रश्न आदि का विश्लेषण चन्द्रोन्मीलन प्रश्न प्रणाली में १२वीं शती से आया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मूक प्रश्नों का विश्लेषण योनिज्ञान विवरण द्वारा किया गया है। अतः यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ १२वीं शताब्दी के बाद का है।

चन्द्रोन्मीलन प्रश्न प्रणाली का अन्त १४वीं शती में हो जाता है। इसके पश्चात् इस प्रणाली में रचना होना बिल्कुल बन्द हो गया प्रतीत होता है। १४वीं शती के पश्चात् रमलप्रणाली, प्रश्नलग्नप्रणाली, स्वरविज्ञान तथा केरलप्रश्नप्रणाली का प्रचार और विकास होने लग गया था। १४वीं शती के प्रारम्भ में लग्नप्रणाली का दक्षिण भारत में भी प्रचार दिखलाई पड़ता है। अतः यह सुनिश्चित है कि केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का रचनाकाल १२वीं शताब्दी के पश्चात् और १४वीं शताब्दी के पहले है। इस ग्रन्थ में रचयिता ने ग्रन्थकारोक्त जो शवर्ग चक्र दिया है, उससे सिद्ध है कि जब कोई भी वर्ग परिवर्तनशील दृष्टियों द्वारा अन्य वर्ग को प्राप्त हो जाता है, तो उसका फलादेश दृष्टिक्रम के अनुसार अन्यवर्ग सम्बन्धी हो जाता है। इस प्रकार का विषय-सुधार चन्द्रोन्मीलन प्रणाली में १३वीं शती में आया हुआ जँचता है। इस प्रणाली के प्रारम्भिक ग्रन्थों में इतना विकास नहीं है। अतः विषयनिरूपण की दृष्टि से इस ग्रन्थ का रचनाकाल १३वीं शताब्दी है।

रचनाशैली के विचार से आरम्भ में पाँच वर्गों का निरूपण कर अष्ट संख्याओं द्वारा सीधे-सादे ढंग से बिना भूमिका बाँधे प्रश्नों का उत्तर प्रारम्भ कर दिया गया है। इस प्रकार की सूत्ररूप प्रणाली ज्योतिषशास्त्र में ११-१२वीं शती में खूब प्रचलित थी। कई श्लोकों में जिस बात को कहना चाहिए, उसी को एक छोटे-से गद्य टुकड़े में—वाक्य में कह दिया गया है। इस प्रकार के ग्रन्थ दक्षिण भारत में ज्यादा लिखे जाते थे। अतः रचनाशैली की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ १२वीं या १३वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। धाम्य और अधाम्य योनि का जो सांगोपांग विवेचन इस ग्रन्थ में है, उससे भी यही कहा जा सकता है कि यह १३वीं शताब्दी से बाद का बनाया हुआ नहीं हो सकता।

आत्मनिवेदन

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का अनुवाद तथा विस्तृत विवेचन अनेक ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। विवेचनों में ग्रन्थ के स्पष्टीकरण के साथ-साथ अनेक विशेष बातों पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ को एक बार सन् १९४२ में आद्योपान्त देखा था,

उसी समय इसके अनुवाद करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। श्री जैन-सिद्धान्त-भास्कर भाग ६, किरण २ में इस ग्रन्थ का परिचय भी मैंने लिखा था। परिचय को देखकर श्री बा. कामता प्रसाद जी अलीगंज ने अनुवाद करने की प्रेरणा भी पत्र द्वारा की थी, पर उस समय यह कार्य न हो सका।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की स्थापना हो जाने पर श्रद्धेय प्रो. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने इसके अनुवाद तथा सम्पादन करने की मुझे प्रेरणा दी। आपके आदेश तथा अनुमति से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। मूडबिद्री के शास्त्रभण्डार से श्रीमान् पं. के. भुजबलीजी शास्त्री, विद्याभूषण ने ताड़पत्रीय प्रति भेजी, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। इस प्रति की संज्ञा क. मू. रखी गयी है। यद्यपि 'भवन' की केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि की प्रति भी मूडबिद्री से ही नकल कर आयी थी, पर शास्त्रीजी द्वारा भेजी गयी प्रति में अनेक विशेषताएँ मिलीं। कई स्थानों में शुद्ध तथा विषय को स्पष्ट करने वाले पाठान्तर भी मिले। इस प्रति के आदि और अन्त में भी ग्रन्थकर्ता का नाम अंकित है। इस प्रति के अन्त में "इति केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः केवलज्ञानहोराज्ञानप्रदीपकन्नड़ः समाप्तः" लिखा है। पवर्ग, शवर्ग चक्र इसी प्रति के आधार पर रखे गये हैं, क्योंकि ये दोनों चक्र इसी प्रति में शुद्ध मिले हैं। अवशेष ग्रन्थ का मूलपाठ श्री जैनसिद्धान्त-भवन, आरा की हस्तलिपि प्रति के आधार पर रखा गया है। फुटनोट में क. मू. के पाठान्तर रखे गये हैं।

मूडबिद्री से आयी हुई ताड़पत्रीय प्रति की लिपि का वाचन मित्रवर श्री देवकुमारजी शास्त्री ने किया है, अतः मैं उनका आभारी हूँ। इस ग्रन्थ की प्रकाशन-व्यवस्था श्रीमान् प्रो. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने की है, अतः मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूँ। प्रूफ संशोधन पं. महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने किया है। सम्पादन में श्रीमान् पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, गुरुवर्य पं. कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री, मित्रवर प्रो. गो. खुशालचन्द्र जी एम. ए., साहित्याचार्य के कई महत्त्वपूर्ण सुझाव मिले हैं, अतः आप महानुभावों का भी कृतज्ञ हूँ।

श्री जैन-सिद्धान्त-भवन आरा के विशाल ज्योतिष विषयक संग्रह से विवेचन एवं प्रस्तावना लिखने में सहायता मिली है, अतः भवन का आभार मानना भी अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थ में उद्धरणों के रूप में आयी हुई गाथाओं का अर्थ विषय-क्रम को ध्यान में रखकर लिखा गया है। प्रस्तुत दोनों प्रतियों के आधार पर भी गाथाएँ शुद्ध नहीं की जा सकी हैं। हाँ, विषय के अनुसार उनका भाव अवश्य स्पष्ट हो गया है।

सम्पादन में अज्ञानता एवं प्रमादवश अनेक त्रुटियाँ रह गयी होंगी, विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे। इतना सुनिश्चित है कि इसके परिशिष्टों तथा भूमिका के अध्ययन से साधारण व्यक्ति भी ज्योतिष की अनेक उपयोगी बातों को जान सकेंगे, इसमें दोष नहीं हो सकते हैं।

नेमिचन्द्र जैन शास्त्री,
ज्योतिषाचार्य, साहित्यरत्न

अनन्तचतुर्दशी वी. नि. २४७५
जैनसिद्धान्तभवन, आरा

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः

अ क च ट प य शा वर्गाः[1]।
आ ए क च ट त प य शा वर्गा इति[2] } प्रथमः॥१॥
आ ऐ ख छ ठ थ फ र षा इति द्वितीयः ॥२॥
इ ओ ग ज ड द ब ल सा[3] इति तृतीयः ॥३॥
ई औ घ झ ढ ध भ व हा इति चतुर्थः ॥४॥
उ ऊ ङ ञ ण न माः, अं आ, इति पञ्चमः ॥५॥

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः एतन्याक्षराणि सर्वांश्च[4] कथ्यकस्य वाक्यतः प्रश्नाद्वा गृहीत्वा स्थापयित्वा सुष्ठु विचारयेत्। तद्यथा—संयुक्तः[5], असंयुक्तः। अभिहितः, अनभिहितः, अभिघातित इत्येतान् पञ्चालिङ्गितामिधूमितदग्धांश्च त्रीन् क्रियाविशेषान् प्रश्ने तावद्विचारयेत्।

अर्थ—अ क च ट प य श अथवा आ ए क च ट त प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग; इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग; ई औ घ झ ढ ध भ व ह इन अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का पंचम वर्ग होता है। इन अक्षरों को प्रश्नकर्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों से ग्रहण कर अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को स्थापित कर प्रश्नकर्ता से स्पर्श कराके अच्छी तरह फलाफल का विचार करना चाहिए। संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित और अभिघातित इन पाँचों का तथा आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन क्रिया विशेषणों का प्रश्न में विचार करना चाहिए।

---

१. तुलना—चं. प्र., श्लो, ३३। "वर्गो द्वौ विद्वद्भिर्द्वादशमात्रासु विज्ञेयौ। काद्याः सप्त च तेषां वर्णाः पञ्चाद्ध्यर्धोऽङ्कवर्गाणाम्॥" के. प्र. र., पृ. ४। प्र. कौ. पृ. ४। प्र. कु. पृ. ३। "अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ ध्वजः सूर्यः ॥१॥ क ख ग घ धूम्रः भौमः ।'—ध्व. प्र., पृ. १।

२. पञ्चसु वर्गेषु इतीति पाठो नास्ति—क. मू.।

३. इ ओ ग ज ड ब ल स्ताः तृतीयः—क. मू.।

४. स्वरांश्च—क. मू.।

५. तुलना—के. प्र. सं., पृ. ४। संयुक्तादीनां विशेषविवेचनं चन्द्रोन्मीलनप्रश्नस्यैकोनविंशतिश्लोके द्रष्टव्यम्—के. प्र. र., पृ.१२, ध्व. प्र. पृ., १।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्र में बिना जन्मकुण्डली के तात्कालिक फल बतलाने के लिए तीन सिद्धान्त प्रचलित हैं—प्रश्नाक्षर-सिद्धान्त, प्रश्नलग्न-सिद्धान्त और स्वर-विज्ञान सिद्धान्त। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रश्नाक्षर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धान्त का मूलाधार मनोविज्ञान है, क्योंकि बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों के अधीन मानव मन की भीतरी तह में जैसी भावनाएँ छिपी रहती हैं, वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता फ्रायड का कथन है कि अबाधभावानुषंग से हमारे मन के अनेक गुप्तभाव भावी शक्ति, अशक्ति के रूप में प्रकट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहज में ही मन की धारा और उससे घटित होनेवाले फल को समझ लेता है। इनके मतानुसार मन की दो अवस्थाएँ हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकार से निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा ही नियन्त्रित होती रहती है। प्रश्नों की छान-बीन करने पर इस सिद्धान्त के अनुसार पूछने पर मानव निर्ज्ञान अवस्था विशेष के कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था पर पड़ता है। अतएव प्रश्न के मूल में प्रवेश करने पर संज्ञात इच्छा, असंज्ञात इच्छा, अन्तर्ज्ञात इच्छा और निर्ज्ञात इच्छा ये चार प्रकार की इच्छाएँ मिलती हैं। इन इच्छाओं में-से संज्ञात इच्छा बाधा पाने पर नाना प्रकार से व्यक्त होने की चेष्टा करती है तथा इसी के द्वारा रुद्ध या अवदमित इच्छा भी प्रकाश पाती है। यद्यपि हम संज्ञात इच्छा का प्रकाश काल में रूपान्तर जान सकते हैं, किन्तु असंज्ञात या अज्ञात इच्छा के प्रकाशित होने पर भी बिना कार्य देखे उसे नहीं जान सकते। विशेषज्ञ प्रश्नाक्षरों के विश्लेषण से ही असंज्ञात इच्छा का पता लगा लेते हैं। सारांश यह है कि संज्ञात इच्छा प्रत्यक्ष रूप से प्रश्नाक्षरों के रूप में प्रकट होती है और इन प्रश्नाक्षरों में छिपी हुई असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओं को उनके विश्लेषण से अवगत किया जाता है। अतः प्रश्नाक्षर सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक है तथा आधुनिक पाश्चात्त्य ज्योतिष के विकसित सिद्धान्तों के समान तथ्यपूर्ण है।

प्रश्न करनेवाला आते ही जिस वाक्य का उच्चारण करे, उसके अक्षरों का विश्लेषण कर प्रथम, द्वितीय पाँचों वर्गों में विभक्त कर लेना चाहिए। अनन्तर आगे बतायी हुई विधि के अनुसार संयुक्त, असंयुक्तादि का भेद स्थापित कर फल बतलाना चाहिए। अथवा प्रश्नकर्ता से पहले किसी पुष्प, फल, देवता, नदी और पहाड़ का नाम पूछकर अर्थात्—प्रातःकाल[1] पुष्प का नाम, मध्याह्न में फल का नाम, अपराह्न में—दिन के तीसरे प्रहर में देवता का नाम और सायंकाल में नदी का नाम या पहाड़ का नाम पूछकर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों का विश्लेषण कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित आदि आठ प्रश्नश्रेणियों में विभाजित कर प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। अथवा उपर्युक्त पाँचों वर्गों को पृथक् स्थापित कर प्रश्नकर्ता से अक्षरों का स्पर्श कराके, स्पर्श किये हुए अक्षरों को प्रश्नाक्षर मानकर संयुक्त,

---

१. 'पृच्छकस्य वाक्याक्षराणि स्वरसंयुक्तानि ग्राह्याणि। यदि च प्रश्नाक्षराण्यधिकान्यस्पष्टानि भवेयुस्तदाऽयं विधिः। यदि प्रश्नकर्ता ब्राह्मणस्तदा तन्मुखात्पुष्पस्य नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्ता क्षत्रियस्तदा कस्याश्चिन्द्या नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्ता वैश्यस्तदा देवानां मध्ये कस्यचिद्देवस्य नाम ग्राहयेत्। यदि प्रश्नकर्ता शूद्रस्तदा कस्यचित् फलस्य नाम ग्राह्यत्।"—के. प्र. सं., पृ. १२-१३।

असंयुक्तादि प्रश्न श्रेणियों में विभाजित कर फल बतलाना चाहिए। प्रश्नकुतूहलादि प्राचीन ग्रन्थों में पिंगलशास्त्र के अनुसार प्रश्नाक्षरों के मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गुरु और लघु ये विभाग कर उत्तर दिये हैं। इनका विचार छन्दशास्त्र के अनुसार ही गुरु, लघु क्रम से किया गया है अर्थात् मगण में तीन गुरु, यगण में आदि लघु और दो गुरु, रगण में मध्य लघु और शेष दो गुरु, सगण में अन्त गुरु और शेष दो लघु, तगण में अन्त लघु और शेष दो गुरु, जगण में मध्य गुरु और शेष दो लघु, भगण में आदि गुरु और शेष दो लघु और नगण में तीन लघु वर्ण होते हैं। यदि प्रश्नकर्ता उच्चरित वर्णों में प्रारम्भ के तीन वर्ण लघु मात्रावाले हों तो नगण समझना चाहिए। इसी प्रकार उच्चरित वर्णों के क्रम से मगण, यगणादि का विचार करना चाहिए। मगणादि का स्पष्ट ज्ञान करने के लिए चक्र नीचे दिया जाता है—

मगणादि[1] सम्बन्धी प्रश्न-सिद्धान्त-चक्र

मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण	गण
ऽऽऽ	।ऽऽ	ऽ।ऽ	।।ऽ	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ।।	।।।	लघुगुरु
पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश	तमोगुण	सत्त्व-गुण	रजोगुण	गुण और तत्त्व
स्थिर	चर	चर	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	चरादि भाव संज्ञा
स्त्री	पुरुष	पुरुष	नपुंसक	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	पुरुष	पुरुषादि संज्ञा
मूल	जीव	धातु	जीव	ब्रह्म	जीव	जीव	जीव	चिन्ता
मित्र	सेवक	शत्रु	शत्रु	सम	सम	सेवक	मित्र	मित्रादि संज्ञा
पीत	श्वेत	रक्त	हरित	नील	ईषद् रक्त	श्वेत	रक्त	रंग
पूर्व	पश्चिम	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	ईशानकोण	उत्तर	दक्षिण	नैऋत्य-कोण	दिशा

यदि पृच्छक के प्रश्न वर्णों में पूर्व चक्रानुसार दो मित्रगण[2] हों तो कार्य सिद्धि और

१. "पृथिव्यादीनि पञ्चभूतानि यथासंख्येन ज्ञेयानि। जेन तमो भेन सतो नेन रजोग्रहणम्। त्रयाणां गीतोपनिषद्भिः फलं वाच्यम्।"—प्र. कु., पृ. ६।

२. द्रष्टव्यम्—प्र. कृ., पृ. ८।

मित्रलाभ; मित्रसेवक संज्ञक गणों के होने पर सफलतापूर्वक कार्य सिद्धि; मित्र-शत्रु संज्ञक गणों के प्रश्नाक्षरों में होने पर प्रिय भाई का मरण; मित्र-सम संज्ञक गणों के होने पर कुटुम्ब में पीड़ा; दो सेवक गणों के होने पर मनोरथसिद्धिः भृत्य-शत्रु गणों के होने से शत्रु-वृद्धि; मृत्यु-सम गणों के होने से धननाश; शत्रु-मित्र गणों के होने से शारीरिक कष्ट; शत्रुसेवक गणों के होने से भार्या कष्ट; दो शत्रु गणों के होने से प्रत्यक्ष कार्यहानि; शत्रु-सम गणों के होने से सुख नाश एवं मित्र गणों के होने से सुख होता है। दो सम गण निष्फल होते हैं, सम और मित्रगणों के होने से अल्पलाभ; सम और सेवक गणों के होने से उदासीनता एवं सम और शत्रु गणों के होने से आपस में विरोध होता है। मगण-यगण[२] के होने पर कार्यसिद्धि, रगण के होने से मृत्यु और कार्य नाश, सगण के होने से क्षय रोग अथवा कार्य विनाश और नगण के होने से प्रश्न निष्फल होता है। यदि प्रश्नकर्ता के[३] प्रश्नाक्षरों में प्रथम मगण हो तो धन-सन्तान की वृद्धि; रगण हो तो मृत्युतुल्य कष्ट; सगण हो तो विदेश की यात्रा; जगण हो तो रोग; भगण से निर्मल यश का विस्तार और नगण से अखण्ड सुख प्राप्ति सम्बन्धी प्रश्न जानने चाहिए। इस प्रकार गणों का विचार कर प्रश्नों का फल बतलाना चाहिए। प्रश्नाक्षर सम्बन्धी सिद्धान्त का उपर्युक्त क्रम से विचार करने पर भी चर्या और चेष्टा आदि का भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि मनोविज्ञान के सिद्धान्त से बहुत-सी बातें चर्या और चेष्टा से भी प्रकट हो जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि मनुष्य का शरीर यन्त्र के समान है जिसमें भौतिक घटना या क्रिया उत्तेजना पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया उसके आचरण में प्रदर्शित होती है। मनोविज्ञान के पण्डित पेवलाव ने बताया है कि मनुष्य की समस्त भूत, भावी और वर्तमान प्रवृत्तियाँ चेष्टा और चर्या के द्वारा आभासित होती हैं। समझदार मानव चेष्टाओं से जीवन का अनुमान कर लेता है। अतः प्रश्नाक्षर सिद्धान्त का पूरक अंग चेष्टा-चर्यादि[४] हैं।

दूसरा प्रश्नों के फल का निरूपण करनेवाला सिद्धान्त समय के शुभाशुभत्व के ऊपर आश्रित है। अर्थात् पृच्छक के समयानुसार तात्कालिक प्रश्न कुण्डली बनाकर उससे ग्रहों के[५] स्थान विशेष द्वारा फल कहा जाता है। इस सिद्धान्त में मूलरूप से फलादेश सम्बन्धी समस्त कार्य समय पर ही अवलम्बित हैं। अतः सर्व-प्रथम इष्टकाल बनाकर लग्न सिद्ध करना चाहिए और फिर द्वादश[६] भावों में ग्रहों को स्थित कर फल बतलाना चाहिए।

---

१. द्रष्टव्यम्—प्र. कु., पृ. १०।

२. द्रष्टव्यम्—प्र. कु., पृ. ५-६।

३. दै. व., पृ. ५।

४. बृ. पा. हो, पृ. ७४१।

५. द्वादशभावों के नाम निम्न प्रकार हैं—तनुकोशसहोदरबन्धुसुतारिपुकामविनाशशुभा विबुधैः। पितृमं तत आप्तिरयाय इमे क्रमतः कथिता मिहिरप्रमुखैः १—प्र. भू., पृ. ५। होरादयस्तनु-कुटुम्बसहोत्थबन्धुपुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः। रिष्काख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभदुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणि न नित्यमेके॥ कल्पस्वविक्रमगृहप्रति-भाक्षतानि चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभव्ययानि। लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञेत् न्यूनं च सप्तमगृहं दशमं खमाज्ञा॥
—बृ. जा, पृ. १७-१८।

इष्टकाल बनाने के नियम—१. सूर्योदय से १२ बजे दिन के भीतर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना (२½) करने से घट्यादि रूप इष्टकाल होता है। जैसे—मान लिया कि सं. २००१ वैशाख शुक्ल द्वितीया, सोमवार को प्रातःकाल ८ बजकर १५ मिनटपर कोई प्रश्न पूछने आया तो उस समय का इष्टकाल उपर्युक्त नियम के अनुसार; अर्थात् ५ बजकर ३५ मिनट सूर्योदय काल को आने के समय ८ बजकर १५ मिनट में से घटाया तो (८.१५)—(५.३५) = (२.४०) इसको ढाई गुना किया, तो ६ घटी ४० पल इष्टकाल हुआ।

२. यदि २ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्तर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई (२½) गुना कर दिनमान में-से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—२००१ वैशाख शुक्ल द्वितीया, सोमवार २ बजकर २५ मिनट पर पृच्छक आया तो इस समय का इष्टकाल निम्न प्रकार हुआ—सूर्यास्त ६.२५—प्रश्नसमय २.२५ = ४.० इसे ढाई गुना किया तो $\frac{४ \times ५}{२}$ = १० घटी हुआ। इसे दिनमान ३२ घड़ी ४ पल में-से घटाया गया, तो (३२+४) − (१०.०) = २२ घटी ४ पल यही इष्टकाल हुआ।

३. सूर्यास्त से १२ बजे रात्रि के भीतर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है। जैसे—सं. २००१ वैशाख शुक्ल द्वितीया सोमवार को रात के १० बजकर ४५ मिनट का इष्टकाल बनाना है। अतः १०.४५—प्रश्नसमय ६.२५ सूर्यास्तकाल = ४.२०

$= ४\frac{२०}{६०} = \frac{१}{४\,३} = \frac{१३}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{६५}{६} = \frac{५}{१०\,६} \times \frac{}{५०}$ पल = १० घटी ५० पल हुआ। इसे दिनमान ३२ घटी ४ पल में जोड़ा, तो (३२.४) + (१०.५०) = (४२.५४) = ४२ घटी ५४ पल इष्टकाल हुआ।

४. यदि १२ बजे रात के बाद और सूर्योदय के अन्दर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदयकाल का अन्तर कर शेष को ढाईगुना कर ६० घड़ी में-से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—सं. २००१ वैशाख शुक्ल द्वितीया, सोमवार को रात के ४ बजकर १५ मिनट का इष्टकाल बनाना है। अतः उपर्युक्त नियम के अनुसार—५.३५ सूर्योदय काल—४.१५ प्रश्न समय = १.२० $= १\frac{२०}{३०} = १\frac{१}{३} = \frac{४}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{१०}{३} = ३\frac{१}{३} \times \frac{६०}{१}$ = २० = ३ घटी २० पल हुआ; इसे ६० घटी में से घटाया, तो (६०.०) − (३.२०) = (५६.४०) = ५६ घटी ४० पल इष्टकाल हुआ।

बिना[1] घड़ी के इष्टकाल बनाने की रीति—दिन में जिस समय इष्टकाल बनाना हो, उस समय अपने शरीर की छाया को अपने पाँव से नापें, परन्तु जहाँ पर खड़े हों, उस

---

१. "भागं वारिधिवारिराशिशशिषु (१४४) प्राहुर्मृगाद्ये बुधा; षट्के बाण-कृपीटयोनिविधुषु (१३५) स्यात् कर्कटाद्ये पुनः। पादैः सप्तभिरन्वितैः प्रथमकं मुक्त्वा दिनाद्ये दले, हित्वैकां घटिकां परे च सततं दत्वेष्टकालं वदेत्॥"
—भु. दी., पृ. ३६।

पाँव को छोड़ के जो संख्या हो, उसमें सात और मिलाकर भाजक कल्पना करें। इस भाजक का मकरादि से मिथुनान्त पर्यन्त अर्थात् सौम्यायन जब तक रवि रहे, तब तक १४४ में भाग दें, और कर्कादि छह राशियों में रवि हो तो १३५ में भाग दें; जो लब्ध हो, उसमें दोपहर से पहले की इष्टघड़ी इष्टकाल हो, तो एक घटा देने से और दोपहर से बाद की इष्टघड़ी हो, तो एक और जोड़ने से घट्यात्मक इष्टकाल होता है।

इष्टकाल पर से लग्न बनाने का नियम—प्रत्येक पंचांग में लग्नसारणी लिखी रहती है। यदि सायनसारणी पंचांग में हो तो सायन सूर्य और निरयन सारणी हो तो निरयन सूर्य के राशि और अंश के सामने जो घट्यादि अंक हैं, उनमें इष्टकाल के घटी, पल को जोड़ देना चाहिए। यदि घटी स्थान में ६० से अधिक हों, तो अधिक को छोड़कर शेष तुल्य अंक उस सारणी में जहाँ हों, उस राशि, अंश को लग्न समझना चाहिए। परन्तु यह गणित क्रिया स्थूल है—उदाहरण—पूर्वोक्त ६ घटी ४० पल इष्टकाल का लग्न बनाना है। इस दिन सायनसूर्य मेष राशि के ११ अंश पर है। लग्न-सारणी में मेषराशि के सूर्य के ११ अंश का फल ४ घटी १५ पल ३६ विपल है। इसे इष्टकाल में जोड़ा, तो—४—१५—३६ + ६—४०—० = संस्कृत फल १०—५५—३६, इस संस्कृत फल को उसी लग्नसारणी में देखा, तो वृषलग्न के २५ अंश का फल १०—५४—३० और २६ अंश का फल ११—४—४६ मिला। अतः लग्न, वृष के २५ और २६ अंश के मध्य में हुआ। इसका स्पष्टीकरण किया तो—

११°—४'—४६" १०°—५५'—३६"

१०°—५४'—३०" १०°—५४'—३०"

$$१०-'१६" = १० + \frac{१६}{६०} = \frac{६१६}{६०}\ १'-६" = १ + \frac{६}{६०} = \frac{६६}{६०}$$

$$\frac{६१६}{६०} : \frac{६६}{६०} :: \text{कला} = \frac{६०\times६६\times६०}{६०\times६१६} = \frac{४१४०}{६१६} = \frac{४२६}{६\ ६१६}$$

$$\frac{४२६}{६१६}\times\frac{६०}{१} = \frac{२५५६०}{६११} = ४१\frac{१८}{६१६}$$ अर्थात् लग्नमान १ राशि २५ अंश ६ कला और ४१ विकला हुआ। इस लग्न को प्रारम्भ में रखकर बारह राशियों को क्रम से स्थापित कर देने से प्रश्नकुण्डली बन जाएगी।

लग्न बनाने[1] का सूक्ष्म नियम—जिस समय का लग्न बनाना हो, उस समय के स्पष्ट सूर्य में तात्कालिक स्पष्ट अयनांश जोड़ देने से तात्कालिक सायन सूर्य होता है। उस तात्कालिक सायनसूर्य के भुक्त या योग्य अंशादि को स्वदेशी उदयमान से गुणा करके ३०

---

१. "तत्कालार्कः सायनः स्वोदयघ्ना भोग्यांशाखत्र्युद्धृता भोग्यकालः एवं यातांशैर्भवेद्यातकालो भोग्यः शोध्योऽभीष्टनाडीपलेभ्यः ॥ तदनु जहीहि गृहोदयौंश्च शेषं गगनगुणघ्नमशुद्धहल्लवाद्यम्। सहितमजादि-गृहैरशुद्धपूर्वैर्भवति विलग्नमदोऽयनांशहीनम्॥ भोग्यतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात्, स्वोदयाप्तांशयुग्भास्करः स्यात्तनुः। अर्कभोग्यस्तनार्भुक्तकालान्वितो युक्तमध्योदयोऽभीष्टकालो भवेत्॥" —ग्र. ला. चि. प्र.।

-का भाग देने पर लब्ध पलादि भुक्त या भोग्यकाल होता है—भुक्तांश को स्वोदयमान से गुणा करके ३० का भाग देने पर भुक्तकाल और भोग्यांश को स्वोदय से गुणा करके ३० का भाग देने पर भोग्यकाल होता है। इस भुक्त या भोग्यकाल को इष्टघटी, पल में घटाने से जो शेष रहे, उसमें भुक्त या भोग्य राशियों के उदयमानों को जहाँ तक घट सके, घटाना चाहिए। शेष को ३ से गुणाकर, अशुद्धोदय मान—जो राशि घटी नहीं है, उसके उदयमान के भाग देने पर जो लब्ध अंशादि आएँ, उनको क्रम से अशुद्ध राशि में जोड़ने से सायन स्पष्ट लग्न होता है। इसमें-से अयनांश घटा देने पर स्पष्ट लग्न आता है।

प्रश्नाक्षरों[1] से लग्न निकालने का नियम—प्रश्न का प्रथम अक्षर अवर्ग हो तो सिंह लगन, कवर्ग हो तो मेष और वृश्चिक लग्न, चवर्ग हो तो तुला और वृष लग्न, टवर्ग हो तो मिथुन और कन्यालग्न, तवर्ग हो तो धनु और मीन लग्न, पवर्ग हो तो कुम्भ और मकर लग्न एवं यवर्ग अथवा शवर्ग हो तो कर्क लग्न जानना चाहिए। जहाँ एक-एक वर्ग में दो-दो लग्न कह गये हैं, वहाँ विषम प्रश्नाक्षरों के होने पर विषम लग्न और सम प्रश्नाक्षरों के होने पर सम लग्न जानना चाहिए। इस लग्न पर-से ग्रहों के अनुसार फल बतलाना चाहिए।

तीसरा स्वरविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त अदृष्ट पर आश्रित है। अर्थात् पृच्छक के अदृष्ट का प्रभाव सभी वस्तुओं पर पड़ता है। बल्कि यहाँ तक कि उसके अदृष्ट के प्रभाव से वायु में भी विचित्र प्रकार का प्रकम्पन उत्पन्न होता है, जिससे वायु चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर के रूप में परिवर्तित हो पृच्छक के इष्टानिष्ट फल को प्रकट करती है। कुछ लोगों का अभिमत है कि वायु का ही प्रभाव प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न मानवों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का पड़ता है। स्वरविज्ञान वायु के द्वारा घटित होनेवाले प्रभाव को व्यक्त करता है। सामान्य स्वरविज्ञान निम्न प्रकार है—

मानव-हृदय में अष्टदलकमल होता है। उस कमल के आठों पत्रों पर सदैव वायु चलता रहता है। उस वायु में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व चलते रहते हैं और इनके संचालन से सब प्रकार का शुभाशुभ फल होता है। किन्तु विचारणीय बात यह है कि इनके संचालन का ज्ञान करना ऋषि, मुनियों को ही सम्भव है। साधारण मानव जिसे स्वराभ्यास नहीं है, वह दो चार दिन में इसका ज्ञान नहीं कर सकता है। आजकल स्वरविज्ञान के जाननेवालों का प्रायः अभाव है। केवल चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर के स्थूल ज्ञान से प्रश्नों का उत्तर देना अनुचित है। स्थूल ज्ञान करने का नियम यह है कि नाक के दक्षिण या वाम किसी भी छिद्र से निकलता हुआ वायु (श्वास) यदि छिद्र के बीच से निकलता हो तो पृथ्वी तत्त्व; छिद्र के अधोभाग से अर्थात् नीचे वाले ओष्ठ को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो जलतत्व; छिद्र के ऊर्ध्व भाग को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो अग्नितत्व; छिद्र से तिरछा होकर निकलता हो तो वायुतत्व और एक छिद्र से बढ़कर क्रम से दूसरे छिद्र से निकलता

---

१. 'अवर्गे सिंहलग्नं च पवर्गे मेषवृश्चिकौ। चवर्गे यूकवृषभौ टवर्गे युग्मकन्यके॥ तवर्गे धनुमीनौ च पवर्गे कुम्भनक्रकौ। यशवर्गे कर्कटश्च लग्नं शब्दाक्षरैर्वदेत्॥" —के. प्र. सं., पृ. ५४।

हो तो आकाशतत्त्व चलता है, ऐसा जानना चाहिए। अथवा[1] १६ अंगुल का एक शंकु बनाकर उस पर ४ अंगुल, ८ अंगुल, १२ अंगुल और १६ अंगुल के अन्तर पर रुई या अत्यन्त मन्द वायु से हिल सके, ऐसा कुछ और पदार्थ लगा के उस शंकु को अपने हाथ में लेकर नासिका के दक्षिण या वाम किसी भी छिद्र से श्वास चल रहा हो, उसके समीप लगा करके तत्त्व की परीक्षा करनी चाहिए। यदि आठ अंगुल तक वायु (श्वास) बाहर जाता हो तो पृथ्वी तत्त्व, सोलह अंगुल तक बाहर जाता हो तो जलतत्व, बारह अंगुल तक बाहर जाता हो तो वायुतत्त्व, चार अंगुल तक बाहर जाता हो तो अग्नितत्त्व और चार अंगुल से कम दूरी तक जाता हो अर्थात् केवल बाहर निर्गमन मात्र हो तो आकाशतत्त्व होता है। पृथ्वीतत्त्व के चलने से लाभ, जलतत्त्व के चलने से तत्क्षण लाभ, वायु[2] और अग्नितत्व के चलने से हानि और आकाश तत्व के चलने से फल का अभाव होता है। मतान्तर[3] से पृथ्वी और जलतत्व के चलने से शुभ फल; वायु और आकाशतत्त्व के चलने से अनिष्ट फल एवं शारीरिक कष्ट तथा अग्नितत्त्व के चलने से मिश्रित फल होता है।

शरीर के वाम[4] भाग में इड़ा और दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी रहती है। इड़ा में चन्द्रमा स्थित है और पिंगला में सूर्य। नाक के दक्षिण छिद्र से हवा निकलती हो तो सूर्य स्वर और वाम छिद्र से हवा निकलती हो तो चन्द्रस्वर जानना चाहिए। चन्द्रस्वर में राजदर्शन, गृहप्रवेश एवं राज्याभिषेक आदि शुभ कार्यों की सिद्धि और सूर्यस्वर में स्नान, भोजन, युद्ध, मुकद्दमा, वादविवाद आदि कार्यों की सिद्धि होती है। प्रश्न[5] के समय चन्द्रस्वर चलता हो और पृच्छक वाम भाग में खड़ा होकर प्रश्न पूछे, तो निश्चय से कार्यसिद्धि होती है। सूर्यस्वर चलता हो और पृच्छक दक्षिण भाग में खड़ा होकर प्रश्न पूछे, तो कष्ट से कार्यसिद्धि होती है। जिस तरफ का स्वर नहीं चलता हो, उस ओर खड़ा होकर प्रश्न पूछे तो कार्य हानि होती है। यदि सूर्य (दक्षिण) नाड़ी में विषमाक्षर और चन्द्र (वाम) नाड़ी में पृच्छक समाक्षरों का उच्चारण करे, तो अवश्य कार्यसिद्धि होती है। किसी-किसी के मत में दक्षिण स्वर चलने पर प्रश्नकर्ता के सम प्रश्नाक्षर हों तो धनहानि, रोगवृद्धि, कौटुम्बिक कष्ट एवं अपमान आदि सहन करने पड़ते हैं और यदि दक्षिण स्वर चलने पर विषम प्रश्नाक्षर हों तो सन्तानप्राप्ति, धन-लाभ, मित्रसमागम, कौटुम्बिक सुख एवं स्त्रीलाभ होता है। जिस समय श्वास भीतर जा रहा हो, उस समय पृच्छक प्रश्न करे तो जय और बाहर आ रहा हो, उस समय प्रश्न करे तो हानि होती है। जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी ओर आकर पृच्छक प्रश्न करे तो मनोरथसिद्धि और विपरीत ओर पृच्छक खड़ा हो तो कार्य हानि होती है। स्वर का विचार सूक्ष्म रीति से

---

१. "वामे वा दक्षिणे वापि धाराष्टाङ्गुलदीर्घिका। षोडशाङ्गुलमापः स्युस्तेजश्च चतुरङ्गुलम्॥ द्वादशांगुलदीर्घः स्याद्वायुर्व्योमाङ्गुलेन हि।"—स. सा., पृ. ७३। तत्त्वानां विवेचनं शिवस्वरोदये, पृ. ४२-६० तथा समरसारे, पृ. ७०-६० इत्यादिषु द्रष्टव्यम्।

२. शि. स्व., ४४-४५।

३. स.सा., पृ. ७६।

४. शि. स्व., पृ. १५-१६।

५. स. सा., पृ. ८३।

जानने के लिए शरीर में रहनेवाली ७२ हजार[1] नाड़ियों का परिज्ञान करना अत्यावश्यक है। इन नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से ही चन्द्र और सूर्य स्वर का पूर्ण परिज्ञान हो सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रश्नाक्षरवाले सिद्धान्त का ही निरूपण किया गया है। समस्त वर्णमाला के स्वर और व्यंजनों को पाँच वर्गों में विभक्त किया है। तथा इसी विभाजन पर-से संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ विशेष संज्ञाएँ निर्धारित की हैं। केरलप्रश्नसंग्रह में उपर्युक्त संज्ञाएँ प्रश्नाक्षरों की न बताकर चर्या-चेष्टा की बताई गई हैं। गर्गमनोरमा, केरलप्रश्नरत्न आदि ग्रन्थों में ये संज्ञाएँ समय-विशेष की बतायी गयी हैं। फलाफल का विवेचन प्रायः समान हैं। केरलीयप्रश्नरत्न में ४५ वर्णों के नौ वर्ग निश्चित किये हैं–

अ आ इ ई उ ऊ इन वर्गों की अवर्ग संज्ञा; ए ऐ ओ औ अं अः की ए वर्ग; क ख ग घ ङ की कवर्ग; च छ ज झ ञ की चवर्ग; ट ठ ड ढ ण की टवर्ग; त थ द ध न की तवर्ग; प फ ब भ म की पवर्ग; य र ल व की यवर्ग और श ष स ह की शवर्ग संज्ञा बतायी है। वर्गविभाजन क्रम में अन्तर रहने के कारण संयुक्त, असंयुक्तादि प्रश्न संज्ञाओं में भी अन्तर है।

पाँचों वर्गों के योग और उनके फल

तथाहि[2]–पञ्चवर्गानपि[3] क्रमेण प्रथमतृतीयवर्गांश्च[4] परस्परं दृष्ट्वा योजयेत्[5]। प्रथम-तृतीययोः द्वितीयचतुर्थाभ्यां योगः[6], पृथग्भावात् पञ्चमवर्गोऽपि (वर्गस्यापि) प्रथमतृतीयाभ्यां[7] योगः। यत्र यत्किञ्चित् पृच्छति तत्सर्वमपि लभते। तत्र स्वकाययोगे[8] स्वकीयचिन्ता; परकाययोगे परकीयचिन्ता। स्ववर्गसंयोगे[9] स्वकीयचिन्ता, परवर्गसंयोगे परकीयचिन्ता इत्यर्थः। कण, चण, उणि इत्यादि।

---

१. शि. स्व., पृ. ६।

२. "प्रथमं च तृतीयं च संयुक्तं पक्षमेव च। द्वितुर्थमसंयुक्तं क्रमादभिहितं भवेत्॥"–चं, प्र. श्लो. ३४, प्रश्नाक्षराणां पक्षिरूपविभाजनं तद्विशेषफलं च पंचपक्षीनाम्नः ग्रन्थस्य तृतीयचतुर्थ पृष्ठयोः द्रष्टव्यम्। प्रश्नाक्षराणां नववर्गक्रमेण संयुक्तादिविभागः केरलप्रश्नरत्नग्रन्थस्य सप्तविंशतितमपृष्ठे द्रष्टव्यः। इयं योजनापि तत्र प्रकारान्तरेण दृश्यते।

३. पंचमवर्ग्योऽपि–क. मू.।

४. वर्ग्याश्च–क. मू.।

५. योजनीयाः–क.मू.।

६. योगः, इति पाठो नास्ति–क. मू.।

७. प्रथमतृतीयवर्गाभ्यां–क. मू.।

८. स्वकायसंयोगे–क.मू.।

९. 'स्ववर्गसंयोगेस्वकीयचिन्ता'–इति पाठो नास्ति–क.मू.।

अर्थ—पाँचों वर्गों को क्रम से प्रथम, तृतीय वर्ग के साथ मिलाकर फल की योजना करनी चाहिए। प्रथम और तृतीय का द्वितीय और चतुर्थ के साथ योग तथा पृथक् होने के कारण-पंचम वर्ग को दो भागों में विभक्त करने के कारण, पंचम वर्ग का प्रथम और तृतीय वर्ग के साथ योग करना चाहिए। उपर्युक्त संयोगी वर्गों के प्रश्नाक्षर होने पर पूछनेवाला जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, उन सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यदि पूछनेवाला अपने शरीर को स्पर्श कर अर्थात् स्वशरीर को खुजलाते हुए या अन्य प्रकार से स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, तो स्वसम्बन्धी चिन्ता और दूसरे के शरीर को छूते हुए प्रश्न करे तो परसम्बन्धी चिन्ता—प्रश्न, कहना चाहिए। यदि प्रथम, द्वितीयादि वर्गों में से प्रश्नाक्षर स्ववर्ग संयुक्त हों तो स्वसम्बन्धी चिन्ता अर्थात् पृच्छक अपने शरीरादि के सम्बन्ध में प्रश्न और भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रश्नाक्षर हों तो परसम्बन्धी चिन्ता अर्थात् पृच्छक अपने से भिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना चाहता है। जैसे कण, चण, उणि इत्यादि।

विवेचन—प्रश्न का फल बतलानेवाले गण को प्रश्न का फल निकालने के लिए सबसे पहले पूर्वोक्त पाँचों वर्गों को एक कागज या स्लेट पर लिख लेना चाहिए। फिर संयुक्त वर्ग बनाने के लिए प्रथम और द्वितीय का अर्थात् प्रथम वर्ग में आये हुए अ क च ट त प य श इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग वाले आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों के साथ योग करना चाहिए। वर्गाक्षरों में पंचम वर्ग के अक्षर पृथक् होने के कारण उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः इन अक्षरों का प्रथम और तृतीय वर्ग वाले अक्षरों के साथ योग करना चाहिए। जैसे चण, गण, उण इत्यादि।

उदाहरण—मोतीलाल नामक कोई व्यक्ति दिन के ११ बजे प्रश्न पूछने आया। फल बतलानेवाले ज्योतिषी को सर्वप्रथम उसकी चर्या, चेष्टा, उठन-बैठन, बात-चीत आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए। मनोगत भावों के अवगत करने में उपर्युक्त चेष्टा, चर्यादि से पर्याप्त सहायता मिलती है, क्योंकि मनोविज्ञान-सम्मत अबाधभावानुषङ्ग के क्रम से भविष्यत् में घटित होनेवाली घटनाएँ भी प्रतीकों द्वारा प्रकट हो जाती हैं। चतुर गणक चेहरे की भावभंगी से भी बहुत-सी बातों का ज्ञान कर सकता है। अतः प्रश्नशास्त्र के साथ लक्षण शास्त्र का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसे लक्षणशास्त्र का अच्छा ज्ञान है, वह बिना गणित क्रिया के फलित ज्योतिष की सूक्ष्म बातों को जान सकता है।

पृच्छक अकेला आए, और आते ही तिनके, घास आदि को तोड़ने लगे तो समझना चाहिए कि उसका कार्य सिद्ध नहीं होगा। यदि वह अपने शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न पूछे तो समझना चाहिए कि इसका कार्य चिन्तासहित सिद्ध होगा। अतः मोतीलाल की चर्या, चेष्टा का निरीक्षण करने के बाद मध्याह्न काल का प्रश्न होने के कारण उससे किसी फल का नाम पूछा, तो मोतीलाल ने आम का नाम बताया। अब गणक को विचार करना चाहिए कि 'आम' इस प्रश्न-वाक्य में किस-किस वर्ग के अक्षर संयुक्त हैं? विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि 'आ' प्रथम वर्ग का प्रथमाक्षर है और 'म' पंचम वर्ग का सप्तम अक्षर है। अतः

प्रश्न में पंचम और प्रथम वर्ग का संयोग पाया जाता है, इसलिए पृच्छक के अभीष्ट कार्य की सिद्धि होगी। प्रश्न का फल बतलाने का दूसरा नियम यह है कि पृच्छक से पहले उसके आने का हेतु पूछना चाहिए और उसी वाक्य को प्रश्नवाक्य मानकर उत्तर देना चाहिए। जैसे—मोतीलाल से उसके आने का हेतु पूछा, तो उसने कहा कि 'मुकद्दमे की हार-जीत' के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने आया हूँ। अब गणक को मोतीलाल के मुख से कहे गये 'मुकद्दमे की हार जीत' इस प्रश्न वाक्य पर विचार करना चाहिए। इस वाक्य के प्रथम अक्षर 'म' में पंचम वर्ग के म् और उ का सम्बन्ध है, द्वितीय अक्षर 'क' में द्वितीय वर्ग के क् और प्रथम वर्ग के अ का संयोग है, तृतीय अक्षर 'द्द' में तृतीय वर्ग के द् + द् और प्रथम वर्ग के अ का संयोग है और चतुर्थ अक्षर 'मे' में पंचम वर्ग के अक्षर म् और प्रथम वर्ग के ए का संयोग है। अतः इस वाक्य में प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ग का योग है, इसलिए मुकद्दमे में जीत होगी। इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के उत्तर निकालने चाहिए अथवा सबसे पहले प्रश्नकर्ता जिस वाक्य से बात-चीत आरम्भ करे, उसी को प्रश्नवाक्य मानकर उत्तर देना चाहिए।

प्रश्नलग्नानुसार प्रारम्भिक फल निकालने के लिए द्वादशभावों से निम्न प्रकार विचार करना चाहिए। लग्न से[1] आरोग्य, पूजा, गुण, वर्तन, आयु, अवस्था, जाति, निर्दोषता, सुख, क्लेश, आकृति एवं शारीरिक स्थिति आदि बातों का विचार; धनभाव—द्वितीय भाव से माणिक्य, मोती, रत्न, धातु, वस्त्र, सुवर्ण, चाँदी, धान्य, हाथी, घोड़े आदि के क्रय-विक्रय का विचार; तृतीय भाव से भाई, नौकर, दास, शूरकर्म, भ्रातृचिन्ता एवं सद्बुद्धि लाभ आदि बातों के सम्बन्ध में विचार; चतुर्थ भाव से घर, निधि, ओषध, खेत, बगीचा, मिल, स्थान, हानि, लाभ, गृहप्रवेश, वृद्धि, माता-पिता, एवं देशसम्बन्धी कार्य इत्यादि बातों का विचार; पंचम भाव से विनय, प्रबन्ध-पटुता, विद्या, नीति, बुद्धि, गर्भ, पुत्र, प्रज्ञा, मन्त्रसिद्धि, वाक्चातुर्य एवं माता की स्थिति इत्यादि बातों का विचार; छठे भाव से अस्वस्थता, खोटी दशा, शत्रु-स्थिति, उग्रकर्म, क्रूरकर्म, शंका, युद्धकी सफलता, असफलता, मामा, भैंसादि पशु, रोग एवं मुकद्दमे की हार-जीत आदि बातों का विचार; सातवें भाव से स्वास्थ्य, काम विकार, भार्या सम्बन्धी विचार, भानजे सम्बन्धी कार्यों का विचार, चौरकर्म, बड़े कार्यों की सफलता और असफलता का विचार एवं सौभाग्य आदि बातों का विचार; अष्टम भाव से आयु, विरोध, मृत्यु, राज्य-भेद, बन्धुजनों का छिद्र, गढ़, किला आदि की प्राप्ति, शत्रु-वध, नदी-तैरना, कठिन कार्यों में सफलता प्राप्त करना एवं अल्पायु सम्बन्धी बातों का विचार; नौवें भाव से धार्मिक शिक्षा, दीक्षा, देवमन्दिर का निर्माण यात्रा, राज्याभिषेक, गुरु, धर्मकार्य, बावड़ी, कुआँ, तालाब आदि के निर्माण का विचार, साला, देवर और भावज के सुख-दुःख का विचार एवं जीवन में सुख, शान्ति आदि बातों का विचार; दसवें भाव से जल की वृष्टि, मान, पुण्य,

---

१. दै.व., पृ. ७-१०।

राज्याधिकार, पितृ-कार्य, स्थान-भ्रष्टता एवं सम्मान-प्राप्ति आदि बातों का विचार; ग्यारहवें भाव से कार्य की वृद्धि, लाभ, सवारी के सुख का विचार, कन्या, हाथी, घोड़ा, सोना आदि द्रव्यों के लाभालाभ का विचार एवं श्वसुर की चिन्ता इत्यादि बातों का विचार और बारहवें भाव से त्याग, भोग, विवाह, खेती, व्यय, युद्ध सम्बन्धी जय-पराजय, काका, मौसी, मामी के सम्बन्ध और उनके सुख-दुःख इत्यादि बातों का विचार करना चाहिए।

उपर्युक्त बारह भावों में ग्रहों की स्थिति के अनुसार घटित होनेवाले फल का निर्णय करना चाहिए। ग्रहों को दीप्त[1], दीन, स्वस्थ, मुदित, सुप्त, प्रपीड़ित, मुषित, परिहीयमानवीर्य, प्रवृद्धवीर्य, अधिक वीर्य ये दस अवस्थाएँ कही गयी हैं। उच्चराशिक का ग्रह दीप्त, नीच राशि का दीन, स्वगृह का स्वस्थ, मित्रगृह मुदित, शत्रुगृह का सुप्त, युद्ध में अन्य ग्रहों के साथ पराजित हुआ निपीड़ित, अस्तंगत गृह मुषित, नीच राशि के निकट पहुँचा हुआ परिहीयमानवीर्य, उच्चराशि के निकट पहुँचा ग्रह प्रवृद्धवीर्य और उदित होकर शुभ ग्रहों के वर्ग में रहनेवाला ग्रह अधिकवीर्य कहलाता है। दीप्त अवस्था का ग्रह हो तो उत्तम सिद्धि; दीन अवस्था का ग्रह हो तो दीनता, स्वस्थ अवस्था का ग्रह हो तो अपने मन का कार्य, सौख्य एवं श्रीवृद्धि; मुदित अवस्था का ग्रह होने से आनन्द एवं इच्छित कार्यों को सिद्धि; प्रसुप्त अवस्था का ग्रह हो तो विपत्ति; प्रपीड़ित अवस्था का ग्रह हो तो शत्रुकृत पीड़ा; मुषित अवस्था का ग्रह हो तो धनहानि; प्रवृद्धवीर्य हो तो अश्व, गज, सुवर्ण एवं भूमि लाभ और अधिकवीर्य ग्रह होने से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास एवं विपुल सम्पत्ति लाभ होता है। पहले बारह भावों में जिन-जिन बातों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बताया गया है, उन बातों को ग्रहों के बलाबल के अनुसार तथा दृष्टि, मित्रामित्र सम्बन्ध आदि विषयों को ध्यान में रखकर फल बतलाना चाहिए। किसी-किसी आचार्य के[2] मत से प्रश्नकाल में ग्रहों के उच्च, नीच, मित्र, सम, शत्रु, शयनादिमान, बलाबल, स्वभाव और दृष्टि आदि बातों का विचारकर प्रश्न का फल बतलाना चाहिए। गणक को प्रश्न सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों पर विचार करने के साथ ही यह भी विचार कर लेना चाहिए कि पृच्छक दुष्टभाव से प्रश्न तो नहीं कर रहा है। यदि दुष्टभाव से प्रश्न करता है, तो उसे निष्फल समझकर उत्तर नहीं देना चाहिए। प्रश्न का सम्यक् फल तभी निकलता है, जब पृच्छक अपनी अन्तरंग प्रेरणा से प्रेरित हो प्रश्न करता है, अन्यथा प्रश्न का फल साफ नहीं निकलता। दुष्टभाव से किये गये प्रश्न की पहचान यह है कि यदि प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और शनि हो, सूर्य कुम्भ राशि में हो और बुध प्रभाहीन हो, तो दुष्टभाव से किया गया प्रश्न समझना चाहिए।

---

१. दै. व., पृ. ३-४।

१. प्र. भू. पृ १३।

संयुक्त प्रश्नाक्षर और उनका फल

अथ[1] संयुक्तानि[2] कादिगादीनि संयुक्तानि प्रश्नाक्षराणि प्रश्ने लाभः पुत्रादिवस (श) क्षेमंकराणि। जादिगादीनि[3] प्रश्नाक्षराणि लाभकराणि स्त्रीजनकारीणि।

अर्थ—संयुक्तों को कहते हैं—कादि—क च ट त प य श इन प्रथम वर्ग के अक्षरों को गादि—ग ज ड द ब ल स इस तृतीय वर्ग के अक्षरों के साथ मिलाने से संयुक्त प्रश्न बनते हैं। संयुक्त प्रश्न होने पर लाभ होता है और पुत्रादि के कारण कल्याण होता है। यदि प्रश्नाक्षर जादि, गादि अर्थात् तृतीय वर्ग के ज ग ड द ब ल स हों तो लाभ करानेवाले तथा स्त्री-पुत्रादि की प्राप्ति करानेवाले होते हैं।

विवेचन—पहले आचार्य ने संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित, अनभिहित, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध ये आठ भेद प्रश्नों के कहे हैं। इन आठ प्रश्नभेदों का लक्षण और फल बतलाते हुए सर्वप्रथम संयुक्त का फल और लक्षण बताया है। प्रथम और तृतीय वर्ग के अक्षरों के संयोग वाले प्रश्न संयुक्त कहलाते हैं। संयुक्त प्रश्न होने पर लाभ होता है। केरलसंग्रहादि कतिपय ज्योतिष ग्रन्थों में अपने शरीर को स्पर्श करते हुए प्रश्न करने का नाम ही संयुक्त प्रश्न कहा है। इस मत के अनुसार भी संयुक्त प्रश्न होने पर भी लाभ होता है। उदाहरण—जैसे देवदत्त प्रश्न पूछने आया कि मैं परीक्षा में पास होऊँगा या नहीं? गणक ने किसी अबोध बालक से फल का नाम पूछा तो उसने 'लौका' का नाम लिया। अब प्रश्नवाक्य 'लौका' का विश्लेषण किया तो प्रथमाक्षर 'लौ' में तृतीय वर्ग का 'ल्' और चतुर्थ वर्ग का 'औ' संयुक्त है तथा द्वितीय वर्ण 'का' में प्रथमवर्ग के 'क्' और आ दोनों ही वर्ग सम्मिलित हैं, अतः प्रश्न में प्रथम, और तृतीय और चतुर्थ वर्ग का संयोग है। उपयुक्त विश्लेषित वर्गों में अधिकांश वर्ण प्रथम और तृतीय वर्ण के है, अतः यह संयुक्त प्रश्न है। इसका फल परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करना है। प्रस्तुत ग्रन्थ में यह एक विशेषता है कि तृतीय वर्ग के वर्णों की भी संयुक्त संज्ञा बतायी गयी है। संयुक्त संज्ञक प्रश्न धन लाभ करानेवाले एवं स्त्री, पुत्रादि की प्राप्ति करानेवाले होते हैं।

प्रश्नकुतूहलादि जिन ग्रन्थों में प्रश्नाक्षरों के मगण, यगणादि भेद किये हैं, उनके मतानुसार प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षर मगण, नगण, भगण और यगण इन चारों गणों से संयुक्त[4] हों तो लाभ होता है। यदि मगण और नगण इन दोनों गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो दिन

---

१. "प्रथमतृतीयाक्षरयोः संयुक्तेति स्वतो मिथश्चाख्याः। कग, चज, टड, तद, पब, यल, शस, कज, चग, टग, तग, पग, यग, ञग, टल, तज, पज, यज, शज, कड, चड, तड, पड, यड, शड, कद, चद, टद, पद, तद, शद, यद, कब, चब, टब, तब , पब, यब, शब, कल, चल, टल, तल, पल, यल, शल, कस, चस, टस, तस, पस, यस इत्याद्यनन्तभेदाः भवन्ति।"—के. प्र. र., पृ. २७—२९। चन्द्रो. श्लो. ३४-३७। के. प्र. सं., पृ. ४। नरपतिज., पृ. ११।

२. संयुक्तादीनि—क. मू.।

३. चादिगादीनि—क. मू.।

४. प्र. कु., पृ. १२।

में लाभ और भगण एवं यगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो रात में लाभ होता है। यदि जगण और रगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो दिन में हानि एवं सगण और तगण इन दो गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो रात में हानि होती है। जगण, रगण, सगण और तगण इन चार गणों से संयुक्त प्रश्नाक्षर हों तो कार्यहानि समझनी चाहिए।

लग्नानुसार प्रश्नों का फल निकालने का प्राचीन नियम इस प्रकार है कि ज्योतिषी की[1] पूर्व की ओर मुख कर मेष, वृष आदि १२ राशियों की कल्पना कर लेनी चाहिए और पृच्छक जिस दिशा में हो उस दिशा की राशि को आरूढ़ लग्न मानकर फल कहना चाहिए। उपर्युक्त नियम का संक्षिप्त सार यह है—मेष, वृष आदि बारह राशियों को लिखकर उनकी पूर्वादि दिशाएँ मान लेनी चाहिए अर्थात् मेष और वृष-पूर्व, मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या दक्षिण, तुला और वृश्चिक पश्चिम एवं धनु, मकर, कुम्भ और मीन उत्तर संज्ञक है। निम्न चक्र से आरूढ़ लग्न का ज्ञान अच्छी तरह हो सकता है।

आरूढ़ राशिबोधक चक्र

पूर्व

	१२	१	२	३
	११			४
उत्तर	१०			५ दक्षिण
	९	८	७	६

पश्चिम

उदाहरण—मोतीलाल प्रश्न पूछने आया और वह पूर्व की ओर ही बैठ गया। अब यहाँ विचार करना है कि पूर्व दिशा की मेष और वृष इन दो राशियों में-से कौन-सी राशि को आरूढ़ लग्न माना जाए? यदि मोतीलाल उत्तर-पूर्व के कोने के निकट है तो मेष और दक्षिण-पूर्व के कोने के निकट है तो वृष राशि को आरूढ़ लग्न मानना चाहिए। विचार से पता लगा कि मोतीलाल दक्षिण और पूर्व के कोने के निकट है, अतः उसकी आरूढ़ लग्न वृष मानना चाहिए। आरूढ़ लग्न निकालने के सम्बन्ध में मेरा निजी मत यह है कि उपर्युक्त चक्र के अनुसार बारह राशियों को स्थापित कर लेना चाहिए, फिर पृच्छक से किसी भी राशि का स्पर्श कराना चाहिए, जिस राशि को पृच्छक छुए, उसी को आरूढ़ लग्न मानकर फल बताना चाहिए। फल-प्रतिपादन करने के लिए आरूढ़ लग्न के साथ लग्न का भी विचार

---

१. बृ. पा. हो., पृ. ७४०।

करना आवश्यक है। अतः छत्र लग्न का ज्ञान करने के लिए मेषादि वीथियों को जान लेना चाहिए। वृष[1], मिथुन, कर्क और सिंह इन चार राशियों की मेष वीथी; वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ इन चार राशियों की मिथुन वीथी और मेष, मीन, कन्या और तुला इन चार राशियों की वृषभ वीथी जाननी चाहिए। आरूढ़ लग्न से वीथी की राशि जितनी संख्यक हो प्रश्नलग्न से उतनी ही संख्यक राशि छत्रलग्न कहलाती है। ज्ञानप्रदीपिकाकार[2] के मतानुसार मेष प्रश्न लग्न की छत्र राशि वृष; वृष की मेष; मिथुन, कर्क और सिंह की छत्र राशि मेष; कन्या और तुला की मेष; वृश्चिक और धनु की मिथुन; राशि मेष; कन्या और तुला की मेष; वृश्चिक और धनु की मिथुन; मकर की मिथुन; कुम्भ की मेष और मीन की वृष छत्र राशि है। प्रश्न समय में आरूढ़, छत्र और प्रश्न लग्न के बलाबल से प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। प्रश्न का विशेष विचार करने के लिए भूत,[3] भविष्य, वर्तमान, शुभाशुभ दृष्टि, पाँच मार्ग, चार केन्द्र, बलाबल, वर्ग, उदयबल, अस्तबल, क्षेत्र दृष्टि, नर, नारी, नपुंसक, वर्ण, मृग तथा नर आदि रूप, किरण, योजन, आयु, रस एवं उदयमान आदि बातों की परीक्षा करना अत्यावश्यक है। यदि प्रश्न[4] करनेवाला एक ही समय में बहुत-से प्रश्न न पूछे तो पहला प्रश्न लग्न से, दूसरा चन्द्रमा से, तीसरा सूर्य के स्थान से, चौथा बृहस्पति के स्थान से पाँचवाँ प्रश्न बुध के स्थान से और छठा बली शुक्र या बुध इन दोनों में जो अधिक बलवान हो, उसी के स्थान से बतलाना चाहिए। ग्रह अपने क्षेत्र में, मित्र क्षेत्र में, अपने और मित्र के षड्वर्गों में, उच्चराशि में, मूलत्रिकोण में, नवांश में, शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर बलवान् होते हैं। चन्द्रमा और शुक्र स्त्रीराशि—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन राशियों में; सूर्य, मंगल, बुध, गुरु और शनि पुरुष राशियों में—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन राशियों में बलवान होते हैं। बुध और बृहस्पति लग्न में स्थित रहने से पूर्व दिशा में, सूर्य और मंगल चौथे स्थान में रहने से दक्षिण दिशा में, शनि सातवें भाव में रहने से पश्चिम दिशा में और शुक्र दसवें भाव में रहने से उत्तर दिशा में दिग्बली होते हैं। तथा चन्द्रमा और सूर्य उत्तरायण में अन्य भौमादि पाँच ग्रह वक्री, उज्ज्वल एवं पुष्ट रहने से बलवान होते हैं। सूर्य, शुक्र और बृहस्पति दिन में; मंगल और शनि रात्रि में; बुध दिन और रात्रि दोनों में; शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में और अपने-अपने दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष और काल होरा में एवं पाप ग्रह कृष्णपक्ष और अपने-अपने दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष और काल होरा में बली होते हैं। इस प्रकार ग्रहों के कालबल का विचार करना चाहिए। प्रश्नकाल में स्थान बल और सम्बन्ध बल का विचार करना भी परमावश्यक है। तथा लग्न से विचार करनेवाले ज्योतिषी को भावविचार निम्न प्रकार से करना चाहिए। जो भाव अपने स्वामी से युत हों या देखे जाते हों अथवा बुध, गुरु और पूर्णचन्द्र से युक्त हों तो उनकी

---

१. बृ. पा. हो., पृ. ७४१।
२. ज्ञा. प्र. पृ. ८।
३. ज्ञा. प्र. पृ. १।
४. ता. नी., पृ. २५४। ज्ञा. प्र., पृ. १।

वृद्धि होती है और पाप ग्रह संयुक्त, बुध, क्षीण चन्द्रमा, शनि, मंगल और सूर्य से युत या देखे जाते हों तो हानि होती है।

असंयुक्त प्रश्नाक्षर

अथासंयुक्तानि[1] प्रथमद्वितीयौ कख, चछ इत्यादि; द्वितीयचतुर्थौ[2] खग छज इत्यादि; तृतीयचतुर्थी गघ, जझ इत्यादि; चतुर्थपञ्चमौ घङ, झञ इत्यादि।

अर्थ—असंयुक्त प्रश्नाक्षर प्रथम-द्वितीय, द्वितीय-चतुर्थ, तृतीय-चतुर्थ और चतुर्थ-पंचम वर्ग के संयोग से बनते हैं। १—प्रथम और द्वितीय वर्गाक्षरों के संयोग से—कख, चछ, टठ, तथ, पफ, यर इत्यादि; २—द्वितीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से—खघ, छझ, ठढ, थध, फभ, रव इत्यादि; ३—तृतीय और चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से—गघ, जझ, डढ, दध, बभ, यल इत्यादि एवं ४—चतुर्थ और पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से घङ, झञ, ढण, धन, भम इत्यादि विकल्प बनते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षर प्रथम-द्वितीय द्वितीय-चतुर्थ, तृतीय-चतुर्थ, और चतुर्थ-पंचम वर्ग के हों तो असंयुक्त प्रश्न समझना चाहिए। प्रश्नवाक्य में असंयुक्त प्रश्नों का निर्णय करने के लिए प्रश्नों का सम्बन्ध क्रम से लेना चाहिए। असंयुक्त प्रश्न होने से फल की प्राप्ति बहुत दिनों के बाद होती है। यदि प्रथम-द्वितीय वर्गों के अक्षर मिलने से असंयुक्त प्रश्न हो तो धन-लाभ, कार्य-सफलता और राज-सम्मान; द्वितीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो तो मित्रप्राप्ति, उत्सववृद्धि और कार्यसाफल्य; तृतीय-चतुर्थ वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो तो अल्पलाभ, पुत्रप्राप्ति, मांगल्यवृद्धि और प्रियजनों से विवाद एवं चतुर्थ-पंचम वर्गाक्षरों के संयोग से असंयुक्त प्रश्न हो तो घर में विवाहादि मांगलिक उत्सवों की वृद्धि, स्वजन-प्रेम, यशप्राप्ति, महान् कार्यों में लाभ और वैभव-वृद्धि इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है। यदि प्रश्नकर्ता का वाचिक प्रश्न हो और उसके प्रश्नवाक्य के अक्षर असंयुक्त हों तो पृच्छक को कार्य में सफलता मिलती है। आचार्यप्रवर गर्ग के मतानुसार असंयुक्त प्रश्नों का फल पृच्छक के मनोरथ को पूरण करनेवाला होता है। कुछ ग्रन्थों में बताया गया है कि यदि पृच्छक[3] रास्ते में हो, शयनागार में हो, पालकी में बैठा हो या मोटर, साइकिल, घोड़े, हाथी अथवा अन्य किसी सवारी पर सवार हो, भावरहित हो और फल या द्रव्य हाथ में न लिये हो, तो असंयुक्त प्रश्न होता है। इस प्रश्न में बहुत दिनों के बाद लाभादि सुख होता है। कहीं-कहीं यह भी बताया गया है कि पृच्छक पश्चिम की दिशा की ओर मुँह कर प्रश्न करे तथा प्रश्न समय में आकर कुर्सी, टेबुल, बेंच या अन्य काष्ठ की चीजों को छूता हुआ या नोचता हुआ बातचीत आरम्भ करे और पृच्छक के मुख से निकला हुआ प्राथमिक वाक्य दीर्घाक्षरों से शुरू हुआ हो तो असंयुक्त प्रश्न होता है। इसका फल प्रारम्भ में

---

१. "समवर्णयोश्च तद्वन्नगवर्गाणामसंयुक्तः।"—के. प्र. र., पृ. २७।

२. द्वितीय-तृतीयौ—क. मू.।

३. के. प्र. सं. पृ. ४।

कार्यहानि और अन्त में कार्यसाफल्य समझना चाहिए। चन्द्रोन्मीलन एवं केरलसंग्रहादि कुछ प्रश्नग्रन्थों के अनुसार असंयुक्त प्रश्नों का फल अच्छा नहीं है अर्थात् धन-हानि, शोक, दुःख, चिन्ता, अपयश एवं कलह-वृद्धि इत्यादि अनिष्ट फल समझना चाहिए।

असंयुक्त एवं अभिहत प्रश्नाक्षर और उनका फल

असंयुक्तानि द्वितीयवर्गाक्षराण्यूर्ध्वं प्रथमवर्गाक्षराण्यधः परिवर्तनतः प्रथम-द्वितीयान्यसंयुक्तानि भवन्ति खक, छच इत्यादि; तृतीयवर्गाक्षराण्यूर्ध्वं द्वितीयवर्गाक्षराण्यधः पतितान्यभिहतानि[1] भवन्ति गख इत्यादि; एवं चतुर्थान्युपरि तृतीयान्यधः, घग इत्यादि। पञ्चमाक्षराण्यधः[2], उपरि चतुर्थाक्षराणि चेदप्यभिहतानि भवन्ति ङघ, ञझ इत्यादि; स्ववर्गे स्वकीयचिन्ता परवर्गे परकीयचिन्ता।

अर्थ—असंयुक्त प्रश्नाक्षरों को कहते हैं—द्वितीय वर्गाक्षर के वर्ण ऊपर और प्रथम वर्गाक्षर के वर्ण नीचे रहने पर उनके परिवर्तन से प्रथम-द्वितीय वर्गजन्य असंयुक्त होते हैं—जैसे द्वितीय वर्गाक्षर 'ख' को ऊपर रखा और प्रथम वर्गाक्षर 'क' को नीचे रखा और इन दोनों का परिवर्तन किया अर्थात् प्रथम के स्थान पर द्वितीय को और द्वितीय के स्थान पर प्रथम को रखा तो खक, छच इत्यादि विकल्प बने। तृतीय वर्ग के वर्ण ऊपर और द्वितीय वर्ग के वर्ण नीचे हों तो उनके परिवर्तन से द्वितीय तृतीय वर्गजन्य अभिहत होते हैं—जैसे तृतीय वर्ग के वर्ण ग को ऊपर रखा और द्वितीय वर्ग के वर्ण ख को नीचे अर्थात् ख ग इस प्रकार रखा, फिर इनका परिवर्तन किया तो तृतीय के स्थान पर द्वितीय वर्ण को रखा और द्वितीय वर्ग के वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ग के वर्ण को रखा तो गख, जछ, डठ इत्यादि विकल्प बने। इसी प्रकार चतुर्थ वर्ग के वर्ण ऊपर और तृतीय वर्ग के वर्ण नीचे हों, तो उनके परिवर्तन से तृतीय-चतुर्थ वर्गजन्य अभिहत होते हैं—जैसे चतुर्थ वर्ग का वर्ण 'घ' ऊपर और तृतीय वर्ग का 'ग' नीचे हो अर्थात् ग घ इस प्रकार की स्थिति हो तो इसके परस्पर परिवर्तन से अर्थात् चतुर्थ वर्गाक्षर के स्थान पर तृतीय वर्गाक्षर के पहुँचने से और तृतीय वर्गाक्षर के स्थान पर चतुर्थ वर्गाक्षर के पहुँचने से तृतीय-चतुर्थ वर्गजन्य अभिहत घग, झज, ढड इत्यादि विकल्प बनते हैं। पंचम वर्ग के अक्षर ऊपर और चतुर्थ वर्ग के अक्षर नीचे हों तो इनके परिवर्तन से चतुर्थ-पंचमवर्गजन्य अभिहत होते हैं; जैसे ङघ, ञझ इत्यादि। स्व वर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर स्वकीय चिन्ता और परवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर परकीय चिन्ता होती है। यहाँ स्ववर्ग के संयोग से तात्पर्य कवर्ग, चवर्ग आदि वर्गों के वर्णों के संयोग से है अर्थात् खक, छच, जछ, ङघ, घग, ञझ, झज इत्यादि संयोगी वर्ण स्ववर्ग संयोगी कहलाएँगे और भिन्न-भिन्न वर्गों के वर्णों के संयोगी विकल्प पर वर्ग कहलाते हैं अर्थात् खच, छक, जख, ञघ, झग,

---

१. "प्रश्नार्णौ चेत् क्रमगावभिहितसंज्ञम्"—के. प्र. र. पृ. २७। "यदि प्रष्टा प्रश्नसमये वामहस्तेन वामाङ्गं स्पृशति तदाऽभिहतः प्रश्नः, अलाभकरो भवति।"—के. प्र., स. ५

२. पञ्चमाक्षराण्युपरिचतुर्थाक्षराण्यधः—क. मू.।

ङझ, घञ, इत्यादि विकल्प परवर्ग माने जाएँगे।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों में—कख, खग, गघ, घङ, चछ, छज, जझ, झञ, टठ, ठड, डढ, ढण, तथ, थद, दध, धन, पफ, फब, बभ, भम, यर, रल, लव, शष, षस और सह इन वर्णों के क्रमशः विपर्यय होने पर परस्पर में पूर्व और उत्तरवर्ती हो जाने पर अर्थात् खक, गख, घग, ङघ, छच, जछ, झज, ञझ, ठट, डठ; ढड, णढ, थत, दथ, धद, नध, फप, बफ, भब, मभ, रय, लर, वल, षश, सष एवं हस होने पर अभिहत प्रश्न होता है। इस प्रकार के प्रश्न में प्रायः कार्यसिद्धि नहीं होती है। केवल अभिहित प्रश्न से ही फल नहीं बतलाना चाहिए, बल्कि पृच्छक की चर्या और चेष्टा पर ध्यान देते हुए लग्न बनाकर लग्न के स्वामियों के अनुसार फल बतलाना चाहिए। यदि लग्न का स्वामी बलवान् हो तथा शुभ एवं बली ग्रहों के साथ हो या शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो इस प्रकार की प्रश्नलग्न की स्थिति में कार्यसिद्धि कहनी चाहिए। लग्न के स्वामी[1] पापग्रह (क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि एवं इन ग्रहों से युक्त बुध) हों, कमजोर हों, शत्रु स्थान[2] में हों तथा अशुभ ग्रहों से (सूर्य, मंगल, शनि, राहु और केतु से) दृष्ट एवं युत हों तो प्रश्नलग्न निर्बल होता है, ऐसे लग्न में किया गया प्रश्न कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है। लग्न और लग्नेश के साथ कार्यस्थान और कार्येश का भी विचार करना आवश्यक होता है।

किसी-किसी का[3] मत है कि प्रश्नलग्नेश लग्न को और कार्येश कार्यस्थान को देखे तो कार्य सिद्ध होता है। यदि लग्नेश कार्यस्थान को और कार्येश लग्नस्थान को देखे तो भी कार्य सिद्ध होता है अथवा लग्नस्थान में रहनेवाला लग्नेश कार्यस्थान में रहनेवाले कार्येश को देखे तो भी कार्य सिद्ध होता है। यदि प्रश्नकुण्डली में ये तीनों बली योग हों और लग्न या कार्यस्थान के ऊपर पूर्णबली चन्द्रमा की दृष्टि हो तो अतिशीघ्र अल्प परिश्रम से ही कार्य सिद्ध होता है। कार्यसिद्धि का एक अन्य योग यह भी है कि यदि प्रश्नलग्न शुभ ग्रह के षड्वर्ग में हो या शुभग्रह से युत हो, अथवा मेषादि विषमराशि लग्न हो तो शीघ्र ही कार्य सिद्ध होता है।

मूर्ध्वोदय अर्थात् मिथुन[4], सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ प्रश्नलग्न हों और शुभग्रह—बुध, शुक्र, गुरु और चन्द्रमा लग्न में हों तो प्रश्न का फल शुभ और पृष्ठोदय अर्थात् मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर प्रश्नलग्न हों और लग्न में पापग्रह हों तो अशुभ फल कहना चाहिए। केन्द्र (१।४।७।१०) और नवम, पंचम स्थान में अशुभ ग्रह हों और केन्द्र तथा

---

१. "सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कटस्य निशाकरः। मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः ॥ धनुर्मीनयोर्मन्त्री तुलावृषभयोर्भृगुः। शनिर्मकरकुम्भयोश्च राशीनामधिपा इमे ॥" —ज्ञानप्रदीपिका, पृ. ३

२. शत्रुवर्ग—"बुधस्य वैरी दिनकृत् चन्द्रादित्यौ भृगोररी। बृहस्पते रिपुर्भौमः शुक्रसोमात्मजौ विना। शनेश्च रिपवः सर्वे तेषां तत्तद्ग्रहाणि च॥" मित्रवर्ग—"भौमस्य मित्रे शुक्रज्ञौ भृगोर्ज्ञारार्किमन्त्रिणः। अङ्गारकं विना सर्वे ग्रहमित्राणि मन्त्रिणः। आदित्यस्य गुरुर्मित्रं शनेर्विद्गुरुभार्गवाः। भास्करेण विना सर्वे बुधस्य सुहृदस्तथा॥ चन्द्रस्य मित्रं जीवज्ञौ मित्रवर्ग उदाहृतः॥" —ज्ञानप्रदीपिका, पृ. २-४।

३. प्र.मू., पृ. १४॥

४. दै.व., पृ. ११-१२

अष्टम स्थान को छोड़कर तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में अशुभ ग्रह हों, तो पूछनेवाले के मनोरथों की सिद्धि होती है। केन्द्र का स्वामी लग्न में अथवा उसका मित्र केन्द्र में हो और पाप ग्रह केन्द्र और बारहवें भाव के अतिरिक्त, अन्य स्थानों में हों तो कार्यसिद्धि होती है। पुरुष राशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला धनु और कुम्भ प्रश्नलग्न हों और लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी कार्य की सिद्धि होती है। कन्या, तुला, मिथुन, कुम्भ और नर संज्ञक राशियाँ प्रश्नलग्न हों और लग्न में शुभग्रह हों तथा पापग्रह ग्यारहवें और बारहवें स्थान में हों तो भी कार्य की सिद्धि समझनी चाहिए। चतुष्पद अथवा द्विपद राशियाँ लग्न में हों और पापग्रह से युक्त हों, उन पाप ग्रहों से दृष्ट शुभ ग्रहों की लग्न पर दृष्टि होने से नर राशिका लग्न हो तो शुभ फल होता है। लग्न और चन्द्रमा के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो शुभ और पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो अशुभ फल जानना चाहिए। यदि लग्न का स्वामी चतुर्थ को और कार्यभाव का स्वामी कार्यभाव को त्रिपाद दृष्टि से देखे अथवा दोनों की परस्पर दृष्टि हो एवं चन्द्रमा लग्नेश और कार्येश इन दोनों को देखता हो तो पूर्वरीति से कार्य की सिद्धि कहनी चाहिए।

अनभिहत प्रश्नाक्षर और उनका फल

इदानीमनभिहतानाह[1]—अकारास्वरसंयुक्तान[2]न्यस्वरसंयोगवर्जितान् अ क च ट त प य शादीन् ङ ञ ण न मांश्च प्रश्ने पतितानभिहतान् ब्रुवन्ति। व्याधिपीडां[3] परवर्गे शोकसन्तापदुःखभयपीडाञ्च निर्दिशेत्।

अर्थ—अब अनभिहत प्रश्नाक्षरों को कहते हैं—अकार स्वरसहित और अन्य स्वरों से रहित अ क च ट त प य श ङ ञ ण न म ये प्रश्नाक्षर हों तो अनभिहत प्रश्न होता है। यह अनभिहत प्रश्न स्ववर्गाक्षरों में हो तो व्याधि और पीड़ा एवं अन्य वर्गाक्षरों में हो तो शोक, सन्ताप, दुःख, भय और पीड़ा फल जानना चाहिए।

विवेचन—किसी-किसी के मत से प्रथम-पंचम, प्रथम-चतुर्थ, द्वितीय-पंचम और तृतीय-पंचम वर्ग से संयुक्त वर्णों की अनभिहत संज्ञा बतायी गयी है। चन्द्रोन्मीलनप्रश्न के अनुसार पूर्व और उत्तर वर्ग संयुक्त वर्णों की अनभिहत संज्ञा होती है और जब प्रश्नाक्षरों में केवल पंचमवर्ग के वर्ण हों तो उसे अघातन कहते हैं। अघातन प्रश्न का फल अत्यन्त अनिष्टकारक होता है। इस ग्रन्थ के अनुसार अनभिहत प्रश्न का फल रोग, शोक, दुःख, भय, धनहानि एवं सन्तानकष्ट होता है। जैसे—मोतीलाल प्रश्न पूछने आया। ज्योतिषी ने उनसे किसी फूल का नाम पूछा तो उसने चमेली का नाम लिया। चमेली प्रश्नवाक्य में अनभिहत प्रश्नाक्षर है या नहीं? यह जानने के लिए उपर्युक्त वाक्य का विश्लेषण किया तो

---

१. तुलना—के. प्र. र., पृ. २८। के. प्र. सं. प. ५। चं. प्र. श्लो. ३५। केरल सं., प. ५। ज्योतिष सं., प. ४।

२. युक्तानि क. मू.।

३. स्ववर्गे परवर्गे व्याधिपीडितानां शोकसन्तापदुःखभयपीडां निर्दिशेत् क. मू.।

प्रश्नवाक्य का प्रारम्भिक अक्षर 'च' है, इसमें अ स्वर और च् व्यंजन का संयोग है। द्वितीय अक्षर 'मे' में ए स्वर और म् व्यंजन का संयोग है तथा तृतीयाक्षर 'ली' में ई स्वर और ल् व्यंजन का संयोग है। इस विश्लेषण में अ + च + म् ये तीन वर्ण अनभिहत, ई अभिधूमित, ए आलिंगित और ल् अभिहतसंज्ञक हैं। "परस्परम् अक्षराणि शोधयित्वा योऽधिकः स एव प्रश्नः" इस नियम के अनुसार यह प्रश्न अनभिहत हुआ, क्योंकि सबसे अधिक वर्ण अनभिहत वर्ग के हैं। किसी-किसी के मत से प्रथम वर्ण जिस प्रश्न का हो, वही प्रधान रूप से ले लिया जाता है। जैसे उपर्युक्त प्रश्न वाक्य में 'च' अक्षर में स्वर और व्यंजन दोनों ही अनभिहत प्रश्न के हैं। अतः आगेवाले विश्लेषण पर विचार न कर उसे अनभिहत ही मान लिया जाएगा।

अभिघातित प्रश्नाक्षर और उनका फल

[1]अथाभिघातितानि[2]—चतुर्थवर्गाक्षराण्युपरि प्रथमवर्गाक्षराण्यधः[3] पातितान्यभिघातितानि भवन्ति घक, झच इत्यादि। पञ्चमवर्गाक्षराण्युपरि द्वितीयवर्गाक्षराण्यधः[4] पातितान्यभिघातितानि भवन्ति ङख ञछ इत्यादि। अनेन[5] पितृचिन्ता मृत्युं च निर्दिशेत्।

अर्थ—अभिघातित प्रश्नाक्षर कहते हैं। चतुर्थ वर्गाक्षर के ऊपर और प्रथम वर्गाक्षर के नीचे रहने पर परस्पर में परावर्तन हो जाने से अर्थात् चतुर्थ वर्गाक्षर के पूर्ववर्ती और प्रथम वर्गाक्षर के परवर्ती होने से अभिघातित प्रश्न होते हैं। जैसे घक, झच, ढट, भप, धत, वय इत्यादि। पंचम वर्गाक्षर के ऊपर और द्वितीय वर्गाक्षर के नीचे रहने पर परस्पर में परावर्तन हो जाने से अर्थात् पंचम वर्गाक्षर के पूर्ववर्ती और द्वितीय वर्गाक्षर के उत्तरवर्ती होने से अभिघातित प्रश्न होते हैं। जैसे ङख, ञच, णठ, इत्यादि। इन अभिघातित प्रश्नों का फल पिता सम्बन्धी चिन्ता और मृत्यु कहना चाहिए।

विवेचन—अभिघातित प्रश्न अत्यन्त अनिष्टकर होता है। इसका लक्षण भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार का बताया है। कोई चतुर्थ-प्रथम, तृतीय-द्वितीय और चतुर्थ-तृतीय वर्ग के वर्णों के प्रश्न श्रेणी में रहने पर अभिघातित प्रश्न कहते हैं, तथा अन्य किसी के मत से प्रश्नकर्ता कमर, हृदय, हाथ, पैर को मलता हुआ प्रश्न करे, तो भी अभिघातित प्रश्न होता है। इस ग्रन्थानुसार यदि प्रश्नश्रेणी के सभी वर्ग चतुर्थ वर्गाक्षर और प्रथम वर्गाक्षर के हों अथवा पंचम वर्गाक्षर और द्वितीय वर्गाक्षर के हों तो अभिघातित प्रश्न समझना चाहिए। जैसे मोहन प्रश्न पूछने आया, ज्योतिषी ने उससे किसी कपड़े का नाम पूछा, तो उसने धोती का नाम बताया। मोहन के इस प्रश्न वाक्य में 'धो' वर्ण चतुर्थ वर्ग

१. तुलना—के. प्र. सं., प. ५।
२. अभिघातित क. मू.।
३. वर्गाणि क. मू.।
४. पतितानीति पाठो नास्ति क.मू.।
५. अनेनेति पाठो नास्ति क. मू.।

का और 'त' प्रथम वर्ग का है। अतः यह अभिघातित प्रश्न हुआ, इसका फल पिता की मृत्यु या पृच्छक की मृत्यु समझना चाहिए।

प्रश्नलग्नानुसार मृत्यु ज्ञात करने की विधि यह है—प्रश्नलग्न[1] मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर इन राशियों में-से कोई हो और पाप ग्रह—क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि चौथे सातवें और बारहवें भाव में हों अथवा मंगल दूसरे और नौवें भाव में हो एवं चन्द्रमा अष्टम भाव में हो तो पृच्छक की मृत्यु होती है। ज्योतिषी को प्रश्न का फल बतलाते समय केवल एक ही योग से मृत्यु का निर्णय नहीं करना चाहिए, बल्कि दो-चार योगों का विचार कर ही फल बतलाना चाहिए। यहाँ विशेष जानकारी के लिए दो-चार योगों के लक्षण दिये जाते हैं। प्रश्नलग्न में पापग्रहों का दुरुधरा योग हो, चन्द्रमा सातवें और चौथे भाव में स्थित हो, सूर्य प्रश्नलग्न में स्थित हो और प्रश्न समय में राहुकाल समायोग[2] हो तो पृच्छक जिसके सम्बन्ध में प्रश्न पूछता है, उसकी मृत्यु होती है। यदि प्रश्नकाल में वैधृति, व्यतिपात, आश्लेषा, रेवती, कर्काश, विषघटी, दिन—मंगल बुध, गुरु, शुक्र और शनि, पापग्रह युक्त नक्षत्र, सायंकाल, प्रातःकाल और मध्याह्नकाल की सन्ध्या का समय, मासशून्य, तिथिशून्य, नक्षत्रशून्य हों तथा प्रश्नलग्न से क्षीणचन्द्रमा बारहवें और आठवें भाव में हो अथवा बारहवें और आठवें भाव पर शत्रुग्रह की दृष्टि हो एवं राहु आठवीं राशि को स्पर्श करे तो पृच्छक जिसके सम्बन्ध में पूछता है उसकी मृत्यु होती है। लग्नेश[3] और अष्टमेश का इत्थशाल योग हो, पापग्रह लग्नेश और अष्टमेश को देखते हों, अष्टम स्थान का स्वामी केन्द्र में हो, लग्नेश अष्टम स्थान में हो, चन्द्रमा छठे स्थान में हों, और सप्तमेश के साथ चन्द्रमा का इत्थशाल हो अथवा सप्तमेश छठे स्थान में हो तो रोगी पुरुष के विषय में पूछे जाने पर उसकी मृत्यु होती है। यदि लग्नेश और चन्द्रमा का अशुभ ग्रहों के साथ इत्थशाल योग हो अथवा चन्द्रमा और लग्नेश केन्द्र में और अष्टम स्थान में स्थित हों और चन्द्रमा शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तथा चन्द्रमा के साथ कोई शुभग्रह भी नहीं हो और लग्नेश अस्त हो अथवा लग्न का स्वामी सातवें भाव में स्थित हो तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिए। यदि लग्न में चन्द्रमा हो, बारहवें भाव में शनि हो, सूर्य आठवें भाव में और मंगल दसवें भाव में स्थित हों और बलवान् बृहस्पति लग्न में नहीं हों, तो पृच्छक जिस रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न करता है उसकी मृत्यु होती है। लग्न, चतुर्थ, पंचम और द्वादश इन स्थानों में पापग्रह हों तो रोग के नाश करनेवाले होते हैं। पर छठे, लग्न, चौथे, सातवें और दशवें भाव में पापग्रहों के रहने से रोगी की मृत्यु होती है।

आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध प्रश्नाक्षर

अथालिङ्गितादीनि—अ इ ए ओ एते स्वरा उपरितः संयुक्ताक्षराण्यधः[4] क कि के

---

१. बृ पा. हो., पृ. ७४०।
२. बृ. पा. हो., पृ. ७४३-७४४।
३. प्र. वै. शा. पृ. ७।
४. अधः पाठो नास्ति-ता. मू.।

को इत्याद्यालिङ्गितानि[1] भवन्ति। आ ई ऐ औ[2] एते चत्वार[3] एतद्युक्तव्यञ्जनाक्षराण्य-भिधूमितानि[4] भवन्ति। उ ऊ अं अः एतद्युक्तव्यञ्जनाक्षराणि[5] दग्धानि[6]।

अर्थ—अ इ ए ओ ये चार स्वर पूर्ववर्त्ती हों और संयुक्ताक्षर—व्यंजन परवर्ती हों तो आलिंगित प्रश्न होता है; जैसे क कि के को इत्यादि। आ ई ऐ औ ये चार स्वर व्यंजनों में संयुक्त हों तो अभिधूमित प्रश्न होता है और उ उ अं अः इन चार स्वरों से संयुक्त व्यंजन दग्धाक्षर कहलाते हैं।

विवेचन—प्रश्नाक्षर सिद्धान्त के अनुसार आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध प्रश्नों का ज्ञान तीन प्रकार से किया जाता है—प्रश्नवाक्य के स्वरों से, चर्या-चेष्टा से और प्रारम्भ के उच्चरित वाक्य से। यदि प्रश्नवाक्य के प्रारम्भ में या समस्त प्रश्नवाक्य में अधिकांश अ इ ए औ ये चार स्वर हों तो आलिंगित प्रश्न, आ ई ऐ औ ये चार स्वर हों तो अभिधूमित प्रश्न और उ ऊ अं अः ये चार स्वर हों तो दग्ध प्रश्न होता है। आलिंगित प्रश्न होने पर कार्यसिद्धि, अभिधूमित होने पर धनलाभ, कार्यसिद्धि, मित्रागमन एवं यशलाभ और दग्ध प्रश्न होने पर दुःख, शोक, चिन्ता, पीड़ा एवं हानि होती है। जब पूछने वाला दाहिने हाथ से दाहिने अंग को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो आलिंगित प्रश्न दाहिने अथवा बायें हाथ से समस्त शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो अभिधूमित प्रश्न और रोते हुए नीचे की ओर दृष्टि किये हुए प्रश्न करे तो दग्ध प्रश्न होता है। चर्याचेष्टा का अन्तर्भाव प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्त में होता है। अतः प्रश्नवाक्य या प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य से विचार करते समय चर्या-चेष्टा का विचार करना भी नितान्त आवश्यक है। इन आलिंगित, अभिधूमित इत्यादि प्रश्नों का सम्बन्ध प्रश्नशास्त्र से अत्यधिक है। आगे वाला समस्त विचार इन प्रश्नों से सम्बन्ध रखता है। गर्ग-मनोरमादि कतिपय प्रश्नग्रन्थों में आलिंगित काल, अभिधूमित काल और दग्ध काल इन तीन प्रकार के समयों पर से ही पिण्ड बनाकर प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। यदि पूर्वाह्न[7] काल में प्रश्न किया जाए तो आलिंगित, मध्याह्न काल में किया जाए तो अभिधूमित और अपराह्न काल में किया जाए तो दग्ध प्रश्न कहलाता है। समय की यह संज्ञा भी प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्त से सम्बद्ध है। अतः विचारक को आलिंगितादि प्रश्नों के ऊपर विचार करते हुए पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिए। प्रधानरूप से फल बतलाने के लिए प्रश्नवाक्य के सिद्धान्त का ही अनुसरण करना चाहिए। उदाहरण—जैसे मोहन ने आकर पूछा कि 'मेरा कार्य सिद्ध होगा या नहीं?' इस प्रारम्भिक उच्चरित वाक्य

---

१. चं. प्र., श्लो, ३६। के. प्र. र., पृ. २८। के. प्र. सं., पृ.५।
२. आ इ ए ऐ—ता मू.।
३. एत...अक्षराणि—क. मू.।
४. के. प्र. र. पृ. २८। के. प्र. सं., पृ. ६। ग. म., पृ. १।
५. व्यंजनानि—क. मू.।
६. के. प्र. र., पृ. २८। चं. प्र., श्लो. ३७-३८। के. प्र. सं., पृ.
७. ग. म., पृ. १।

को प्रश्न वाक्य मानकर इसका विश्लेषण किया तो—म् + ए + र् + आ + क् + आ + र् + य् + अ + स् + इ + द् + ध् + ह् + ओ + ग् + आ यह स्वरूप हुआ। इसमें ए अ ह अ और ओ ये पाँच मात्राएँ आलिंगित और आ आ एवं आ ये तीन मात्राएँ अभिधूमित प्रश्न की हुईं। पूर्वोक्त नियमानुसार परस्पर मात्राओं का संशोधन करने पर आलिंगित प्रश्न की मात्राएँ अधिक हैं, अतः इसे आलिंगित प्रश्न समझना चाहिए। इस प्रश्न का धनलाभ एवं कार्यसिद्धि आदि फल बतलाना चाहिए।

प्रश्नलग्नानुसार लग्नेश और एकादशेश के सम्बन्ध का नाम ही आलिंगित प्रश्न है, क्योंकि लग्न[1] का स्वामी लेने वाला होता है और ग्यारहवें भाव का स्वामी देने वाला होता है, अतः जब दोनों ग्रह एक स्थान में हो जाएँ तो लाभ और कार्यसिद्धि होती है। परन्तु इतना स्मरण रखना चाहिए कि पूर्वोक्त योग तभी सफल होगा जब ग्यारहवें भाव को चन्द्रमा देखता हो; क्योंकि सभी राजयोगादि उत्कृष्ट योग चन्द्रमा की दृष्टि के बिना सफल नहीं हो सकते हैं। ग्यारहवें भाव[2] का स्वामी, दसवें भाव का स्वामी, सातवें भाव का स्वामी और आठवें भाव का स्वामी, इन ग्रहों के एवं लग्न भाव के स्वामी के सम्बन्ध का नाम अभिधूमित प्रश्न है। उपर्युक्त ग्रहों के बलाबल से उक्त स्थानों का वृद्धि-ह्रास अवगत करना चाहिए।

यदि लग्न का स्वामी छठे भाव में अवस्थित हो और छठे भाव का स्वामी आठवें भाव में स्थित हो तो दग्ध प्रश्न होता है। इसका फल अत्यन्त अनिष्टकर होता है।

उत्तर और अधर प्रश्नाक्षरों का फल

गाथा—**जेअक्खराणि भिहिया[3] पण्हादि सत्ति उत्तरा चाहु।**
याता जाण सयललाहो अहरो हंसज्जुए विद्धि[4] ॥

अर्थ—पहले उत्तरोत्तरोत्तरोत्तर, उत्तरोत्तरोत्तर, उत्तरोत्तर, उत्तरोत्तराधर आदि जो दस भेद प्रश्नों के कहे गये हैं, उनमें उत्तर प्रश्नाक्षर वाले प्रश्न में सब प्रकार से लाभ होता है और अधर प्रश्नाक्षर वाले प्रश्न में हानि, अशुभ होता है।

विवेचन—पृच्छक के प्रश्नाक्षरों के आदि में उत्तर स्वरवर्ण हो तो वर्तमान में शुभ; अधर हो तो अशुभ; उत्तरोत्तर स्वर वर्ण हो तो राजसम्मानप्राप्ति, अधराधर स्वर वर्ण हो तो रोगप्राप्ति; उत्तराधर स्वर वर्ण हो तो सामान्यतः सुखप्राप्ति; उत्तराधिक स्वर वर्ण हो तो धन-धान्य की प्राप्ति; अधराधिक स्वरवर्ण हो तो धन-हानि एवं अधराधराधर स्वर वर्ण हो तो महाकष्ट कहना चाहिए। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में 'उत्तरा' शब्द के द्वारा पाँचों प्रकार के उत्तर प्रश्नों का ग्रहण कर शुभ फल बताया है और 'अहरो' शब्द के द्वारा पाँचों प्रकार

---

१. भु. दी., पृ. ५६।
२. भु. दी. पृ. ५६।
३. भणिदा—ता. मू.।
४. णिद्धि—क. मू.।

के अधरप्रश्नों का ग्रहण कर निकृष्ट फल कहा है। तात्पर्य यह है कि यहाँ सामान्यतः एक ही उत्तर से उत्तर शब्द संयुक्त सभी उत्तरों का ग्रहण किया है। इसी प्रकार अधर प्रश्नों को भी समझना चाहिए।

प्रश्नशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में उत्तर और अधर प्रश्नों के भेद-प्रभेद कर विभिन्न प्रकार से फलों का निरूपण किया गया है। तथा गमनागमन, हानि-लाभ, जय-पराजय, सफलता-असफलता आदि प्रश्नों के उत्तरों में उत्तर स्वर संयुक्त प्रश्नों को श्रेष्ठ और अधर स्वर संयुक्त प्रश्नों को निकृष्ट कहा है।

उपसंहार

एभिरष्टभिः प्रकारैः प्रश्नाक्षराणि शोधयित्वा पुनरुत्तराधरविभागं कुर्यात्।

अर्थ—इन संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत आदि आठ प्रकार के प्रश्नों को शोधकर उत्तर, अधर और अधरोत्तरादि का विभाग कर प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए।

गाथा—

अहरोत्तर[1]-वग्गोत्तर वग्गेण य संयुतं अहरं।
जाणइ पण्णायंसो जाणइ ते हावणं सयलं।।

अर्थ—अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्ग संयुक्त अधर इन भंगों के द्वारा जो प्रश्न को जानता है, वह सभी पदार्थों को जानता है अर्थात् उपर्युक्त तीनों भंगों द्वारा संसार के सभी प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

उत्तर के नौ भेद और उनके लक्षण

उत्तरा नवविधाः[2]—उत्तरोत्तरः, उत्तराधरः, अधरोत्तरः, अधराधरः, वर्गोत्तरः, अक्षरोत्तरः, स्वरोत्तरः, गुणोत्तरः, आदेशोत्तरश्चेति। अकवर्गावुत्तरोत्तरौ। चटवर्गावुत्तराधरौ। तपवर्गावधरोत्तरौ। यशवर्गावधराधरौ। अथ वर्गोत्तरौ प्रथमतृतीयवर्गौ। द्वितीयचतुर्थ[3] वर्गावक्षरोत्तरौ। पंचमवर्गोऽप्युभयपक्षाभ्यामेरितभेदेन वर्गोत्तरौ वर्गाधरौ च ज्ञातव्यौ। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श सा एतान्येकोनविंशत्यक्षराण्युत्तराणि भवन्ति।

शेषाः ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष हाश्चतुर्दशाक्षराण्यधराणि भवन्ति। अ[4] इ उ ए ओ अं एतानि षडक्षराणि स्वरोत्तराणि भवन्ति। आ ई ऊ[5] ऐ औ

---

१. "उत्तरा विषमा वर्गाः समा वर्गाष्टकेऽधराः । स्वेषूत्तरोत्तरौ ज्ञेयौ पूर्ववच्चाधराधरौ।।"—के. प्र. र., पृ. ४।
२. के. प्र. र., पृ. ५-६। चं. प्र. श्लो. १८,२७-३०।
३. वर्गावधरोत्तरौ—क. मू.।
४. इदानीं स्वरोत्तरं वक्ष्यामः—अ इ उ ए ओ अं ६ उत्तराः।—ता. मू.।
५. आ ई उ ऐ औ अः अधराः—ता. मू.।।

अः, एतानि षडक्षराणि स्वराधराणि भवन्ति। अ च त याः[1] गुणोत्तराः। क ट प य शाः गुणाधराः[2]। ड ज द लाः गुणोत्तराः।[3] ग ड ब हाः गुणाधराः[4] भवन्तीति गुणोत्तराः।

अर्थ—उत्तर के नौ भेद हैं—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तर। अ और चवर्ग उत्तरोत्तर; चवर्ग और टवर्ग उत्तराधर; तवर्ग और पवर्ग अधरोत्तर और यवर्ग और शवर्ग अधराधर होते हैं। प्रथम और तृतीय वर्गवाले अक्षर वर्गोत्तर, द्वितीय और चतुर्थ वर्गवाले अक्षर अधरोत्तर एवं पंचम वर्गवाले अक्षर दोनों—प्रथम और तृतीय के साथ मिला देने से क्रमशः वर्गोत्तर और वर्गाधर होते हैं। क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स ये १६ वर्ण उत्तरसंज्ञक; शेष ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह ये १४ वर्ण अधर संज्ञक; अ इ उ ए ओ अं ये ६ वर्ण स्वरोत्तरसंज्ञक; अ च त य उ ज द ल ये ७ वर्ण गुणोत्तर संज्ञक और क ट प श ग ड ब ह ये ८ वर्ण गुणाधरसंज्ञक होते हैं।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों का पहले कहे गये संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन आठ प्रकारों से विचार करना चाहिए। किन्तु इनमें भी सूक्ष्म रीति से प्रश्न का विचार करने के लिए उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर आदि उपर्युक्त नौ भेदों के अनुसार प्रश्नाक्षरों का विचार करना आवश्यक है। प्रश्न का वास्तविक उत्तर निकालने के लिए आलिंगित (पूर्वाह्नकाल), अभिधूमित (मध्याह्न) और दग्ध (अपराह्न) इन तीनों में गणित क्रिया द्वारा निम्न प्रकार से पिण्ड बनाकर उत्तर देना चाहिए।

आलिंगित (पूर्वाह्न) काल में पिण्ड बनाने की विधि—यदि आलिंगित काल का प्रश्न हो तो वर्गसंख्या सहित वर्ण की संख्या को वर्ग संख्या सहित स्वर की संख्या से गुणा करने पर जो गुणनफल आए, वही पिण्ड होता है।

(१) स्वरसंख्याचक्र

अ = १	ई = ४	ऋ = ७	ऌ = १०	ओ = १३
आ = २	उ = ५	ॠ = ८	ए = ११	औ = १४
इ = ३	ऊ = ६	ऌ = ९	ऐ = १२	अं = ५
				अः = १६

१. अथ गुणोत्तराः—अ च त याः—ता. मू.।
२. अधराः—ता. मू.।
३. उत्तराः—ता. मू.।
४. अधराः—ता. मू.।

(२) वर्गसंख्याचक्र

अवर्ग	= १
कवर्ग	= २
चवर्ग	= ३
टवर्ग	= ४
तवर्ग	= ५
पवर्ग	= ६
यवर्ग	= ७
शवर्ग	= ८

(३) केवलवर्णसंख्याबोधकचक्र

क = १,	ख = २,	ग = ३,	घ = ४,	ङ = ५
च = १,	छ = २,	ज = ३,	झ = ४,	ञ = ५
ट = १,	ठ = २,	ड = ३,	ढ = ४,	ण = ५
त = १,	थ = २,	द = ३,	ध = ४,	न = ५
प = १,	फ = २,	ब = ३,	भ = ४,	म = ५
य = १,	र = २,	ल = ३,	व = ४	
श = १,	ष = २,	स = ३,	ह = ४	

(४) वर्गसंख्यासहित स्वरों और वर्णों के ध्रुवांक

अवर्ग १	अ २, आ ३, इ ४, ई ५, उ ६, ऊ ७, ऋ ८, ॠ ९, ऌ १० ॡ ११, ए १२, ऐ १३, ओ १४, औ १५, अं १६, अः १७
कवर्ग २	क् ३, ख् ४, ग् ५, घ् ६, ङ् ७
चवर्ग ३	च् ४, छ् ५, ज् ६, झ् ७, ञ् ८
टवर्ग ४	ट् ५, ठ् ६, ड् ७, ढ् ८, ण् ९
तवर्ग ५	त् ६, थ् ७, द् ८, ध् ९, न् १०
पवर्ग ६	प् ७, फ् ८, ब् ९, भ् १०, म् ११
यवर्ग ७	य् ८, र् ९, ल् १०, व् ११
शवर्ग ८	श् ९, ष् १०, स् ११, ह् १२, त्र् १३, क्ष् १४, ज्ञ् १५

उदाहरण—जैसे मोतीलाल ने प्रातःकाल ७.३० बजे प्रश्न किया कि हमारे घर में पुत्र होगा या कन्या? यह प्रश्न पूर्वाह्न में होने के कारण आलिंगित काल का है। इसलिए पृच्छक से फल का नाम पूछा तो उसने अनार का नाम लिया। पृच्छक के इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण—(अ + न् + आ + र् + अ) हुआ; यहाँ दो व्यंजन (जिन्हें वर्ण कहा गया है) और तीन स्वर हैं, इसलिए चौथे चक्र की वर्गसंख्या सहित वर्णसंख्या (१० + ९) = १९ को वर्गसंख्या सहित स्वरसंख्या (२ + ३ + २) = ७ से गुणा किया तो १९ × ७ = १३३ पिण्डसंख्या हुई। इसमें निम्नप्रकार अपने-अपने विकल्पानुसार भाग देने पर फलाफल होता

है = सिद्धि-असिद्धिविषयक प्रश्न के पिण्ड में २ का भाग देने से १ शेष बचे तो कार्यसिद्धि; और शून्य बचे तो असिद्धि; लाभालाभविषयक प्रश्न के पिण्ड में २ का भाग देने से १ शेष में लाभ और शून्य शेष में हानि, दिशा-विषयक प्रश्न के पिण्ड में ८ का भाग देने से एकादि शेष में क्रमशः पूर्वादि दिशा; सन्तानविषयक प्रश्न के पिण्ड में ३ का भाग देने से १ शेष में पुत्र, २ शेष में कन्या और शून्य शेष में नपुंसक एवं कालविषयक प्रश्न के पिण्ड में ३ का भाग देने से १ शेष में भूत, २ शेष में वर्तमान और शून्य शेष में भविष्यत्काल समझना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में सन्तानविषयक प्रश्न होने के कारण पिण्ड में ३ का भाग दिया—१३३ ÷ ३ = ४ भागफल और शेष १ रहा; अतः इसका फल पुत्रप्राप्ति समझना चाहिए।

अभिधूमित काल में पिण्ड बनाने की विधि—अभिधूमित काल का प्रश्न हो तो केवल स्वर संख्या को केवल वर्ण संख्या से गुणा करने पर पिण्ड होता है।

उदाहरण—मोतीलाल ने अभिधूमित (मध्याह्न) समय में पूछा कि मुझे व्यापार में लाभ होगा या नहीं? मध्याह्न का प्रश्न होने से उससे फल का नाम पूछा तो उसने सेब का नाम बताया। पृच्छक मोतीलाल के प्रश्नावाक्य का विश्लेषण (स् + ए + ब् + अ) यह हुआ। इसमें स् + ब् ये दो वर्ण (व्यंजन) और ए + अ ये दो स्वर हैं। प्रथम और तृतीय चक्र के अनुसार क्रमशः वर्ण और स्वर संख्या (३ + ४) = ७ व्यंजन संख्या और (११ + १ = १२) स्वर संख्या हुई। इनका परस्पर गुणा करने से १२ × ७ = ८४ पिण्ड हुआ; लाभालाभ विषयक प्रश्न होने के कारण पिण्ड में २ का भाग दिया तो—८४ ÷ २ = ४२ लब्ध, शेष शून्य रहा, अतः इस प्रश्न का फल हानि समझना चाहिए।

दग्ध काल में पिण्ड बनाने की विधि—यदि दग्ध (अपराह्न) काल का प्रश्न हो तो केवल वर्ग की संख्या को वर्ण (व्यंजन) की संख्या से गुणा कर गुणनफल में स्वरों और वर्णों की संख्या मिलाने पर पिण्ड होता है।

उदाहरण—मोतीलाल ने दग्ध काल में आकर पूछा कि मैं उत्तीर्ण होऊँगा या नहीं? इस प्रश्न में भी उससे फल का नाम पूछा तो उसने दाड़िम कहा। इस प्रश्न वाक्य का (द् + आ + ड् + इ + म् + अ) यह विश्लेषण हुआ; द्वितीय चक्रानुसार वर्ग संख्या (त ५ + ट ४ + प ६) = १५ हुई तथा तृतीय चक्रानुसार वर्ण संख्या (द् ३ + ड् ३ + म् ५) = ११ हुई। इन दोनों का परस्पर गुणा किया तो ११ × १५ = १६५ हुआ। इसमें प्रथम चक्रानुसार स्वरसंख्या (आ २ + इ ३ + अ १) = ६ जोड़ दी तो १६५ + ६ = १७१ हुआ। इस योगफल में वर्ण संख्या (द् ३ + ड् ३ + म् ५) = ११ मिलाया तो १७१ + ११ = १८२ पिण्ड हुआ। कार्यसिद्धि विषयक प्रश्न होने के कारण २ से भाग दिया तो १८२ ÷ २ = ९१ लब्ध और शेष शून्य रहा। अतएव इस प्रश्न का फल परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना हुआ।

आदेशोत्तर और उनका फल

अथादेशोत्तराः—पृच्छकस्य वाक्याक्षराणि प्रथमतृतीपञ्चमस्थाने उत्तराः, द्वितीयचतुर्थेऽधराः। यदि दीर्घमक्षरं प्रश्ने प्रथमतृतीयपञ्चमस्थाने दृष्टं तदेव लाभकरं स्यात्, शेषा अलाभकराः स्युः।

[1]जीवितमरणं लाभालाभं साधयन्तीति साधकाः। अ इ ए ओ एते तिर्यङ्मात्रमूलस्वराः[2]। तिर्यङ्मात्राः तिर्यग्द्रव्यमधोमात्राः अधोद्रव्यमूर्ध्वमात्राः, ऊर्ध्वद्रव्यं तिष्ठन्तीति कथयन्तीत्यादेशोत्तराः।

अर्थ—आदेशोत्तर कहते हैं कि प्रश्नकर्ता के प्रथम, तृतीय और पंचमस्थान के वाक्याक्षर उत्तर एवं द्वितीय और चतुर्थ स्थान के वाक्याक्षर अधर कहलाते हैं। यदि प्रश्न में दीर्घाक्षर प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान में हों तो लाभ करानेवाले होते हैं, शेष स्थानों में रहनेवाले दीर्घाक्षर अथवा उपर्युक्त स्थानों में रहनेवाले ह्रस्व और प्लुताक्षर अलाभ (हानि) करानेवाले होते हैं। साधक इन प्रश्नाक्षरों पर से जीवन, मरण, लाभ और अलाभ आदि को अवगत कर सकते हैं। अ इ ए ओ ये चार तिर्यङ्मात्रिक मूल स्वर हैं। तिर्यङ्मात्रिक प्रश्न में तिर्यङ्-तिरछे स्थान में द्रव्य; अधोमात्रिक प्रश्न में अधः स्थान में द्रव्य और ऊर्ध्वमात्रिक प्रश्न में ऊर्ध्वस्थान में द्रव्य है, इस प्रकार का प्रश्नफल जानना चाहिए।

विवेचन—प्रश्नाक्षरों के नाना विकल्प करके फल का विचार करना चाहिए। पूर्वोक्त उत्तर, अधर, उत्तराधर आदि नौ भेदों का विचार कर सूक्ष्म फल निकालने के लिए आदेशोत्तर का भी विचार करना आवश्यक है। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान की उत्तर, द्वितीय और चतुर्थ की अधर एवं अ इ ए ओ इन चार ह्रस्व मात्राओं की तिर्यङ् संज्ञा बतायी है। ग्रन्थान्तरों के अनुसार आ ई ऐ औ की अधो संज्ञा तथा इन्हीं प्लुत स्वरों की ऊर्ध्व संज्ञा है। यदि प्रश्नाक्षरों में प्रथम, तृतीय और पंचम स्थान में दीर्घ अक्षर हों तो लाभकारक तथा शेष स्थानों में हों तो हानिकारक होते हैं। ऊर्ध्व, अधः और तिर्यङ् आदि के विचार के साथ पहले बताये गये संयुक्त, असंयुक्त आदि का भी विचार करना चाहिए। प्रश्न का साधरणतया फल बतलाने के लिए नीचे एक सरल विधि दी जा रही है।

निम्न प्रथम चक्र के अंकों पर अंगुली रखवाना चाहिए। यदि पृच्छक आठ या दो के अंक पर अँगुली रखे तो कार्याभाव; छः या चार के अंक पर अँगुली रखे तो कार्यसिद्धि; सात या तीन के अंक पर अँगुली रखे तो विलम्ब से कार्य-सिद्धि एवं नौ, एक या पाँच के अंक पर अँगुली रखे तो शीघ्र ही कार्यसिद्धि फल कहना चाहिए।

---

१. "अथाशकविकटौ वक्ष्यामः। लाभालाभं ज्ञानं साधयन्तीति साधकाः"—क. मू.।

२. तिर्यङ्मात्राः मूलस्वराः—ता. मू.।

चक्र (१)

१	२	३
६	५	४
७	८	९

स्वर और व्यंजनों का
ध्रुवांक बोधक चक्र (२)

अ	१२	क	१३	ठ	१३	ब	२६
आ	२१	ख	१२	ड	२२	भ	२७
इ	११	ग	२१	ढ	३५	म	८६
ई	१८	घ	३०	ण	४५	य	१६
उ	१५	ङ	१०	त	१४	र	१३
ऊ	२२	च	१५	थ	१८	ल	१३
ए	१८	छ	२१	द	१७	व	३५
ऐ	३२	ज	२३	ध	१३	श	२६
ओ	२५	झ	२६	न	३५	ष	३५
औ	१९	ञ	२६	प	२८	स	३५
अं	२५	ट	१७	फ	१८	ह	१२

क्षेपक और भाजक बोधक चक्र (३)१

प्रश्न	क्षेपक	भाजक
लाभालाभसम्बन्धी	४२	३
जयपराजयसम्बन्धी प्रश्न	३४	३
सुख-दुःख सम्बन्धी प्रश्न	३८	२
यात्रासम्बन्धी प्रश्न	३३	३
जीवनमरणसम्बन्धी प्रश्न	४०	३
तीर्थयात्रासम्बन्धी प्रश्न	३९	३
वर्षासम्बन्धी प्रश्न	३२	३
गर्भसम्बन्धी प्रश्न	२६	३

प्रश्न निकालने का अनुभूत नियम—प्रश्नकर्ता से प्रातः काल में पुष्प का नाम, मध्याह्न में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायंकाल में तालाब या नदी का नाम पूछना चाहिए। इन उच्चरित प्रश्नाक्षरों पर से पिण्ड बनाकर अपने-अपने ध्रुवांक के अनुसार प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

पिण्ड बनाने की विधि—पहले प्रश्न वाक्य के स्वर और व्यंजनों का विश्लेषणकरना चाहिए। फिर स्वर और व्यंजनों के अधरांकों के योग में भिन्न-भिन्न प्रश्नों के अनुसार भिन्न-भिन्न क्षेपक जोड़ देने पर पिण्ड होता है।

प्रश्नों का फलावबोधक चक्र(४)

प्रश्न	शेष	फल	शेष	फल	शेष	फल
लाभालाभसम्बन्धी प्रश्न	१	पूर्ण लाभ	२	अल्पलाभ	शून्य	हानि
जयपराजयसम्बन्धी प्रश्न	१	सुख	शून्य	दुःख	शून्य	पराजय
सुख-दुःखसम्बन्धी प्रश्न	१	सुख	शून्य	दुःख	×	×

यात्रासम्बन्धी प्रश्न	१	यात्रा	२	विलम्ब से	शून्य	यात्राहानि
जीवनमरणसम्बन्धी प्रश्न	१	जीवित	२	कष्ट में	शून्य	मरण
तीर्थयात्रासम्बन्धी प्रश्न	१	यात्रा	२	मध्यम	शून्य	अभाव
वर्षासम्बन्धी प्रश्न	१	वर्षा	२	मध्यम	शून्य	अनावृष्टि
गर्भसम्बन्धी प्रश्न	१	गर्भ है	२	संशय	शून्य	नहीं है

उदाहरण—जैसे मोतीलाल ने प्रश्न पूछा कि अजमेर में रहनेवाला मेरा सम्बन्धी बहुत बीमार था, वह जीवित है या नहीं? इस प्रश्न में उसके मुख से या किसी बालक के मुख से फल का नाम उच्चारण कराया, तो बालक ने आम का नाम लिया। इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण (आ + म् + अ) है—इसमें दो स्वर और एक व्यंजन है। अतः द्वितीय चक्र के अनुसार आ = २१, म = ७६, अ = १२ के है। अतः २१ + ७६ + १२ = ११६ योगफल में तृतीय चक्र के अनुसार जीवनमरण सम्बन्धी क्षेपक ४० जोड़ा तो ११६ + ४० = १५६ हुआ, इसमें भाजक ३ का भाग दिया तो १५६ ÷ ३ = ५३ लब्ध और शेष शून्य रहा। चतुर्थचक्र के अनुसार इसका फल मरण जानना चाहिए। इसी प्रकार विभिन्न प्रश्नों के अनुसार पिण्ड बनाकर अपने-अपने भाजक का भाग देने पर शेष के अनुसार फल बतलाना चाहिए।

योनिविभाग

गाथा—**आ इ आ तिण्णि सरा सत्तमनमो या बारसा[1] जीवं।**
पंचमछट्ठउमारा[2] सदाउं सेसेसु तिसु मूलं ॥१॥
जीवक्खरेक्केवीसा दी (ते) रहदव्वक्खरं मुणेयव्वं।
एयार मूलगणिया एभिणिया पक्कालया सव्वे॥२॥

अर्थ—अ इ आ ये तीन स्वर तथा सप्तम-ए, नवम-ओ और बारहवाँ स्वर—अः ये छः स्वर जीव संज्ञक; पंचम—उ, छठा—ऊ और ग्यारहवाँ स्वर—अं ये तीन स्वर धातु-संज्ञक और अवशेष तीन स्वर-ई ऐ औ मूल संज्ञक हैं। २१ अक्षर जीव संज्ञक, १३ अक्षर द्रव्य—धातु संज्ञक और ११ अक्षर मूलसंज्ञक होते हैं। इन सब अक्षरों का प्रश्न काल में विचार करना चाहिए।

तत्र त्रिविधो योनिः। जीवधातुमूलमिति[3]। अ आ इ ए ओ अः इत्येते जीवस्वराः षट्। क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, य श हा इति पञ्चदशव्यञ्जनाक्षराणि च

---

१. "प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयं चैव सप्तमम्। नवमं चान्तिमं चैव षट् स्वराः समुदाहृताः।।"—चं. प्र., श्लो ४२।

२. "उ ऊ अमिति मात्राणि त्रीणि धातून्यथाक्षरैः॥ यथा उ ऊ अं। अन्ये चैव स्वराः शेषा मूले चैव स्वराः शेषा मूले चैव नियोजयेत्। यथा ई ऐ औ।"— के. प्र., श्लो. ४३।

३. एकद्वित्रिनवान्त्यसप्तममिता जीवाः स्वरा उ ऊ अम्। धातुमूलमितोऽवशेषमथभूहस्तास्त्रिचन्द्रामवाः ॥—के. प्र. र. पृ. ७; शिरःस्पर्शे तु जीवः स्यात्पादस्पर्शे तु मूलकम्। धातुश्च मध्यमस्पर्शे शारदावचन तथा॥"—के. प्र. सं. पृ. ११। द्रष्टव्यम्—के. प्र. र. पृ. ४१-४३: प्र. भू. पृ. १८। के. प्र. सं. पृ. १८। प्र. वै. पृ. १०५। ग. म. पृ. ५।

जीवाक्षराणि भवन्ति। उ ऊ अं इति त्रयः स्वराः, त थ द ध, प फ ब भ, वसा इति त्रयोदशाक्षराणि धात्वक्षराणि भवन्ति। ई ऐ औ इति त्रयः स्वराः ङ ञ ण न म र ल ष इत्येकादशाक्षराणि मूलानि भवन्ति।

अर्थ—योनि के तीन भेद हैं—जीव, धातु और मूल। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इन बारह स्वरों में से अ आ इ ए ओ अः ये स्वर तथा क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये पन्द्रह व्यंजन इस प्रकार कुल २१ वर्ण जीवसंज्ञक; उ ऊ अं ये तीन तथा त थ द ध प फ ब भ व स ये दस व्यंजन, इस प्रकार कुल १३ वर्ण धातुसंज्ञक और ई ऐ औ ये तीन स्वर तथा ङ ञ ण न म ल र ष ये आठ व्यंजन इस प्रकार कुल ११ वर्ण मूलसंज्ञक होते हैं।

जीवादि संज्ञा बोधक चक्र

जीवाक्षर २१	क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह अ आ इ ए ओ अः
धात्वक्षर १३	त थ द ध प फ ब भ व स उ ऊ अं
मूलाक्षर ११	ङ ञ ण न म ल र ष ई ऐ औ

योनि निकालने की विधि

प्रश्ने जीवाक्षराणि धात्वक्षराणि मूलाक्षराणि च परस्परं शोधयित्वा तत्र योऽधिकः स एव योनिः।[२] अभिधूमितालिङ्गिताभिधूमितश्चेत् धातुः, आलिङ्गिताभिधूमितदग्धश्चेत् जीवः।

अर्थ—प्रश्नाक्षरों में-से जीवाक्षर धात्वक्षर और मूलाक्षरों के परस्पर घटाने पर जिसके वर्णों की संख्या अधिक शेष रहे, वही योनि होती है। आचार्य योनि जानने का दूसरा नियम बताते हैं कि अधिधूमित और आलिंगित प्रश्नाक्षर हों तो मूल योनि; दग्ध, आलिंगित और अभिधूमित प्रश्नाक्षर हों तो धातु योनि और आलिंगित, अभिधूमित एवं दग्धाक्षर प्रश्न के वर्ण हों तो जीवयोनि होती है।

---

१. चत्वारः कचटादितश्च यशहाः स्युर्जीवसंज्ञा रषौ। चत्वारश्च तपादितोऽक्षरगणं धातोः परं मूलके॥"—के. प्र. र. पृ ६। के. प्र. सं. पृ. ६-७। चं. प्र. श्लो. ३६-४१। प्र. कौ. पृ.५। लग्नग्रहानुसारेण जीवधातुमलादिविवेचनं निम्नलिखितग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—भु. दी. पृ. २१-२२। ष. प. भ. टी. पृ. ८-६। शा. प्र. पृ. १७। प्र. वै. पृ. १०५। प्र. सि. पृ. २८। दै. व. प. ३६-४०। प्र. कु. पृ. १०-११। पं. प. प. १२। ता. नी. प. ३२२। न. ज. पृ. १०३।

२. अभिधूमितालिङ्गितदग्धं चेत् मूलं—क. मू.।

विवेचन—प्रश्न दो प्रकार के होते हैं—मानसिक और वाचिक। वाचिक प्रश्न में प्रश्नकर्ता जिस बात को पूछना चाहता है उसे ज्योतिषी के सामने प्रकट कर उसका फल ज्ञात करता है। लेकिन मानसिक प्रश्न में पृच्छक अपने मन की बात नहीं बतलाता है, केवल प्रतीक-फल, पुष्प, नदी आदि नाम के द्वारा ही ज्योतिषी उसके मन की बात बतलाता है। संसार में प्रधान रूप से तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं—जीव, धातु और मूल। मानसिक प्रश्न मूलतः उपर्युक्त तीन ही प्रकार के होते हैं। आचार्यों ने सुविधा के लिए इनका नाम तीन प्रकार की योनि—जीव, धातु और मूल रखा है। कभी-कभी धोखा देने के लिए भी पृच्छक आते हैं, अतः सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए लग्न बनाकर निम्न प्रकार से वास्तविक बात का ज्ञान करना चाहिए। "पृच्छालग्ने यदि चन्द्रशनी स्यातां तथा कुम्भे रविः, बुधोऽस्तमितश्च तदा ज्ञेयमयं पृच्छकः कपटतयाऽऽगतोऽस्ति; अन्यथा सत्यतयेति" अर्थात् यदि प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और शनिश्चर हों, कुम्भ राशि का रवि हो और बुध अस्त हो तो पृच्छक को कपट रूप से आया हुआ समझना चाहिए और लग्न की स्थिति इससे विलक्षण हो तो उसे वास्तविक पृच्छक समझना चाहिए। वास्तविक पृच्छक के प्रतीक सम्बन्धी प्रश्नाक्षर जीवयोनि के हों तो जीवसम्बन्धी चिन्ता, धातु योनि के हों तो धातुसम्बन्धी चिन्ता और मूलयोनि के होने पर मूलसम्बन्धी चिन्ता—मनःस्थित विचारधारा समझनी चाहिए। योनियों का विशेष ज्ञान निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है—

१. दिनमान में तीन का भाग देने से लब्ध एक-एक भाग की उदयवेला, मध्यवेला एवं अस्तंगतवेला ये तीन संज्ञाएँ होती हैं। उदयवेला में तीन का भाग देने पर प्रथम भाग में जीवसम्बन्धी प्रश्न, द्वितीय भाग में धातुसम्बन्धी प्रश्न और तृतीय भाग में मूलसम्बन्धी प्रश्न जानना चाहिए। मध्यवेला में तीन का भाग देने से क्रमशः धातु, मूल और जीवसम्बन्धी चिन्ता और अस्तंगतवेला में तीन का भाग देने से क्रमशः मूल, जीव एवं धातुसम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिए। जैसे—किसी ने आठ बजे प्रातःकाल आकर प्रश्न किया। इस दिन का दिनमान ३३ घटी है। इसमें तीन का भाग देने से ११ घटी उदयवेला, ११ घटी मध्यवेला और ११ घटी अस्तंगतवेला का प्रमाण हुआ। ११ घटी प्रमाण उदयवेला में तीन का भाग दिया तो ३ घटी ४० पल एक भाग का प्रमाण हुआ। पूर्वोक्त क्रिया के अनुसार ७ बजे प्रातः काल का इष्टकाल ६ घटी ३० पल है। यह इष्टकाल उदयवेला के द्वितीय भाग के भीतर है, अतः इसका फल धातुसम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिए। इसी प्रकार मध्य और अस्तंगतवेला के प्रश्नों का ज्ञान करना चाहिए।

२. प्रश्नकर्ता से कोई इष्टांक पूछ कर उसे दूना कर, एक और जोड़ दें, फिर इस योगफल में तीन का भाग देकर शेष अंकों के अनुसार फल कहें अर्थात् एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातुचिन्ता और शून्य शेष में मूलसम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिए। जैसे—मोहन प्रश्न पूछने आया। ज्योतिषी ने उससे कोई अंक पूछा। उसने १० का अंक बताया। उपर्युक्त नियम के अनुसार १० × २ + १ = २१, २१ ÷ ३ = ७ लब्ध शेष शून्य रहा; शून्य में मूलसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए।

३. जिस समय प्रश्नकर्ता आए, उस समय का इष्टकाल बनाकर दूना करें और उसमें एक जोड़कर तीन का भाग देने पर एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातुचिन्ता, शून्य में मूलचिन्ता कहनी चाहिए। जैसे—मोहन ने आठ बजे आकर प्रश्न किया, इस समय का इष्टकाल पूर्वोक्त विधि के अनुसार ६ घटी ३० पल हुआ, इसे दूना किया तो १३ घटी हुआ, इसमें एक जोड़ा तो १३ + १ = १४ आया, पूर्वोक्त नियमानुसार तीन का भाग दिया तो १४ ÷ ३ = ४ लब्ध और २ शेष रहा, इसका फल धातुचिन्ता है।

४. पृच्छक पूर्व की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो धातुचिन्ता, दक्षिण की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो जीवचिन्ता, उत्तर की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो मूलचिन्ता और पश्चिम की ओर मुँह करके प्रश्न करे तो मिश्रित—धातु, मूल एवं जीवसम्बन्धी मिला हुआ प्रश्न कहना चाहिए।

५. पृच्छक शिर को स्पर्श कर प्रश्न करे तो जीवचिन्ता, पैर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो मूल चिन्ता और कमर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो धातुचिन्ता कहनी चाहिए। भुजा, मुख और शिर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो शुभदायक जीवचिन्ता, हृदय एवं उदर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो धनचिन्ता, गुदा और वृषण को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो अधम मूलचिन्ता एवं जानु, जंघा और पाद का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो सामान्य जीवचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिए।

६. पूर्वाह्नकाल के प्रश्न के पिण्ड को तीन से भाग देने पर एक शेष में धातु, दो में मूल और शून्य शेष में जीवचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिए। मध्याह्न काल के प्रश्न के पिण्ड में तीन का भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः मूल, जीव और धातुचिन्ता का प्रश्न कहना चाहिए। इसी प्रकार दग्ध काल के प्रश्न के पिण्ड में तीन का भाग देने से एक शेष में जीव, दो में धातु और शून्य में मूलसम्बन्धी प्रश्न कहना चाहिए।

७. समराशि में प्रथम नवांश लग्न हो तो जीव, द्वितीय में मूल, तृतीय में धातु, चतुर्थ में जीव, पंचम में मूल, छठे में धातु, सातवें में जीव, आठवें में मूल और नौवें में धातु-सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिए। विषमराशि में प्रथम नवांश लग्न हो तो धातु, द्वितीय में मूल, तीसरे में जीव, चौथे में धातु, पाँचवें में मूल, छठे में जीव, सातवें में धातु, आठवें में मूल और नौवें में जीव सम्बन्धी प्रश्न होता है।

जीवयोनि के भेद

तत्र जीवः[1] द्विपदः, चतुष्पदः, अपदः, पादसंकुलेति[2] चतुर्विधः अ ए क च ट त प य शाः द्विपदाः। आ ऐ ख छ ठ थ फ र षाश्चतुष्पदाः। इ ओ ग ज ड द ब ल सा अपदाः। ई औ घ झ ढ ध भ व हाः पादसंकुलाः भवन्ति।

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ५४-५६। के. प्र. सं. पृ. १८। ग. म. पृ. ७। ष. प. भ. टी. प. ८। भु. दी. पृ. २२। प्र. कौ. पृ. ६। प्र. कु. पृ. १५। प्र. वै. पृ. १०६।

२. पादसंकुलश्चेति—क. मू.।

अर्थ—जीवयोनि के द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुल ये चार भेद हैं। अ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपदसंज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र् ष ये अक्षर चतुष्पदसंज्ञक; इ ओ ग ज ड द थ ल स ये अक्षर अपद संज्ञक और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये अक्षर पादसंकुलसंज्ञक होते हैं।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्र में जीवयोनि का विचार दो प्रकार से किया गया है, एक—प्रश्नाक्षरों से और दूसरा—प्रश्नलग्न एवं ग्रहस्थिति आदि से। प्रस्तुत ग्रन्थ का विचार प्रश्नाक्षरों का है। लग्न के विचारानुसार मेष, वृष, और धनु चतुष्पद; कर्क और वृश्चिक पादसंकुल; मकर और मीन अपद एवं कुम्भ, मिथुन, तुला और कन्या द्विपदसंज्ञक हैं। ग्रहों में शुक्र और बृहस्पति द्विपदसंज्ञक, शनि, सूर्य और मंगल चतुष्पद संज्ञक, चन्द्रमा, राहु पादसंकुलसंज्ञक तथा शनि और राहु अपदसंज्ञक है। जीव योनि का ज्ञान होने पर कौन-सा जीव है, इसको जानने के लिए जिस प्रकार की लग्न हो तथा जो ग्रह बली होकर लग्न को देखे अथवा युक्त हो उसी ग्रह का जीव कहना चाहिए। यदि लग्न स्वयं बलवान् और उसी जाति का ग्रह लग्नेश हो तो लग्न की जाति का ही जीव समझना चाहिए। इस ग्रन्थ के अनुसार जीवयोनि का निर्णय कर लेने के पश्चात् अ ए क च ट त प य श ये द्विपद, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये चतुष्पद, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये अपद और ई औ घ झ ढ ध भ व ह पादसंकुल होते हैं, पर यहाँ पर भी "परस्परं शोधयित्वा तत्र योऽधिकः स एव योनिः" इस सिद्धान्तानुसार परस्पर द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुला योनि के अक्षरों को घटाने के बाद जिस प्रकार की जीवयोनि के अक्षर अधिक शेष रहें, वही जीवयोनि समझनी चाहिए। जैसे—मोहन ने प्रश्न किया कि मेरे मन में क्या है? यहाँ मोहन के मुख से निकलनेवाले प्रथम वाक्य को भी प्रश्नवाक्य माना जा सकता है, अथवा दिन के प्रथम भाग में प्रश्न किया हो तो बालक के मुख से पुष्प का नाम, द्वितीय भाग का प्रश्न हो तो स्त्री के मुख से फल का नाम, तृतीय भाग का प्रश्न हो तो वृद्ध के मुख से वृक्ष या देवता का नाम और रात्रि का प्रश्न हो तो बालक, स्त्री और वृद्ध में-से किसी एक के मुख से तालाब या नदी का नाम ग्रहण कराकर उसी को प्रश्नवाक्य मान लेना चाहिए। सत्य फल का निरूपण करने के लिए उपर्युक्त दोनों ही दृष्टियों से फल कहना चाहिए। मोहन दिन के ९ बजे आया है। अतः यह दिन के प्रथम भाग का प्रश्न हुआ, इसलिए किसी अबोध बालक से पुष्प का नाम पूछा तो बालक ने जुही का नाम बताया। प्रश्नवाक्य जुही का विश्लेषण ज् + उ + ह् + ई यह हुआ। ज् और ह् दो वर्ण जीवाक्षर, उ धात्वक्षर और ई मूलाक्षर है। संशोधन करने पर जीवयोनि का एक वर्ण अवशेष रहा, अतः यह जीवयोनि हुई। अब द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुल के विचार के लिए देखा तो पूर्वोक्त, विश्लेषण में ह् + ई ये अक्षर पादसंकुल और ज् अपद संज्ञक हैं। संशोधन करने से यह पादसंकुला योनि हुई। अतः मोहन के मन में पादसंकुलसम्बन्धी जीव की चिन्ता समझनी चाहिए। पादसंकुलयोनि के विचार में स्वेदज और अण्डज जीवों को ग्रहण किया गया है।

द्विपदयोनि औद देवयोनि के भेद

तत्र द्विपदा[1] देवमनुष्यराक्षसा इति। तत्रोत्तरोत्तरेषु देवता, उत्तराधरेषु मनुष्याः[2]। अधरोत्तरेषु पक्षिणः[3] अधराधरेषु राक्षसाः भवन्ति। तत्र देवाश्चतुर्णिकायाः[4]—कल्पवासिनः, भवनवासिनः, व्यन्तराः, ज्योतिष्काश्चेति।

अर्थ—द्विपदयोनि के देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद हैं। उत्तरोत्तर प्रश्नाक्षरों (अ क ख ग घ ङ) के होने पर देव; उत्तराधर प्रश्नाक्षरों (च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण) के होने पर मनुष्य; अधरोत्तर प्रश्नाक्षरों (त थ द ध न प फ ब भ म) के होने पर पक्षी और अधराधर प्रश्नाक्षरों (य र ल व श ष स ह) के होने पर राक्षस योनि होती है। इनमें देवयोनि के चार भेद हैं—कल्पवासी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी।

विवेचन—दो पैर वाले जीव—देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस होते हैं। लग्न के अनुसार कुम्भ, मिथुन, तुला और कन्या ये चार द्विपद राशियाँ क्रमशः देव, मनुष्यादि संज्ञक हैं, लेकिन मतान्तर से सभी राशियाँ देवादि संज्ञक हैं। पूर्वोक्त विधि से लग्न बनाकर ग्रहों की स्थिति से देवादि योनि का निर्णय करना चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्ता से समय के अनुसार पुष्प, फलादि का नाम उच्चारण कराके पहले आलिंगित, अभिधूमित और दग्धकाल में जो पिण्ड बनाने की विधि बतायी गयी है, उसी के अनुसार बनाना चाहिए, परन्तु यहाँ इतना ध्यान और रखना चाहिए कि प्रश्नकर्ता के नाम के वर्णांक और स्वरांकों को प्रश्न के वर्णांक और स्वरांकों में जोड़कर तब पिण्ड बनाना चाहिए। इस पिण्ड में चार का भाग देने पर एक शेष में देव, दो में मनुष्य, तीन में पक्षी और शून्य में राक्षस जानना चाहिए। उदाहरण—जैसे मोहन ने प्रातः काल ८ बजे प्रश्न पूछा। आलिंगितकाल का प्रश्न होने से फल का नाम जामुन बताया। इस प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया तो (ज् + आ + म् + उ + न् + अ) यह हुआ। 'वर्ग संख्या सहित स्वरों और वर्णों के ध्रुवांक' चक्र के अनुसार (ज्६ + म्११ + न्१०) = ६ + ११ + १० = २७ वर्णांक, तथा इसी चक्र के अनुसार स्वरांक (आ३ + अ२ + उ६) = ३ + २ + ६ = ११; मोहन इस नाम के वर्णों का विश्लेषण (म् + ओ + ह् + अ + न् + अ) यह हुआ। यहाँ पर भी 'वर्ग संख्या सहित स्वरों और वर्णों के ध्रुवांक' चक्र के अनुसार वर्णांक = (म्११ + ह्१२ + न्१०) = ११ + १२ + १० = ३३; स्वरांक = (अ२ + अ२ + ओ१४) = २ + २ + १४ = १८। नाम के वर्णांकों को प्रश्न के वर्णांकों के साथ तथा नाम के स्वरांकों को प्रश्न के स्वरांकों के साथ योग कर देने पर स्वरांक और वर्णांकों का परस्पर गुणा करने से पिण्ड होता है। अतः २७ + ३० = ५७ वर्णांक, स्वरांक

---

१. के. प्र. र. पृ. ५६-५७। के प्र. सं. प्र. १८। ग. म. पृ. ७।

२. तुलना—प्र. कौ. पृ. ७। शा. प्र. पृ. २०।

३. "मृगमीनौ तु खचरौ तत्रस्थौ मन्दभूमिजौ। वनकुक्कुटकाकौ च चिन्तितावि ति कीर्तयेत्॥ इत्यादि—'ज्ञ' प्र. पृ. २१।

४. "देवाश्चतुर्णिकायाः"—त. सू. ४/१। "देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूतिविशेषैर्द्वीपाद्रिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः"—स. सि. ४।१।

= ११ + १८ = २९, ५७ × २९ = १६५३ पिण्ड हुआ; इसमें चार का भाग दिया तो १६५३ ÷ ४ = ४१३ लब्ध, १ शेष, अतः देवयोनि हुई। अथवा बिना गणित क्रिया के केवल प्रश्नाक्षरों पर से ही योनि का ज्ञान करना चाहिए। जैसे मोहन का 'जामुन' प्रश्नवाक्य है। इसमें (ज् + आ + म् + उ + न् + अ) ये स्वर और व्यंजन हैं। इस विश्लेषण में ज् मनुष्ययोनि तथा म् और न् पक्षी योनि हैं। संशोधन करने पर पक्षी योनि के वर्ण अधिक हैं अतः पक्षी योनि हुई। अब यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि पहले नियम के अनुसार देवयोनि आयी और दूसरे नियम के अनुसार पक्षी योनि, अतः दोनों परस्पर विरोधी हैं। लेकिन यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि द्वितीय नियम के अनुसार प्रातःकाल के प्रश्न में पुष्प का नाम पूछना चाहिए, फल का नहीं। यहाँ फल का नाम बताया गया है, इससे परस्पर में विरोध आता है। अतएव खूब सोच-विचारकर प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते समय सर्वदा गणित क्रिया का आश्रय लेना चाहिए। लग्न बनाकर ग्रहस्थिति पर से जो फलादेश कहा जाएगा, वह सर्वदा सत्य और यथार्थ होगा।

देवयोनि जानने की विधि

अकारे[1] कल्पवासिनः। इकारे भवनवासिनः। एकारे व्यन्तराः। ओकारे ज्योतिष्काः। तद्यथा—क कि के को इत्यादि। अग्रे नाम्ना विशेषेण[2] वर्गस्य क्षितिदेवताः ब्राह्मणाः, राजानः, तपस्विनश्चानुक्रमेण ज्ञातव्या इति देवयोनिः।

अर्थ—देवयोनि के वर्णों में अकार की मात्रा होने पर कल्पवासी, इकार की मात्रा होने पर भवनवासी; एकार की मात्रा होने पर व्यन्तर और ओकार की मात्रा होने पर ज्योतिष्क देवयोनि होती है। जैसे—क में अकार की मात्रा होने से कल्पवासी; कि में इकार की मात्रा होने से भवनवासी; के में एकार की मात्रा होने से व्यन्तर और को में ओकार की मात्रा होने से ज्योतिष्क योनि होती है। आगे नाम की विशेषता के अनुसार पृथ्वीदेवता—ब्राह्मण, राजा और तपस्वी क्रम से जानने चाहिए। इस प्रकार देवयोनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—व्यंजनों से सामान्य देवयोनि का विचार किया गया है, किन्तु मात्राओं से कल्पवासी आदि देवों का विचार करना चाहिए। जैसे—मोहन का प्रश्न वाक्य 'किसमिस' है, इस वाक्य का आदि वर्ण 'कि' है। अतः देवयोनि हुई, क्योंकि मतान्तर से प्रश्नवाक्य के प्रारम्भिक अक्षर के अनुसार ही योनि होती है। 'कि' इस वर्ण में 'इ' की मात्रा है अतः भवनवासी योनि हुई। योनि का विचार करते समय सदा किसी पुष्प का नाम पूछना ज्यादा सुविधाजनक होता है।

---

१. तुलना—के. प्र. र., पृ. ५८। "देवा अकारवर्गे तु दैत्याश्चैव कवर्गकम्। मुनिसंज्ञं तवर्गं तु पवर्गे राक्षसाः स्मृताः। देवाश्चतुर्विधा ज्ञेयाः भुवनान्तरसंस्थिताः। कल्पवासी ततो नित्यं शेषं क्षिप्रमुदाहरेत्॥ एकविंशहता प्रश्नाः सप्तमात्राहतानि च। क्रमभागं पुनर्दद्याद् ज्ञातव्यं देवदानवम्॥ एकं भुवनमध्यं द्वितीयम् अन्तरास्थितम्। तृतीयं कल्पवासी च शून्ये चैवहि व्यन्तराः॥"—चं. प्र, श्लो, ५४, २४८-२५०।

२. विशेष—क. मू।

मनुष्ययोनि का विशेष निरूपण

अथ मनुष्ययोनिः[1]—ब्राह्मण[2]क्षत्रियवैश्यशूद्रान्त्यजाश्चेति मनुष्याः पञ्चविधाः। यथासंख्यं पञ्च वर्गाः क्रमेण ज्ञातव्याः। तत्रालिङ्गि[3]तेषु पुरुषः। अभिधूमितेषु स्त्री। दग्धेषु नपुंसकः। तत्रालिङ्गिते[4] गौरः। अभिधूमिते श्यामः। दग्धेषु कृष्णः।

अर्थ—मनुष्य योनि के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज ये पाँच भेद हैं। प्रथम, द्वितीय आदि पाँचों वर्गों को क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज समझना चाहिए अर्थात् अ ए क च ट त प य श ये ब्राह्मण वर्ण; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये क्षत्रिय वर्ण; इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वैश्य वर्ण; ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये शूद्र वर्ण और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये अन्त्यज वर्ण संज्ञक होते हैं। इन पाँचों वर्णों में भी आलिंगित प्रश्न वर्ण होने पर पुरुष, अधिधूमित होने पर स्त्री और दग्ध होने पर नपुंसक होते हैं। पुरुष, स्त्री आदि में भी आलिंगित प्रश्न वर्ण होने पर गौर वर्ण, अभिधूमित होने पर श्याम वर्ण और दग्ध होने पर कृष्ण वर्ण के व्यक्ति होते हैं।

विवेचन—मनुष्य योनि के अवगत हो जाने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण विशेष का ज्ञान करने के लिए प्रश्नलग्नानुसार फल कहना चाहिए। यदि शुक्र और बृहस्पति बलवान् होकर लग्न को देखते हों या लग्न में हों तो ब्राह्मण वर्ण; मंगल और रवि बलवान् होकर लग्न को देखते हों या लग्न में हों तो क्षत्रिय वर्ण, चन्द्रमा बलवान् होकर लग्न को देखता हो या लग्न में हो तो वैश्य वर्ण, बुध बलवान् होकर लग्न को देखता हो या लग्न में हो तो शूद्र वर्ण और राहु एवं शनैश्चर दोनों ही बलवान् होकर लग्न को देखते हों या लग्न में हों तो अन्त्यज वर्ण जानना चाहिए। विशेष प्रकार के मनुष्यों के ज्ञान करने का नियम यह है कि सूर्य अपनी उच्च राशि (मेष) में उदित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सम्राट्, केवल उच्च राशि में रहने पर जमींदार, स्वक्षेत्रग (सिंह राशि में) होने से मन्त्री, मित्र गृह में मित्र दृष्ट होने से राजाश्रित योद्धा होता है। उपर्युक्त भिन्न सूर्य की स्थिति हो तो धातु का बर्तन बनानेवाला (ठठेरा), कुम्हार, शंखच्छेदी आदि निम्न श्रेणी का व्यक्ति समझना चाहिए। नर राशि में सूर्य यदि चन्द्र से दृष्ट या युक्त हो तो वैद्य, बुध से युक्त या दृष्ट हो तो चोर और राहु से युक्त या दृष्ट होने पर विष देनेवाला चाण्डाल जानना चाहिए। शनि के बली होने से वृक्ष काटनेवाला (लकड़हारा), राहु के बली होने पर धीवर या नाई, चन्द्रमा के बली होने से नर्तक एवं शुक्र के बली होने से कुम्हार तथा चूना बेचनेवाला समझना चाहिए।

यदि लग्न में कोई सौम्य ग्रह बलवान् होकर स्थित हो तो पृच्छक के मन में अपनी

---

१. तुलना—के. प्र. रं. पृ. ५८-६०। ग. म. पृ. ८। भु. दी. पृ. २३-२६। ज्ञा. प्र. पृ. २२-२३। चं. प्र. श्लो. २५८-२६६।

२. "ब्राह्मणाः, क्षत्रियाः, वैश्याः, शूद्राः, अन्त्यजाश्चेति"—ता. मू.।

३. "तत्र द्विपदे त्रिविधो भेदः। पुरुषस्त्रीनपुंसकभेदात्। आलिङ्गितेन पुरुषः। अभिधूमितेन नारी। दग्धकेन षण्ढः।"—के. प्र. सं. १८, ग. म. पृ. ९। भु. दी. पृ. २४। प्र. वै. पृ. १०६-७। न. ज. प. ३१। च. प्र. २७१-७३।

४. "गौरः श्यामस्तथा सम इत्यादि"—ग. म. पृ. ९। भु. दी. प. २४-२५। बृ. जा. पृ. २७। चं. प्र. श्लो. ४६-४८।

जाति के मनुष्य की चिन्ता, तृतीय भाव में स्थित हो तो भाई की चिन्ता, चतुर्थ भाव में स्थित हो तो मित्र की चिन्ता, पंचम भाव में स्थित हो तो माता एवं पुत्र की चिन्ता। छठे भाव में स्थित हो तो शत्रु की चिन्ता, सातवें भाव में स्थित हो तो स्त्री की चिन्ता, आठवें भाव में स्थित हो तो मृतपुरुष की चिन्ता, नौवें भाव में स्थित हो तो मुनि या किसी बड़े धर्मात्मा पुरुष की चिन्ता, दसवें भाव में स्थित हो तो पिता की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो बड़े भाई एवं गुरु आदि पूज्य पुरुषों की चिन्ता और बारहवें भाव में बलीग्रह के स्थित होने पर हितैषी की चिन्ता जाननी चाहिए। प्रश्नकाल के ग्रहों में सूर्य और शुक्र वक्री हों तथा इन दोनों में-से कोई एक ग्रह अस्त हो तो पृच्छक के मन में परस्त्री की चिन्ता; सप्तम भाव में बुध हो तो वेश्या की चिन्ता एवं सप्तम भाव में शनैश्चर हो तो नाईन, धोबिन आदि नीच वर्णों की स्त्रियों की चिन्ता जाननी चाहिए। यदि प्रश्न लग्न में बलवान् बुध और शनैश्चर स्थित हो अथवा इन दोनों में-से किसी एक ग्रह की लग्न स्थान के ऊपर पूर्ण दृष्टि हो तो नपुंसक की चिन्ता; शुक्र और चन्द्रमा इन दोनों में-से कोई एक ग्रह लग्नेश होकर लग्न में स्थित हो अथवा इनकी पूर्ण दृष्टि हो तो स्त्री की चिन्ता एवं बलवान् सूर्य, बृहस्पति और मंगल में-से कोई एक ग्रह अथवा तीनों ही ग्रह लग्न में स्थित हों या लग्न को देखते हों तो पुरुष की चिन्ता समझनी चाहिए।

यदि लग्न में सूर्य हो तो पाखण्डियों की चिन्ता, तीसरे और चौथे स्थान में स्थित हो तो कार्य की चिन्ता, पाँचवें स्थान में स्थित हो तो पुत्र और कुटुम्बियों की चिन्ता, छठे स्थान में सूर्य के स्थित होने से कार्य और मार्ग की चिन्ता, सातवें स्थान में स्थित होने पर पत्नी की चिन्ता, आठवें भाव में सूर्य के स्थित रहने पर नौका की चिन्ता, नौवें स्थान में सूर्य के रहने पर अन्य नगर के मनुष्य की चिन्ता, दसवें भाव में सूर्य के रहने से सरकारी कार्यों की चिन्ता; ग्यारहवें भाव में सूर्य के रहने से टैक्स, कर आदि के वसूल करने की चिन्ता और बारहवें भाव में सूर्य के रहने से शत्रु से हानि की चिन्ता होती है।

प्रथम स्थान में चन्द्रमा हो तो धन की चिन्ता, द्वितीय में हो तो धन के सम्बन्ध में कुटुम्बियों के झगड़ों की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो वृष्टि की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो माता की चिन्ता, पंचम स्थान में हो तो पुत्रों की चिन्ता, छठे स्थान में हो तो निज रोग की चिन्ता, सातवें स्थान में हो तो स्त्री की चिन्ता, आठवें स्थान में हो तो भोजन की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो मार्ग चलने की चिन्ता, दसवें स्थान में हो तो दुष्टों की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो वस्त्र, धूप, कपूर, अनाज आदि वस्तुओं की चिन्ता, एवं बारहवें भाव में चन्द्रमा स्थित हो तो चोरी गयी वस्तु के लाभ की चिन्ता कहनी चाहिए।

लग्न स्थान में मंगल हो तो कलहजन्य चिन्ता, द्वितीय भाव में मंगल हो तो नष्ट हुए धन के लाभ की चिन्ता, तृतीय स्थान में होने से भाई और मित्र की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में रहने से शत्रु, पशु एवं क्रय-विक्रय की चिन्ता, पाँचवें स्थान में रहने से क्रोधी मनुष्य के भय की चिन्ता, छठे स्थान में रहने से सोना, चाँदी, अग्नि आदि की चिन्ता, सातवें स्थान में रहने से दासी, दास, घोड़ा आदि की चिन्ता, आठवें स्थान में रहने से मन्दिर की चिन्ता, नौवें स्थान में रहने से मार्ग की चिन्ता, दसवें स्थान में रहने से वाद-विवाद, मुकद्दमा आदि

की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में रहने से शत्रुओं की चिन्ता और बारहवें स्थान में मंगल के रहने से शत्रु से होनेवाले अनिष्ट की चिन्ता कहनी चाहिए।

बुध लग्न में हो तो वस्त्र, धन और पुत्र की चिन्ता, द्वितीय में हो तो परीक्षाफल की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो भाई, बहन आदि की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो खेत और बगीचा की चिन्ता, पाँचवें भाव में हो तो सन्तान की चिन्ता, छठे भाव में स्थित हो तो गुप्त कार्यों की चिन्ता, सातवें भाव में स्थित हो तो प्रशासन की चिन्ता, आठवें भाव में स्थित हो तो पक्षी, मुकद्दमा और राजदण्ड आदि की चिन्ता, नौवें स्थान में स्थित हो तो धार्मिक कार्यों की चिन्ता, दसवें स्थान में स्थित हो तो शास्त्रकथा, सुख आदि की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो धनप्राप्ति की चिन्ता और बारहवें भाव में बुध स्थित हो तो घरेलू झगड़ों की चिन्ता जाननी चाहिए।

बृहस्पति लग्न में स्थित हो तो व्याकुलता के नाश की चिन्ता, द्वितीय स्थान में हो तो धन, कुशलता, सुख एवं भोगोपभोग की वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो स्वजनों की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो भाई के विवाह की चिन्ता, पाँचवें स्थान में स्थित हो तो पुत्र के स्वास्थ्य और उसके विवाह की चिन्ता, छठे स्थान में स्थित हो तो स्त्री के गर्भ की चिन्ता, सातवें में हो तो धनप्राप्ति की चिन्ता, आठवें में हो तो कर्ज़ दिये गये धन के लौटाने की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो धन सम्पत्ति की चिन्ता, दसवें स्थान में स्थित हो तो मित्र-सम्बन्धी झगड़े की चिन्ता, ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो सुख और आजीविका की चिन्ता और बारहवें भाव में हो तो यश की चिन्ता कहनी चाहिए।

लग्न में शुक्र हो तो नृत्य संगीत, विषय-वासना तृप्ति की चिन्ता, द्वितीय स्थान में हो तो धन, रत्न, वस्त्र इत्यादि की चिन्ता, तृतीय भाव में हो तो सन्तान प्राप्ति की चिन्ता, चतुर्थ स्थान में हो तो विवाह की चिन्ता, पंचम स्थान में हो तो भाई और सन्तान की चिन्ता, छठे स्थान में हो तो गर्भवती स्त्री की चिन्ता, सातवें स्थान में हो तो स्त्री प्राप्ति की चिन्ता, आठवें में हो तो परस्त्री की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो रोग की चिन्ता, दसवें स्थान में हो तो अच्छे कार्यों की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में हो तो व्यापार की चिन्ता और बारहवें भाव में शुक्र हो तो दिव्य वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता कहनी चाहिए।

लग्न में शनैश्चर हो तो स्वास्थ्य की चिन्ता, द्वितीय में हो तो पुत्र को पढ़ाने की चिन्ता, तृतीय स्थान में हो तो भाई के कष्ट की चिन्ता, चौथे स्थान में शनि हो तो स्त्री की चिन्ता, पाँचवें भाव में हो तो आत्मीय के कार्य की चिन्ता, छठे स्थान में हो तो जार स्त्री की चिन्ता, सातवें स्थान में हो तो गाड़ी की चिन्ता, आठवें स्थान में हो तो धन, मृत्यु, दास, दासी आदि की चिन्ता, नौवें स्थान में हो तो निन्दा की चिन्ता, दसवें स्थान में हो तो कार्य की चिन्ता, ग्यारहवें स्थान में हो तो कुत्सित कर्म की चिन्ता और बारहवें भाव में शनि हो तो शत्रुओं की चिन्ता कहनी चाहिए। सातवें भवन में शुक्र, बुध, गुरु, चन्द्रमा और सूर्य इन ग्रहों का इत्थशाल योग हो तो कन्या के विवाह की चिन्ता समझनी चाहिए।

पुरुष, स्त्री आदि के रूप का ज्ञान लग्नेश और लग्न को देखनेवाले ग्रह के रूप के ज्ञान से करना चाहिए। जिस वर्ण का ग्रह लग्न को देखता हो तथा जिस वर्ण का बली ग्रह लग्नेश हो, उसी वर्ण के मनुष्य की चिन्ता कहनी चाहिए। यदि मंगल लग्नेश हो अथवा

पूर्ण बली होकर लग्न को देखता हो तो लाल वर्ण (रंग), बृहस्पति की उक्त स्थिति होने पर कांचन वर्ण, बुध की उक्त स्थिति होने पर हरा वर्ण, सूर्य की उक्त स्थिति होने पर गौर वर्ण, चन्द्रमा की उक्त स्थिति होने पर आक के पुष्प के समान श्वेतरक्त वर्ण; शुक्र की उक्त स्थिति होने पर परम शुक्लवर्ण और शनि, राहु एवं केतु की उक्त स्थिति पर कृष्ण वर्ण के व्यक्ति की चिन्ता कहनी चाहिए।

बाल-वृद्धादि एवं आकृति मूलक समादि अवस्थाएँ

आलिङ्गितेषु बालः[1]। अभिधूमितेषु मध्यमः। दग्धेषु वृद्धः। आलिङ्गितेषु समः। अभिधूमितेषु दीर्घः[2]। दग्धेषु कुब्जः। अनामविशेषाः[3] ज्ञातव्या इति मनुष्ययोनिः।

अर्थ—आलिंगित प्रश्नाक्षर होने पर बाल्यावस्था, अभिधूमित प्रश्नाक्षर होने पर मध्यमावस्था—युवावस्था और दग्ध प्रश्नाक्षर होने पर वृद्धावस्था होती है। आलिंगित प्रश्नाक्षर होने पर सम—न अधिक कद में बड़ा न अधिक छोटा, अभिधूमित प्रश्नाक्षर होने पर दीर्घ लम्बा और दग्ध प्रश्नाक्षर होने पर कुब्ज मनुष्य की चिन्ता होती है। नाम को छोड़कर अन्य सब विशेषताएँ प्रश्नाक्षरों पर से ही जाननी चाहिए। इस प्रकार मनुष्य योनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—यदि मंगल चतुर्थ भाव का स्वामी हो, चतुर्थ भाव स्थित हो या चतुर्थ भाव को देखता हो तो युवा; बुध चतुर्थ भाव का स्वामी हो, चतुर्थ भाव में स्थित हो या चतुर्थ भाव को देखता हो तो बालक; चन्द्रमा और शुक्र चतुर्थ भाव में स्थित हों, चतुर्थ भाव के स्वामी हों या चतुर्थभाव को देखते हों तो अर्द्धवयस्क; शनि, रवि, बृहस्पति और राहु ये ग्रह चतुर्थ भाव में स्थित हों, चतुर्थ भाव के स्वामी हों या चतुर्थ भाव को देखते हों तो वृद्ध पुरुष की चिन्ता कहनी चाहिए। आकार बली लग्नाधीश के समान जानना चाहिए अर्थात् बली सूर्य लग्नाधीश हो तो शहद के समान पीले नेत्र लम्बी-चौड़ी बराबर देह, पित्त प्रकृति और थोड़े बालोंवाला; बली चन्द्रमा लग्नाधीश हो तो पतली गोल देह, वात-कफ प्रकृति, सुन्दर आँख, कोमल वचन और बुद्धिमान्; मङ्गल लग्नाधीश हो तो क्रूर दृष्टि, युवक, उदारचित्त, पित्त प्रकृति, चंचल स्वभाव और पतली कमर वाला; बुध लग्नशील हो तो वाक्पटु, हँसमुख, वात-पित्त-कफ प्रकृति वाला और स्थूल काय; बृहस्पति लग्नाधीश हो तो सुन्दर शरीर, स्वस्थ, कफ-वात प्रकृति और कुटिल केशवाला एवं शनैश्चर लग्नाधीश हो तो आलसी, पीले नेत्र, कृश शरीर, मोटे दाँत, रूखे बाल, लम्बी देह और अधिक वात वाला होता है। इस प्रकार लग्नानुसार जीवयोनि का निरूपण करना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थानुसार प्रश्नकर्ता के मन में क्या है, वह क्या पूछना चाहता है, इत्यादि बातों का परिज्ञान आचार्य ने जीव, मूल और धातु इन तीन प्रकार की योनियों द्वारा किया

---

१. तुलना—के. प्र. पृ. ६०-६१। चं. प्र. श्लो. २६६। ता. नी. पृ. ३२४। भु. दी. पृ. ३०-४५।
२. के. प्र., र. पृ. ६१। चं. प्र. श्लो. २८५-२७७, २५५। भुव, दी. पृ. २४।
३. अंग्रे नाम्ना विशेष इति मनुष्याः—क. मू.।

है। जीव प्रश्नाक्षर—अ आ इ ओ अः ए क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह होने पर पृच्छक की जीवसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। लेकिन जीवयोनि के द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुल ये चार भेद होते हैं। अतः जीवविशेष की चिन्ता का ज्ञान करने के लिए द्विपद के देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद किये गये हैं। मनुष्य योनि सम्बन्धी प्रश्न के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज इन पाँचों भेदों द्वारा विचार-विनिमय कर वर्ण-विशेष का निर्णय करना चाहिए। फिर प्रत्येक वर्ण के पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीन भेद होते हैं, क्योंकि ब्राह्मण वर्ण सम्बन्धी प्रश्न होने पर पुरुष, स्त्री आदि का निर्णय भी करना आवश्यक है। पुनः पुरुष, स्त्री आदि भेदों के भी बाल्य, युवा और वृद्ध ये तीन अवस्था सम्बन्धी भेद हैं तथा इनमें-से प्रत्येक के गौर, श्याम और कृष्ण रंगभेद एवं सम, दीर्घ और कुब्ज ये तीन आकृति सम्बन्धी भेद हैं। इस प्रकार मनुष्य योनि के जीव का अक्षरानुसार निर्णय करना चाहिए। उदाहरण—जैसे किसी आदमी ने प्रातः काल ६ बजे आकर पूछा कि मेरे मन में क्या चिन्ता है? ज्योतिषी ने उससे फल का नाम पूछा तो उसने जामुन बताया। जामुन इस प्रश्न वाक्य का विश्लेण किया तो ज् + आ + म् + उ + न् + अ यह रूप हुआ। इसमें ज् + आ + अ ये तीन जीवाक्षर, न् + म् ये दो मूलाक्षर और उ धात्वक्षर है। "प्रश्ने जीवाक्षराणि धात्वक्षराणि मूलाक्षराणि च परस्परं शोधयित्वा योऽधिकः स एव योनिः" इस नियमानुसार जीवाक्षर अधिक होने से जीव योनि हुई, अतः जीवसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। पर किस प्रकार के जीव की चिन्ता है? यह जानने के लिए ज् + आ + अ इन विश्लेषित वर्णों में 'ज्' अपद, 'आ' चतुष्पद और 'अ' द्विपद हुआ। यहाँ तीनों वर्ण भिन्न-भिन्न संज्ञक होने के कारण 'योऽधिकः स एव योनिः' नहीं लगा, किन्तु प्रथमाक्षर की प्रधानता मानकर चतुष्पद सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। इस प्रकार उत्तरोत्तर मनुष्य योनि सम्बन्धी चिन्ता का निर्णय करना चाहिए। इस प्रकार के प्रश्नों का विचार करते समय इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि जब किसी खास योनि का निश्चय नहीं हो रहा हो, उस समय प्रश्नवाक्य के आदि-अक्षर से ही योनि का निर्णय किया जाता है।

पक्षियोनि के भेद

अथ[1] पक्षियोनिः। तवर्गे जलचराः। पवर्गे स्थलचराः। तत्र नाम्ना विशेषः ज्ञातव्याः[2]। इति पक्षियोनिः।

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ६१-६२। ग. म. पृ. ८। चं. प्र. श्लो. २८७-२८८। ज्ञा. प्र. पृ. २१-२२। प्र. कौ. पृ. २। विशेष फलादेश के लिए पक्षी चक्र—"चंचुमस्तककण्ठेषु हृदयोदरपत्सु च। पक्षयोश्च त्रिकं चैव शशिभादि न्यसेद् बुधः। चंचुस्थे नामभे मृत्युः शीर्षे कण्ठोदरे हृदि। विजयः क्षेमलाभश्च भंगदं पादपक्षयोः"—न. र. पृ. २१३; पक्षिशेषं खेशर ५० हतं दिवतवि ग्रामचरः, अरण्यचरः, अम्बुचरः। खेशरहतं ५०, दीप्तरवि, १२ हृतं म १, शुकः २, पिकः ३, हंसः ४, काकः ५, कुक्कुटः ६, चक्रवाकः ७, गुल्लिः८, मयूरः ९, सालुवः १०, परिवाणः ११, ककोरले १२, लावगे १३, बुसले ०। अरण्यखगशेषं अद्रिशर ५७ हतं दिवत वि—स्थूलखगः। स—मध्यमखगः ०। सूक्ष्मखगः। स्थूलखगशेषं ताराहतं २७, दिवत १, बेरुण्डः २, रणवक्कि ३, हेब्बल्लिः ४, गरुड़ः ५. क्रौञ्चः ६, कोंगिडिः ७. बकः ०, गूगे०। मध्यमखगशेषम्"।—के. हो. ह. पृ. ८१।

२. ज्ञातव्या इति पाठो नास्ति—क. मू.।

अर्थ—प्रश्नाक्षर तवर्ग के हों तो जलचर पक्षी और पवर्ग के हों तो थलचर पक्षी की चिन्ता कहनी चाहिए। पक्षियों के नाम अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाना चाहिए। इस प्रकार पक्षियोनि का निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—यदि प्रश्नलग्न मकर या मीन हो और उन राशियों में शनि या मंगल स्थित हों तो वनकुक्कुट और काक सम्बन्धी चिन्ता; अपनी राशियों में—वृष और तुला में शुक्र हो तो हंस, बुध हो तो शुक, चन्द्रमा हों तो मोर सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। अपनी राशि—सिंह में सूर्य हो तो गरुड़; बृहस्पति अपनी राशि—धनु और मीन में हो तो श्वेत रंग का पक्षी; बुध अपनी राशि-कन्या और मिथुन में हो तो मुर्गा; मंगल अपनी राशि-मेष और वृश्चिक में हो तो उल्लू एवं राहु धनु और मीन में हो तो भरदूल पक्षी की चिन्ता कहनी चाहिए। सौम्य ग्रहों—बुध, चन्द्र, गुरु, और शुक्र के लग्नेश होने पर सौम्य-पक्षी की चिन्ता और क्रूर ग्रहों—रवि, शनि और मंगल के लग्नेश होने पर क्रूर पक्षियों की चिन्ता समझनी चाहिए। इस प्रकार लग्न और लग्नेश के विचार से पक्षि योनि का निरूपण करना आवश्यक है। प्रश्नाक्षर और प्रश्नलग्न इन दोनों पर-से विचार करने पर ही सत्यासत्य फल का कथन करना चाहिए। एकांगी केवल लग्न या केवल प्रश्नाक्षरों का विचार अधूरा रहता है। आचार्य ने इसी अभिप्राय से "तत्र विशेषा ज्ञातव्याः" इत्यादि कहा है।

राक्षसयोनि के भेद

कर्मजाः योनिजाश्चेति राक्षसा[1] द्विविधाः। [2]तवर्गे कर्मजाः। शवर्गे योनिजाः। तत्र नाम्ना[3] विशेषतो ज्ञेयाः[4]। इति द्विपदयोनिश्चतुर्विधः।

अर्थ—राक्षसयोनि के दो भेद हैं—कर्मज और योनिज। तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर कर्मज और शवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर योनिज राक्षसयोनि होती है। नाम से विशेष प्रकार के भेदों को जानना चाहिए। इस प्रकार द्विपद योनि के चारों भेदों का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—भूत, प्रेतादि राक्षस कर्मज कहे जाते हैं और असुरादि को योनिज कहते हैं। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से भूतादि व्यन्तरों के भेदों में से हैं, पर यहाँ पर राक्षस सामान्य के अन्तर्गत ही व्यन्तर के समस्त भेदों तथा भवनवासियों के असुरकुमार, वातकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमारों को रखा है। ज्योतिषशास्त्र में निकृष्ट देवों को राक्षस संज्ञा दी गयी है। रत्नप्रभा के पंचभाग में असुरकुमार और राक्षसों का निवास स्थान बताया गया है। शास्त्रों में व्यन्तर देवों के निवासों का कथन भवनपुर, आवास और भवन के नामों से किया गया है, अर्थात् द्वीप—समुद्रों में भवनपुर; तालाब, पर्वत और वृक्षों पर आवास एवं चित्रा पृथ्वी के नीचे भवन हैं। ज्योतिषी को प्रश्नकर्ता की चर्या और चेष्टा से उपर्युक्त स्थानों में

---

१. तुलना—के. प्र, र. पृ. ६२। ग.म. पृ. ६। च.प्र. श्लो. २. १-६३।
२. यवर्गे—ता. मू.।
३. विशेषः—क. मू.।
४. ज्ञेया इति पाठो नास्ति—क. मू.।

रहनेवाले देवों का निरूपण करना चाहिए अथवा लग्नेश और लग्नसप्तम के सम्बन्ध से उक्त देवों का निरूपण करना चाहिए अर्थात् लग्नेश मंगल हो और सप्तम भाव में रहनेवाले बुध एवं रवि के साथ इत्थशाल योग हो तो भवनपुर में रहनेवाले निकृष्ट देवों—राक्षसों की चिन्ता, शनि लग्नेश होकर सप्तमेश शुक्र और सप्तम भावस्थ गुरु के साथ कम्बूल योग कर रहा हो तो आवास में रहनेवाले राक्षसों की चिन्ता एवं राहु और केतु हीनबल हों तथा बृहस्पति का रवि के साथ मणऊ योग हो तो भवन में रहनेवाले राक्षसों की चिन्ता कहनी चाहिए।

चतुष्पद योनि के भेद

[1]अथ चतुष्पदयोनिः[2]—खुरी नखी दन्ती शृंगी चेति चतुष्पदाश्चतुर्विधाः। तत्र आ ऐ खुरी, छ ठा नखी, थ फा दन्ती, र षा शृंगी।

अर्थ—खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी ये चार भेद चतुष्पद योनि के हैं। यदि आ और ऐ स्वर प्रश्नाक्षर हों तो खुरी, छ और ठ प्रश्नाक्षर हों तो नखी, थ और फ प्रश्नाक्षर हों तो दन्ती और र एवं ष प्रश्नाक्षर हों तो शृंगी योनि कहनी चाहिए।

विवेचन—लग्न स्थान में मंगल की राशि हो और त्रिपाद दृष्टि से मंगल लग्न को देखता हो तो खुरी, सूर्य की राशि—सिंह लग्न हो और सूर्य लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता हो या लग्न स्थान में हो तो नखी, मेष राशि में शनि स्थित हो अथवा लग्न स्थान के ऊपर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो दन्ती एवं मंगल कर्क राशि में स्थित हो अथवा मकर में स्थित हो और लग्न स्थान के ऊपर त्रिपाद या पूर्ण दृष्टि हो तो शृंगी योनि कहनी चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थानुसार प्रश्न श्रेणी के आद्य वर्ण की जो मात्रा हो, उसी के अनुसार खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी योनि का निरूपण करना चाहिए। केरलादि प्रश्न ग्रन्थों के मतानुसार अ आ इ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हों तो खुरी; ई उ ऊ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हों तो नखी, ए ऐ ओ ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हों तो दन्ती और औ अं अः ये तीन स्वर प्रश्नाक्षरों के आदि में हों तो शृंगी योनि कहनी चाहिए।

खुरी, नखी, दन्ती और शृंगी योनि के भेद और उनके लक्षण

तत्र[3] खुरिणोः द्विविधाः—ग्रामचरा अरण्यचराश्चेति। 'आ ऐ' ग्रामचरा अश्वगर्दभादयः। 'ख' अरण्यचराः गवयहरिणादयः। तत्र नाम्ना[4] विशेषतो ज्ञेयाः। नखिनोऽपि ग्रामारण्याश्चेति द्विविधाः। 'छ' ग्रामचराः श्वानमार्जारादयः। 'ठ' अरण्यचराः

---

१. तुलना— के. प्र. र. पृ. ६२-६३। प्र. कौ. पृ. ६। चं. प्र. श्लो. २९४-२९६। के. हो. ह. पृ. ८६।

२. "अथ चतुष्पदयोनिः" इति पाठो नास्ति—ता. मू.।

३. तुलना—च. प्र. श्लो, २९७-३०९। ज्ञा. प्र. पृ. २३-२४। भु. दी. पृ. १५-१६। स. वृ.सं. पृ. १०५२। के. हो. पृ. ८७।

४. विशेषः—क. मू.।

व्याघ्रसिंहादयः। तत्र नाम्ना विशेषतो[1] ज्ञेयाः। दन्तिनो द्विविधाः—ग्रामचरा अरण्यचराश्चेति। 'थ'[2] तत्र ग्रामचराः शूकरादयः। 'फ'[3] अरण्यचराः हस्त्यादयः। तत्र नाम्ना विशेषतो[4] ज्ञेयाः। शृङ्गिणो द्विविधाः—ग्रामचरा अरण्यचराश्चेति। 'र' ग्रामचराः महिषछागादयः। 'ष' अरण्यचरा मृगगण्डकादय। इति चतुष्पदौ योनिः।

अर्थ—खुरी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। आ ऐ प्रश्नाक्षर होने पर ग्रामचर अर्थात् घोड़ा, गधा, ऊँट आदि मवेशी की चिन्ता और ख प्रश्नाक्षर होने पर वनचारी पशु रोझ, हरिण, खरगोश आदि की चिन्ता कहनी चाहिए। इन पशुओं में भी नाम के अनुसार विशेष प्रकार के पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिए।

नखी योनि के ग्रामचर और अरण्यचर ये दो भेद हैं। 'छ' प्रश्नाक्षर हो तो ग्रामचर अर्थात् कुत्ता, बिल्ली आदि नखी पशुओं की चिन्ता और 'ठ' प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर—व्याघ्र, चीता, सिंह, भालू आदि जंगली नखी जीवों की चिन्ता कहनी चाहिए। नाम के अनुसार विशेष प्रकार के नखी जीवों की चिन्ता का ज्ञान करना चाहिए।

दन्ती योनि के दो भेद हैं—ग्रामचर और अरण्यचर। 'थ' प्रश्नाक्षर हो तो ग्रामचर—शूकरादि ग्रामीण पालतू दन्ती जीवों की चिन्ता और 'फ' प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर हाथी आदि जंगली दन्ती पशुओं की चिन्ता कहनी चाहिए। दन्ती पशुओं को नामानुसार विशेष प्रकार से जानना चाहिए।

शृंगी योनि के भी दो भेद हैं—ग्रामचर और अरण्यचर। 'र' प्रश्नाक्षर हो तो भैंस, बकरी आदि ग्रामीण पालतू सींगवाले पशुओं की चिन्ता और 'ष' प्रश्नाक्षर हो तो अरण्यचर—हरिण, कृष्णसार आदि वनचारी सींग वाले पशुओं की चिन्ता समझनी चाहिए। इस प्रकार चतुष्पद-पशु योनि का निरूपण सम्पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रश्नकालीन लग्न बनाकर उसमें यथास्थान ग्रहों को स्थापित कर लेने पर चतुष्पद योनि का विचार करना चाहिए। यदि मेष राशि में सूर्य हो तो व्याघ्र की चिन्ता, मंगल हो तो भेड़ की चिन्ता, बुध हो तो लंगूर की चिन्ता, शुक्र हो तो बैल की चिन्ता, शनि हो तो भैंस की चिन्ता और राहु हो तो रोझ की चिन्ता कहनी चाहिए। वृष राशि में सूर्य हो तो बारहसिंगा की चिन्ता, मंगल हो तो कृष्णमृग की चिन्ता, बुध हो तो बन्दर की चिन्ता, चन्द्रमा हो तो गाय की चिन्ता, शुक्र हो तो पीली गाय की चिन्ता, शनि हो तो भैंस की चिन्ता और राहु हो तो भैंसा की चिन्ता बतलानी चाहिए। मंगल यदि कर्क राशि में हो तो हाथी, मकर राशि में हो तो भैंस, वृष में हो तो सिंह, मिथुन में हो तो कुत्ता, कन्या में हो तो शृगाल, सिंह में हो तो व्याघ्र एवं सिंह राशि में रवि, चन्द्र और मंगल ये तीनों ग्रह हों तो सिंह की चिन्ता कहनी चाहिए। चन्द्रमा तुला राशि में स्थित हो और लग्न स्थान को

---

१. विशेषः—क. मू.।
२. 'थ' इति पाठो नास्ति—क. मू.।
३. 'फ' इति पाठो नास्ति—क. मू.।
४. विशेषः—क. मू.।

देखता हो तो बैल और गाय, शुक्र तुला राशि में स्थित हो, सप्तम भाव के ऊपर पूर्ण दृष्टि हो और लग्नेश या चतुर्थेश हो तो बछड़े की चिन्ता समझनी चाहिए। धनु राशि में मंगल या बृहस्पति स्थित हो तो घोड़ा और शनि भी वक्री होकर धनु राशि में ही बृहस्पति या मंगल के साथ स्थित हों तो मस्त हाथी की चिन्ता बतलानी चाहिए। धनु राशि में लग्नेश से सम्बद्ध राहु बैठा हो तो भैंस की चिन्ता; धनु राशि में बुध और बृहस्पति स्थित हों तथा चतुर्थ एवं सप्तम भाव से सम्बद्ध हों तो बन्दर की चिन्ता; धनु राशि में ही चन्द्रमा और बुध स्थित हों अथवा दोनों ग्रह मित्र भाव में बैठे हों तो पशु सामान्य की चिन्ता एवं सूर्य और बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि धनु राशि पर हो तो गर्भिणी पशु की चिन्ता और इसी राशि पर सूर्य की पूर्ण दृष्टि हो तो वन्ध्या पशु की चन्ता कहनी चाहिए। यदि चन्द्रमा कुम्भ राशि में स्थित हो और यह धनुराशिस्थ शुभ ग्रह को देखता हो तो वानर की चिन्ता, कुम्भ राशि में बृहस्पति स्थित हो या त्रिकोण में बैठकर कुम्भ राशि को देखता हो तो भालू की चिन्ता एवं कुम्भ राशि में शनि बैठा हो तो जंगली हाथी की चिन्ता समझनी चाहिए। इस प्रकार लग्न और ग्रहों के अनुसार पशुओं की चिन्ता का ज्ञान करना चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल प्रश्नाक्षरों से ही विचार किया गया है। उदाहण—जैसे मोहन ने प्रातःकाल १० बजे आकर प्रश्न किया कि मेरे मन में कौन-सी चिन्ता है? मोहन से किसी फलका नाम पूछा तो उसने आम का नाम लिया। इस प्रश्न वाक्य का (आ + म + अ) यह विश्लेषण हुआ। इसमें आद्य वर्ण आ है, अतः "आ ऐ ग्रामचराः—अश्वगर्दभादयः" इस लक्षण के अनुसार घोड़े की चिन्ता कहनी चाहिए।

अपदयोनि के भेद और लक्षण

अथापद[1] योनिः—ते[2] द्विविधाः जलचराः स्थलचराश्चेति। तत्र इ ओ ग ज डाः जलचराः—शङ्खमत्स्यादयः। द ब ल साः स्थलचराः—सर्पमण्डूकादयः। तत्र नाम्ना विशेषतो[3] ज्ञेयाः इत्यपदयोनिः।

अर्थ—अपद योनि के दो भेद हैं—जचलर और थलचर। इनमें इ ओ ग ज ड ये प्रश्नाक्षर हों तो जलचर शंख, मछली, घड़ियाल इत्यादि की चिन्ता और द ब ल स ये प्रश्नाक्षर हों तो थलचर—साँप, मेढ़क इत्यादि की चिन्ता कहनी चाहिए। नाम से विशेष प्रकार का विचार करना चाहिए। इस प्रकार अपदयोनि का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—प्रश्न श्रेणी के आद्य वर्ण से अपदयोनि का ज्ञान करना चाहिए। मतान्तर से क ग च ज त द ट ड प ब य ल की जलचर संज्ञा और ख घ छ झ थ ध ठ ढ फ भ र व की स्थलचर संज्ञा बतायी गयी है। मगर, मछली, शंख आदि जलचर और कीड़े, सर्प, दुमुही आदि की स्थलचर संज्ञा कही गयी है। ङ ञ ण न म इन वर्णों की उभयचर

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ६४-६५। प्र. श्लो. ३११-१७।

२. ते च—क. मू.।

३. विशेषः—क. मू.।

संज्ञा है। किसी-किसी आचार्य के मत से ई औ घ झ ढ ध भ व ह उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये वर्ण स्थलसंज्ञक और इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण जलचरसंज्ञक हैं। गणित क्रिया द्वारा निकालने के लिए मात्राओं को द्विगुणित कर वर्णों से गुणा करना चाहिए। यदि गुणनफल विषमसंख्यक हो तो स्थलचर और समसंख्यक हो तो जलचर अपद योनि की चिन्ता समझनी चाहिए।

पादसंकुला-योनि के भेद और उनके लक्षण

अथ[1] पादसंकुला योनिः[2]। ई औ घ झ ढाः अण्डजाः भ्रमरपतङ्गादयः। ध भ व हाः स्वेदजाः यूकमत्कुणमक्षिकादयः। तत्र नाम्ना विशेष इति पादसंकुलायोनिः। इति जीवयोनिः।

अर्थ—पादसंकुल योनि के दो भेद हैं—अण्डज और स्वेदज। इ औ घ झ ढ ये प्रश्नाक्षर अण्डज संज्ञक—भ्रमर, पतंग इत्यादि और ध भ व ह ये प्रश्नाक्षर स्वेदज संज्ञक—जूँ, खटमलादि हैं। नामानुसार विशेष प्रकार के भेदों को समझना चाहिए। इस प्रकार पादसंकुल योनि और जीवयोनि का प्रकरण समाप्त हुआ।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों की स्वर संख्या को दो से गुणा कर प्राप्त गुणनफल में प्रश्नाक्षरों की व्यंजन संख्या को चार से गुणाकर जोड़ने से योगफल समसंख्यक हो तो स्वेदज और विषमसंख्यक हो तो अण्डज बहुपाद योनि के जीवों की चिन्ता कहनी चाहिए। जैसे—मोतीलाल प्रातःकाल ८ बजे पूछने आया कि मेरे मन में किस प्रकार के जीव की चिन्ता है? प्रातःकाल का प्रश्न होने से मोतीलाल से पुष्प का नाम पूछा तो उसने वकुल का नाम बतलाया। 'वकुल' इस प्रश्न वाक्य का (व् + अ + क् + उ + ल् + अ) यह विश्लेषित रूप हुआ। इसकी स्वर संख्या तीन को दो से गुणा किया तो ३ × २ = ६, व्यंजन संख्या तीन को चार से गुणा किया तो ३ × ४ = १२, दोनों का योग किया तो १२ + ६ = १८ योगफल हुआ; यह समसंख्यक है, अतः स्वेदज योनि की चिन्ता हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रश्नाक्षरों के नियमानुसार भी प्रथमाक्षर 'व' स्वेदज योनि का है, अतः स्वेदज जीवों की चिन्ता कहनी चाहिए। प्रश्न लग्न से यदि प्रश्न का फल निरूपण किया जाय तो मेष, वृष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, मकर का पूर्वार्द्ध इन राशियों के प्रश्न लग्न होने पर बहुपद जीव योनिकी चिन्ता कहनी चाहिए। मेष, वृष, कर्क और सिंह राशि के प्रश्न लग्न होने पर अण्डज जीव योनि की चिन्ता और वृश्चिक एवं मकर राशि के पन्द्रह अंश तक लग्न होने पर स्वेदज जीव योनि की चिन्ता कहनी चाहिए। मिथुन राशि में मंगल या बुध हो और चतुर्थ भाव में रहनेवाले ग्रहों से सम्बद्ध हो तो मत्कुण की चिन्ता, कन्या राशि में शनि हो तथा चतुर्थ भाव को देखता हो तो जूँ की चिन्ता, मीन राशि में कोई ग्रह नहीं हो तथा लग्न में कर्क राशि हो और

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ६५-६६। चं. प्र. ३३३-३३४। ष. प. भ. पृ. ८। प्र. को. पृ. ६। शा. प्र. पृ. २१। ग. म. पृ. ८। के. हो. ह. ८६।

२. अथ पादसंकुलाः भ्रमरखर्जूरादयः—क. मू.।

शुक्र या चन्द्रमा उसमें स्थित हो तो भ्रमर की चिन्ता एवं धनु राशि में मंगल स्थित हो और यह छठे भाव से सम्बन्ध रखता हो तो पतंग की चिन्ता कहनी चाहिए। तृतीय भाव में वृश्चिक राशि हो तो बिच्छू और खटमल की चिन्ता, कर्क राशि हो तो कच्छप की चिन्ता, मेष राशि हो तो गोधा की चिन्ता, वृष राशि हो तो छिपकली की चिन्ता, मकर राशि हो तो छिपकली, गोधा, चींटी, लट और केंचुआ आदि जीवों की चिन्ता एवं वृश्चिक राशि में मंगल के तृतीय भाव में रहने पर विषैले कीड़ों की चिन्ता कहनी चाहिए। चौथे भाव में मकर राशि के रहने पर चन्दनगोह, दुमुँही आदि जीवों की चिन्ता, कर्क राशि के रहने पर चींटी की चिन्ता और धनु राशि के रहने पर बिच्छू की चिन्ता कहनी चाहिए। बहुपाद योनि का विचार प्रधानतः लग्न, चतुर्थ, तृतीय और षष्ठ भाव से करना चाहिए। यदि उक्त भावों में क्षीण चन्द्रमा, क्रूर ग्रह युक्त निर्बल बुध, राहु और शनि स्थित हों तो निम्न श्रेणी के बहुपाद जीवों की चिन्ता कहनी चाहिए।

धातुयोनि के भेद

अथ[1] धातुयोनिः। तत्र द्विविधो धातुः धाम्यमधाम्यञ्चेति[2]। त द प ब उ अं सा एते धाम्याः। घ थ ध फ भ ऊ व ए अधाम्याः।

अर्थ—धातु योनि के दो भेद हैं—धाम्य और अधाम्य। त द प ब उ अं स इन प्रश्नाक्षरों के होने पर धाम्य धातु योनि और घ थ ध फ भ ऊ व ए इन प्रश्नाक्षरों के होने पर अधाम्य धातु योनि कहनी चाहिए।

विवेचन—जो धातु अग्नि में डालकर पिघलाये जा सकें, उन्हें धाम्य और जो अग्नि में पिघलाये नही जा सकें उन्हें अधाम्य कहते हैं। यदि त द प ब उ अं स ये प्रश्नाक्षर हों तो धाम्य और घ थ ध फ भ ऊ व ए ये प्रश्नाक्षर हों तो अधाम्य धातु योनि होती है। धाम्याधाम्य धातुयोनि को गणित क्रिया द्वारा अवगत करने के लिए प्रश्नकर्ता से पुष्पादि का नाम पूछकर पूर्वाह्नकाल में वर्ग संख्या सहित वर्ण की संख्या और वर्ग संख्या सहित स्वर की संख्या को परस्पर गुणाकर गुणनफल में नामाक्षरों की वर्ग संख्या सहित वर्ण की संख्या और वर्ग संख्या सहित स्वर की संख्या को परस्पर गुणा करने पर जो गुणनफल हो, उसे जोड़ देने से योगफल पिण्ड होता है। मध्याह्न काल के प्रश्न में प्रश्नाक्षर और नामाक्षर दोनों की स्वर संख्या को केवल वर्ण संख्या से गुणा करने पर दोनों गुणनफलों के योग तुल्य मध्याह्न कालीन पिण्ड होता है। और सायं काल के प्रश्न में प्रश्नाक्षर और नामाक्षर के वर्ण की संख्या को वर्ग की संख्या को वर्ण की संख्या से गुणाकर दोनों गुणनफलों के योगतुल्य सायंकालीन पिण्ड होता है। धातुचिन्ता सम्बन्धी प्रश्न होने पर इस पिण्ड में दो का भाग देने पर एक शेष में धाम्य और शून्य शेष में अधाम्य धातु योनि होती है।

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ६६-६७। के. प्र. सं. पृ. १६। ग. म. पृ. ५। प्र. कु. प १३। प्र. कौ. प. ५। ज्ञा. प्र. पृ. १६।

२. धाम्या अधाम्येति—क मू.।

धाम्य धातुयोनि के भेद

तत्र धाम्या अष्टविधाः[1]–सुवर्णरजतताम्रत्रपुकांस्यलोहसीसरेतिकादयः। श्वेतपीतहरितरक्तकृष्णा[2] इति पञ्चवर्णा। पुनर्धाम्याः द्विविधाः घटिताघटिताश्चेति। घटित उत्तराक्षरेष्वघटित अधराक्षरेषु।

अर्थ–धाम्य धातु योनि के आठ भेद हैं–सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, राँगा, काँसा, लोहा, सीसा और रेतिका–पित्तल। सफेद, पीला, हरा, लाल और काला ये पाँच प्रकार के रंग हैं। धाम्य धातु के प्रकारान्तर से दो भेद हैं–घटित और अघटित। उत्तराक्षर प्रश्नाक्षरों के होने पर घटित और अधराक्षर होने पर अघटित धातु योनि होती है।

विवेचन–शुक्र या चन्द्रमा लग्न में स्थित हों या लग्न को देखते हों तो चाँदी की चिन्ता, बुध लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो सोने (सुवर्ण) की चिन्ता, बृहस्पति लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो रत्नजटित सुवर्ण की चिन्ता, मंगल लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो सीसे की चिन्ता, शनि लग्न में स्थित हो तो लोहे की या लोहे द्वारा निर्मित वस्तुओं की चिन्ता और राहु लग्न में स्थित हो तो हड्डी की चिन्ता कहनी चाहिए। सूर्य अपने भाव–सिंह राशि में स्थित और चन्द्रमा उच्चराशि–वृष में स्थित हो तो सुवर्ण आदि श्रेष्ठ धातुओं की चिन्ता, मंगल लग्नेश हो या अपनी राशियों–मेष और वृश्चिक में स्थित हो तो ताँबे की चिन्ता, बुध लग्न स्थान में हो या मिथुन कन्या राशि में स्थित हो तो राँगे की चिन्ता, गुरु लग्नेश होकर लग्न में स्थित हो या पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सोने के आभूषणों की चिन्ता, शुक्र लग्नेश हो या लग्न में स्थित हो और लग्न स्थान को देखता हो तो चाँदी के आभूषणों की चिन्ता, चन्द्रमा लग्नेश हो और लग्न स्थान से सम्बद्ध हो तो काँसे की चिन्ता, शनि और राहु लग्न स्थान में स्थित हों या मकर और कुम्भ राशि में दोनों स्थित हों तो लोहे की चिन्ता कहनी चाहिए। मंगल, सूर्य, शनि और शुक्र अपने-अपने भाव में रहने से लोह वस्तु की चिन्ता कराने वाले होते हैं। चन्द्रमा, बुध एवं बृहस्पति अपने भाव और मित्र के भाव में रहने पर लोहे की चिन्ता कराने वाले कहे गये हैं। सूर्य के लग्नेश होने पर ताँबे की चिन्ता, चन्द्रमा के लग्नेश होने पर मणि की चिन्ता, मंगल के लग्नेश होने पर सोने की चिन्ता, बुध के लग्नेश होने पर काँसे की चिन्ता, बृहस्पति के लग्नेश होने पर चाँदी की चिन्ता और शनि के लग्नेश होने पर लोहे की चिन्ता समझनी चाहिए। सूर्य सिंह राशि में स्थित हो, सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो या लग्न स्थान पर पूर्ण दृष्टि हो तो इस प्रकार की स्थिति में सर्जक (Sodium), पोटाशक (Potassium), रुविदक (Rubidium) और ताम्र (Copper) की चिन्ता, वृश्चिक राशि में मंगल हो, अपने मित्र की राशि में शनि हो और मंगल की दृष्टि लग्न स्थान पर हो तो सुवर्ण, वेरिलक

---

१. तुलना–के. प्र. सं. पृ. १६। के. प्र. र. पृ. ६७-६८। प्र. कौ. पृ. ६०। ग.म.प. ६। शा, प. १६। भु. दी. पृ. २६-२७। वृ. जा. पृ. ३२। दे. व. प. ७। आ. ति. पृ. १५।

२. श्वेतपीतनील...पञ्चवर्णाः–क. मू.।

(Berylium), मग्नीशक (Magnesium), कालक (Calcium), वेरक (Barium), कदमक (Cadmium) एवं ज़स्ता (Zincum) की चिन्ता; बुध लग्नेश हो या मित्र भाव में स्थित हो अथवा लग्न स्थान के ऊपर त्रिपाद दृष्टि हो, अन्य ग्रह त्रिकोण ५। ९ और केन्द्र (लग्न, ४। ७।१०) में हों तथा व्यय भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो पारद (Mercury), स्कन्दक (Scandium), इत्रिक, (worium), लन्थनक (Lanthanum), इत्तविक (Ytterbium), अलम्यूनियम (Aluminium), गलक (Gallium), इन्दुक (Indium), थल्लक (Thallium), तितानक (Titanium), शिर्कनक (Zirconium), सीरक (Cerium) एवं वनदक (Vanadium), की चिन्ता; बृहस्पति लग्न में स्थित हो, बुध लग्नेश हो, शनि तृतीय भाव में स्थित हो, सूर्य सिंह राशि में हो और बृहस्पति मित्रगृही हों तो जर्मनक (Germanium), रंग (Stannum), सीसा (Lead), नवक (Niobium), आर्सेनिक (Arsenicum), आन्तिमनि (Stibium), विषमिथ (Bismuth), क्रीमक (Chromcum), मोलिदक (Molybdenum), तुङ्गस्तक (Tungsten) एवं वारुणुक (Vranium) की चिन्ता; शनि लग्न में स्थित हो, बुध मकर राशि में स्थित हो, शुक्र कुम्भ या वृष राशि में हो, लग्नेश शनि हो और चतुर्थ, पंचम और सप्तम भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो मंगनक (Manganese), लौह (Iron), कोबाल्ट (Cobalt), निकेल (Nickel), रुथीनक (Ruthenium), पल्लदक (Palladium), अश्मक (Osmium), इरिदक (Iridium), प्लातिनक (Platium) और हेलिक (Helium) की चिन्ता; राहु धन राशि में स्थित हो, लग्न में केतु हो, नवम भाव में गुरु स्थित हो और ग्यारहवें भाव में सूर्य हो तो क्षार नमक (Salt), बुनसेन (Bunsen), चाँदी (Silver) और हरताल की चिन्ता एवं चक्रार्द्ध में सभी ग्रहों के रहने पर लौह-भस्म, ताम्र-भस्म और रौप्य-भस्म की चिन्ता कहनी चाहिए। अथवा प्रश्नाक्षरों पर-से पहले धातु योनि का निर्णय करने के अनन्तर धाम्य और अधाम्य धातु योनि का निर्णय करना चाहिए। धाम्य योनि के सुवर्ण, रजतादि आठ भेद कहे गये हैं। उत्तराक्षर प्रश्न श्रेणी वर्गों के होने पर घटित और अधराक्षर होने पर अघटित धाम्य योनि कहनी चाहिए।

घटितयोनि के भेद और प्रभेद

तत्र घटितः[1] त्रिविधः—जीवाभरणं गृहाभरणं नाणकञ्चेति। तत्र द्विपदाक्षरेषु द्विपदाभरणं; त्रिविधं—देवताभरणं मनुष्याभरणं पक्षिभूषणमिति। तत्र नराभरणं शीर्षाभरणं कर्णाभरणं नासिकाभरणं[2] ग्रीवाभरणं कण्ठाभरणं[3] हस्ताभरणं जंघाभरणं पादाभरणमित्यष्टविधम्। तत्र शीर्षाभरणं किरीटघट्टिकार्धचन्द्रादयः। कर्णाभरणं कर्णकुण्डलादयः। नासिकाभरणं[4] नासामण्यादयः। ग्रीवाभरणं कण्ठिकाहारादयः। कण्ठाभरणं

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ६९-७१। ग. म. पृ. ६-७। आ. ति. पृ. १५। दै. का. पृ. २२८। रा प्र पृ. २५-२६। ध्व. ग.प ७। प्र. कु. पृ. १४। के, हो ह. पृ. ६०-६१।

२. नासिकाभरणं-पाठो नास्ति-क. मू.।

३. कण्ठाभरणमिति नास्ति—क. मू.।

४. नासिकाभरणं नासामण्यादय इति पाठो नास्ति-क. मू.।

ग्रैवेयकादयः। हस्ताभरणं कङ्कणाङ्गुलीयकमुद्रिकादयः। जंघाभरणं जंघाघण्टिकादयः। पादाभरणं नूपुरमुद्रिकादयः। तत्रोत्तरेषु नराभरणम्[1] अधरेषु नार्याभरणम्। उत्तराक्षरेषु दक्षिणाभरणमधराक्षरेषु वामाभरणम् तत्र नाम्ना विशेषः। देवानां[2] पक्षिणां च पूर्वोक्तवज्ज्ञेयम्। गृहाभरणं द्विविधं भाजनं भाण्डञ्चेति। तत्र नाम्ना विशेषः।

अर्थ—घटित धातु के तीन भेद हैं—जीवाभरण-आभूषण, गृहाभरण—पात्र और नाणक—सिक्के, नोट, रुपये आदि। द्विपद—अ ए क च ट त प य श प्रश्नाक्षर हों तो द्विपदाभरण—दो पैरवाले जीवों का आभूषण होता है। इसके तीन भेद हैं—देवताभूषण, पक्षि आभूषण और मनुष्याभूषण। मनुष्याभूषण के शिरसाभरण, कर्णाभरण, नासिकाभरण, ग्रीवाभरण, कण्ठाभरण, हस्ताभरण, जंघाभरण और पादाभरण ये आठ भेद हैं। इन आभूषणों में मुकुट, खौर, सीसफूल आदि शिरसाभरण; कानों में पहने जानेवाले कुण्डल, एरिंग (बुन्दे) आदि कर्णाभरण; नाक में पहने जानेवाली मणि की लौंग, बाली आदि नासिकाभरण; कण्ठ में पहने जानेवाली कण्ठी, हार आदि ग्रीवाभरण; गले में पहने जानेवाली हँसुली, हार आदि कण्ठाभरण; हाथों में पहने जानेवाले कंकड़, अँगूठी, मुदरी, छल्ला आदि हस्ताभरण; जाँघों में बाँधे जानेवाले घुँघरू, क्षुद्रघण्टिका आदि जंघाभरण और पैरों में पहने जानेवाले बिछुए, छल्ला, पाजेब आदि पादाभरण होते हैं। प्रश्नाक्षरों में उत्तर वर्णों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स के होनेपर मनुष्याभरण और अधराक्षरों—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह के होनेपर स्त्रियों के आभूषण जानने चाहिए। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर दक्षिण अंग का आभूषण और अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होनेपर वाम अंग का आभूषण कहना चाहिए। इन आभूषणों में भी नाम की विशेषता समझनी चाहिए। प्रश्न श्रेणी में अ क ख ग घ ङ इन वर्णों के होनेपर देवों के आभूषण और त थ द ध न प फ ब भ म इन वर्णों के होनेपर पक्षियों के आभूषण कहने चाहिए। विशेष बातें देव और पक्षि योनि के समान पहले की तरह जाननी चाहिए। गृहाभरण के पात्रों के दो भेद हैं—भाजन—मिट्टी के बर्तन और भाण्ड-धातु के बर्तन। नाम की विशेषता प्रश्नाक्षरों के अनुसार जान लेनी चाहिए।

विवेचन—प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों के प्रथम वर्ण की अ इ ए ओ इन चार मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो जीवाभरण, आ ई ऐ औ इन चार मात्रओं में से कोई मात्रा हो तो गृहाभरण और उ ऊ अं अः इन चार मात्राओं में-से कोई मात्रा हो तो नाणक धातु की चिन्ता कहनी चाहिए। क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह अ आ इ ओ अः ए इन प्रश्नाक्षरों के होने से जीवाभरण समझना चाहिए। यदि प्रश्न श्रेणी में च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण इन वर्णों में से कोई भी वर्ण प्रथमाक्षर हो तो मनुष्याभरण कहना चाहिए। प्रश्नश्रेणी के साथ वर्ण में अ आ इन दोनों मात्राओं के होने से शिरसाभरण, इ ई इन दोनों

---

१. अधरोत्तरेषुनार्याभरणम्—क. मू.।

२. देवानां पक्षिणां चेति पाठो नास्ति—क. मू.।

मात्राओं के होने से कर्णाभरण, उ ऊ इन दोनों मात्राओं के होने से नासिकाभरण, ए मात्रा के होने से ग्रीवाभरण; ऐ मात्रा के होने से कण्ठाभरण, ऋ तथा संयुक्त व्यंजन में ऊकार की मात्रा होने से हस्ताभरण, ओ औ इन दोनों मात्राओं के होने से जंघाभरण और अं. अः इन दोनों मात्राओं के होने से पादाभरण की चिन्ता कहनी चाहिए।

प्रश्नलग्नानुसार आभरणों की चिन्ता तथा घटित धातु योनि के अन्य भेदों की चिन्ता का विचार करना चाहिए। मिथुन, कन्या, तुला, धनु, इन प्रश्न लग्नों के होने पर मनुष्याभरण जानने चाहिए। यदि शुक्र लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो कर्णाभरण, सूर्य लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो नासिकाभरण, चन्द्रमा लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो ग्रीवाभरण, बुध लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो कण्ठाभरण, बृहस्पति लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो हस्ताभरण, मंगल लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो तो जंघाभरण और शनि एवं मंगल दोनों ही लग्न में स्थित हों या दोनों की लग्न के ऊपर त्रिपाद दृष्टि हो तो पादाभरण धातु की चिन्ता कहनी चाहिए। पादाभरण का विचार करते समय प्रश्न कुण्डली के सप्तम भाव से लेकर द्वादश भाव तक स्थित ग्रहों के बलाबल का विचार कर लेना भी आवश्यक है। सप्तमभाव, सप्तमेश या सप्तमभाव स्थित राशि और ग्रहों का सम्बन्ध भी अपेक्षित है। यदि प्रश्नकाल में बृहस्पति, मंगल और रवि बलवान् हों तो पुरुषाभरण और चन्द्रमा, बुध, शनि, राहु और शुक्र बलवान हों तो स्त्रीआभरण की चिन्ता कहनी चाहिए। प्रथम चक्रार्ध में बलवान ग्रह हों और द्वितीय चक्रार्द्ध में बलवान ग्रह और प्रथम चक्रार्द्ध में हीनबली ग्रह हों तो दक्षिण अंग के आभरण की चिन्ता; पंचम, अष्टम और नवम के शुद्ध होने पर देवाभरण और लग्न, चतुर्थ, पष्ठ और दशम के शुद्ध होनेपर पक्षी आभरण की चिन्ता कहनी चाहिए। मिथुन लग्न में बुध स्थित हो, द्वितीय में शुक्र, चतुर्थ में मंगल, पंचम में शनि और बारहवें भाग में केतु स्थित हो तो हार, कण्ठा, हँसुली और खौर की चिन्ता; कन्या लग्न में बुध हो, वृश्चिक राशि में शुक्र, मकर में शनि, धनु में चन्द्रमा और व्ययभाव में राहु स्थित हो तो पाजेब, नूपुर, छल्ला, छड़े (कड़े), झाँझर आदि आभूषणों की चिन्ता; तुला लग्न में शुक्र हो, मिथुन राशि में बुध हो, वृश्चिक में केतु हो, मेष में रवि हो, वृष में गुरु हो और कुम्भ राशि में शनि हो तो कर्णफूल, इयररिंग, कुण्डल, बाली आदि कान के आभूषणों की चिन्ता; धनु लग्न में बुध हो, मिथुन में गुरु हो, मेष में सूर्य हो, कर्क राशि में चन्द्रमा हो, सिंह में मंगल हो, कन्या राशि में राहु हो और दसवें भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो पहुँची, कंकण, दस्ती, चूड़ी एवं टड्डे आदि आभूषणों की चिन्ता, सिंह लग्न में एक साथ चन्द्रमा, सूर्य और मंगल बैठे हों तथा लग्न से पंचम भाव में शुक्र हो, शनि मित्र के घर में स्थित और बुध लग्न को देखता हो तो हीरे और मणियों के आभूषणों की चिन्ता एवं चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, दशम और द्वादश भाव में ग्रहों के नहीं रहने से सुवर्णडली की चिन्ता कहनी चाहिए। आभूषणों का विचार करते समय ग्रहों के बलाबल का भी विचार करना परमावश्यक है। हीन बलग्रह के होने पर आभूषण उत्तम धातु का नहीं होता और न उत्तमांग का ही होता है।

अधाम्य योनि के भेद

अथाधाम्यं[1] कथ्यते। अधाम्या[2] अष्टविधाः। मौक्तिकपाषाणहरितालमणिशिला-शर्करावालुकामरकतपद्मरागप्रवालादयः। तत्र नाम्ना[3] विशेषः। इति धातुयोनिः।

अर्थ—अधाम्य धातु योनि के आठ भेद हैं—मोती, पत्थर, हरिताल, मणि, शिला, शर्करा (चीनी), बालू, मरकत (मणिविशेष), पद्मराग और मूँगा इत्यादि। इन प्रधान आठ अधाम्य धातु योनि के भेदों की नाम की विशेषता है। इस प्रकार धातु योनि का प्रकरण पूर्ण हुआ।

विवेचन—वास्तव में अधाम्य धातु के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। यदि प्रश्नकर्ता के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स इन अक्षरों में-से कोई हो तो उत्तम अधाम्ययोनि—हीरा, माणिक, मरकत, पद्मराग और मूँगा की चिन्ता; ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह इन अक्षरों में से कोई वर्ण हो तो मध्यम अधाम्ययोनि—हरिताल, शिला, पत्थर आदि की चिन्ता एवं उ ऊ अं अः इन स्वरों से संयुक्तव्यंजन प्रश्न में हो तो अधम अधाम्ययोनि—शर्करा, लवण, बालू आदि की चिन्ता कहनी चाहिए। यदि प्रश्न के आद्य वर्ण में अ इ ए ओ ये चार मात्राएँ हों तो उत्तम अधाम्य धातु की चिन्ता; आ ई ऐ औ ये चार मात्राएँ हों तो मध्यम अधाम्य धातु की चिन्ता और उ ऊ अं अः ये चार मात्राएँ हों तो अधम अधाम्य धातु योनि की चिन्ता कहनी चाहिए।

यदि लग्न सिंह राशि हो और उसमें सूर्य स्थित हो तो शिला की चिन्ता; कन्या राशि लग्न हो और उसमें बुध स्थित हो अथवा बुध की लग्न स्थान पर दृष्टि हो तो मृत्पात्र की चिन्ता; तुला या वृष राशि लग्न हो और उसमें शुक्र स्थित हो या शुक्र की लग्न स्थान पर दृष्टि हो तो मोती और स्फटिक मणि की चिन्ता; मेष या वृश्चिक राशि लग्न हो और लग्न स्थान में बली मंगल स्थित हो अथवा लग्न स्थान पर मंगल की दृष्टि हो तो मूँगा की चिन्ता; मकर या कुम्भ राशि लग्न में हो और लग्न स्थान में शनि स्थित हो या लग्न स्थान पर शनि की त्रिपाद दृष्टि हो तो लोहे की चिन्ता; धनु या मीन राशि लग्न में हो और लग्न स्थान में बृहस्पति स्थित हो अथवा लग्न स्थान पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो मनःशिला की चिन्ता; लग्न स्थान में कुम्भ राशि हो और बलवान शनि लग्न भाव में स्थित हो तथा लग्न स्थान पर राहु और केतु की पूर्ण दृष्टि हो तो नीलम, वैडूर्य की चिन्ता; वृष लग्न में शुक्र स्थित हो, चन्द्रमा की लग्न स्थान पर पूर्ण दृष्टि हो तो मरकत मणि की चिन्ता; सूर्य द्वादश भावस्थ सिंह राशि में स्थित हो, लग्न पर मंगल की पूर्ण दृष्टि हो अथवा शनि लग्न को त्रिपाद दृष्टि से देखता हो तो सूर्यकान्त मणि की चिन्ता एवं कर्क लग्न में चन्द्रमा स्थित हो, बुध की लग्न स्थानपर पूर्ण दृष्टि हो या शुक्र चतुर्थ भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो चन्द्रकान्त मणि की चिन्ता कहनी चाहिए। अधाम्य धातुयोनि के निर्णय हो जाने पर ही उपर्युक्त ग्रहों के अनुसार फल कहना चाहिए। बिना अधाम्य धातु योनि के निर्णय किये

---

१. तुलना—के. प्र. र. पृ. ७१-७२। ग. म. पृ. ६। ज्ञा. प्र. प. १७। के. हो. ह. पृ. १३।

२. अधाम्या अष्टविध...प्रागेवोक्तो—क. मू.।

३. नाम्ना विशेषतो ज्ञेयाः—क. मू.।

फल असत्य निकलेगा। फलादेश विचार करते समय प्रश्नाक्षर और प्रश्नलग्न इन दोनों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

मूलयोनि के भेद-प्रभेद

अथ मूलयोनिः[1]। स चतुर्विधः[2]—वृक्षगुल्मलतावल्लिभेदात्। आ ई ऐ औकारेषु यथासंख्यं वेदितव्यम्। पुनश्चतुर्विधः—त्वक्पत्रपुष्पफलभेदात्। कादिभिस्त्वक् खादिभिः पत्रं गादिभिः पुष्पं घादिभिः फलमिति। पुनश्च भक्ष्यमभक्ष्यमिति द्विविधम्। उत्तराक्षरेषु भक्ष्यमधराक्षरेष्वभक्ष्यम्। उत्तराक्षरेषु सुगन्धमधराक्षरेषु दुर्गन्धं कादिखादिगादि-घादिभिर्द्रष्टव्यम्। आलिङ्गितादिषु यथासंख्यं योजनीयम्[3]। तिक्तकटुकाम्ललवणमधुरा इत्युत्तराः। उत्तराक्षरमार्द्रमधराक्षरं शुष्कम्। उत्तराक्षरं स्वदेशमधराक्षरं परदेशम्, ङ ञ ण न माः शुष्काः तृणकाष्ठादयः चन्दनदेवदूर्वादयश्च। इ ज शस्त्राणि वस्त्राणि च। इति मूलयोनिः।

अर्थ—मूलयोनि के चार भेद हैं—वृक्ष, गुल्म, लता, और वल्ली। यदि प्रश्नश्रेणी के आद्यवर्ण की मात्रा 'आ' हो तो वृक्ष, 'ई' हो तो गुल्म, 'ऐ' हो तो लता और 'औ' हो तो वल्ली समझना चाहिए। पुनः मूलयोनि के चार भेद हैं—वल्कल, पत्ते, फूल और फल। क, च, ट, त आदि प्रश्नवर्णों के होने पर वल्कल; ख, छ, ठ, थ आदि प्रश्नवर्णों के होने पर पत्ते; ग, ज, ड, द आदि प्रश्नवर्णों के होने पर फूल और घ, झ, ढ, ध आदि प्रश्नवर्णों के होने पर फल की चिन्ता कहनी चाहिए। इन चारों भेदों के भी दो-दो भेद हैं—भक्ष्य—भक्षण करने योग्य और अभक्ष्य—अखाद्य। उत्तराक्षर—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स प्रश्नवर्णों के होने पर भक्ष्य और अधराक्षर—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ्र र व ष प्रश्नवर्णों के होने पर अभक्ष्य मूलयोनि समझनी चाहिए। भक्ष्याभक्ष्य के अवगत हो जाने पर उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और अधराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूलयोनि जाननी चाहिए। अथवा कादि—क, च, ट, त, प, य, श प्रश्न वर्णों के होनेपर भक्ष्य; खादि—ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष प्रश्नवर्णों के होने पर अभक्ष्य, गादि—ग, ज, ड, द, ब, ल, ष प्रश्नवर्णों के होने पर सुगन्धित और घादि—घ, झ, ढ, ध, भ, व, स प्रश्नवर्णों के होने पर दुर्गन्धित मूलयोनि कहनी चाहिए। आलिंगित, अभिधूमित, दग्ध और उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों में क्रमशः भक्ष्य, अभक्ष्य, सुगन्धित और दुर्गन्धित मूलयोनि कहनी चाहिए। तिक्त, कटुक, मधुर, लवण, आम्लक ये उपर्युक्त मूल योनियों के रस होते हैं। उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर आर्द्र मूलयोनि, अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर शुष्क; उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर स्वदेशस्थ, अधराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर परदेशस्थ मूलयोनि समझनी चाहिए। ङ ञ ण

---

१. तुलना—के. प्र. र. ७२-७५। के. प्र. सं. पृ. २०-२१। ग. म. पृ. ९-११। ष. पं. भ. प. ८। आ. ति. ह. पृ. १५। ज्ञा. प्र. पृ. १९-२१। प्र. कौ. प. ६। प्र. कु. प. २०-२१। के. हो. पृ. १०८-११३।

२. स . चतुर्विधः—क. मू.।

३. योजनीयम्—पाठो नास्ति—क. मू.।

न म इन प्रश्नाक्षरों के होने पर सूखे हुए तृण, काठ, चन्दन, देवदारु, दूब आदि समझने चाहिए। इ और ज प्रश्नवर्णों के होने पर शस्त्र और वस्त्र सम्बन्धी मूलयोनि कहनी चाहिए। इस प्रकार मूलयोनि का प्रकरण समाप्त हुआ।

विवेचन—मूलयोनि के प्रश्न के निश्चित हो जाने पर कौन-सी मूलयोनि है? यह जानने के लिए चर्याचेष्टा आदि के द्वारा विचार करना चाहिए। यदि प्रश्नकर्ता शिर को स्पर्श कर प्रश्न करे तो वृक्ष की चिन्ता, उदर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो गुल्म की चिन्ता, बाहु को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो लता की चिन्ता और पीठ को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो वल्ली की चिन्ता कहनी चाहिए। यदि पैर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो सकरकन्द, जमीकन्द आदि की चिन्ता; नाक मलते हुए प्रश्न करे तो फूल की चिन्ता; आँख मलते हुए प्रश्न करे तो फल की चिन्ता; मुँह पर हाथ फेरते हुए यदि प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो पत्र की चिन्ता और जाँघ खुजलाते हुए प्रश्न करे तो त्वक्-चिन्ता कहनी चाहिए।

प्रश्न कुण्डली में मंगल के बलवान होने पर छोटे धान्यों की चिन्ता, बुध और बृहस्पति के बलवान होने पर बड़े धान्यों की चिन्ता, सूर्य के बलवान होने पर वृक्ष की चिन्ता, चन्द्रमा के बलवान होने पर लताओं की चिन्ता, बृहस्पति के लग्नेश होने पर ईख की चिन्ता, शुक्र के लग्नेश होने पर इमली की चिन्ता, शनि के बलवान होने पर दारु की चिन्ता, राहु के बलवान होने पर तीखे काँटेदार वृक्ष की चिन्ता एवं शनि के लग्नेश होने पर फलों की चिन्ता कहनी चाहिए। मेष और वृश्चिक इन प्रश्न लग्नों के होने पर क्षुद्र सस्यचिन्ता; वृष, कर्क और तुला इन प्रश्न लग्नों के होने पर लताओं की चिन्ता; कन्या और मिथुन इन प्रश्न लग्नों के होने पर वृक्ष की चिन्ता; कुम्भ और मकर इन प्रश्न लग्नों के होने पर काँटेदार वृक्षकी चिन्ता; मीन, धनु और सिंह इन प्रश्न लग्नों के होने पर ईख, धान और गेहूँ के वृक्ष की चिन्ता कहनी चाहिए। यदि सूर्य सिंह राशि में स्थित हो तो त्वक् चिन्ता, चन्द्रमा कर्क राशि में स्थित हो तो मूल चिन्ता, मंगल मेष राशि में स्थित हो तो पुष्पचिन्ता, बुध मिथुन राशि में स्थित हो तो छाल की चिन्ता, बृहस्पति धनु राशि में स्थित हो तो फल-चिन्ता, शुक्र वृष राशि में हो तो पक्व फल की चिन्ता, शनि मकर राशि में स्थित हो तो मूल चिन्ता एवं राहु मिथुन राशि में स्थित हो तो लताचिन्ता अवगत करनी चाहिए। यदि बुध लग्नेश हो, अपने शत्रु भाव में स्थित हो अथवा लग्न भाव या शत्रु भाव को देखता हो तो सुन्दर, सौम्य एवं सूक्ष्म वृक्षों की चिन्ता; शुक्रलग्नेश हो, अपने मित्र भाव में स्थित हो अथवा लग्न भाव गा मित्र भाव को देखता हो तो निष्कण्टक वृक्ष की चिन्ता; चन्द्रमा लग्नेश हो, शत्रु भाव में रहने वाले ग्रहों से दृष्ट हो अथवा लग्न स्थान या स्वराशि स्थान को देखता हो तो केला के वृक्ष की चिन्ता, बृहस्पति लग्न स्थान में हो, लग्नेश के द्वारा देखा जाता हो और शत्रु स्थान में सौम्य ग्रह हो या मित्र स्थान में क्रूर ग्रह हो तो नारियल के वृक्ष की चिन्ता; शनि स्वराशि में हो, लग्नेश की दृष्टि शनि भाव पर हो और लग्नेश मित्र भाव में स्थित हो तो ताल वृक्ष की चिन्ता; राहु मीन या मेष राशि में स्थित होकर मकर राशि के ग्रह से तात्कालिक मैत्री सम्बन्ध रखता हो तो टेढ़े काँटेदार वृक्ष की चिन्ता एवं मंगल लग्न स्थान में स्थित होकर मेष या वृश्चिक राशि में रहनेवाले ग्रह से दृष्ट हो अथवा मंगल लग्नेश हो और शत्र

भाव में स्थित हो तो मूँगफली के वृक्ष की चिन्ता समझनी चाहिए। शास्त्रकारों ने बुध का मूँग, शुक्र का सफेद अरहर, मंगल का चना, चन्द्रमा का तिल, सूर्य का मटर, बृहस्पति का लाल अरहर, शनि का उड़द और राहु का कुलथी धान्य बताया है। यदि उपर्युक्त ग्रह अपने-अपने मित्र स्थान में हों तो उपर्युक्त धान्य रहनेवाले ग्रह से दृष्ट हो तो शीशम के वृक्ष की चिन्ता, चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में हो और पाँचवें भाव में रहनेबाले ग्रहों से दृष्ट हो अथवा उच्च का चन्द्रमा चतुर्थ भाव में स्थित हो तो अनार और श्रीफल के वृक्ष की चिन्ता एवं शुक्र अपनी उच्च राशि में स्थित हो और सातवें भाव में रहनेवाले ग्रह से दृष्ट हो तो नीम के वृक्ष की चिन्ता अवगत करनी चाहिए।

जीव, धातु और मूलयोनि के निरूपण का प्रयोजन—जीव, धातु और मूल इन तीनों योनियों के निरूपण का प्रधान उद्देश्य चोरी की गयी वस्तु का पता लगाना है। जीवयोनि में चोर का स्वरूप बताया गया है। जीवयोनि के अनुसार चोर की जाति, अवस्था, आकृति, रूप, कद, स्त्री, पुरुष एवं बालक आदि का कथन किया गया है। पूर्वोक्त जीवयोनि के प्रकरण में प्रश्न-वाक्यानुसार जाति, अवस्था, आदि का सम्यक् विवेचन किया गया है।

विवेचन में प्रतिपादित फल से प्रश्नकुण्डली के अनुसार ग्रहों की स्थिति से चोर की जाति, अवस्था, आकृति आदि का पता लगाया जा सकता है। धातुयोनि में चोरी की गयी वस्तु का स्वरूप बताया गया है, अर्थात् पृच्छक के बिना बताये भी ज्योतिषी धातुयोनि के निरूपण से बता सकता है कि अमुक प्रकार की वस्तु चोरी गयी है या नष्ट हुई है। मूल योनि के निरूपण का सम्बन्ध मन की चिन्ता के निरूपण से है, अथवा किसी बगीचे आदि की सफलता-असफलता का विचार विनिमय करना तथा प्रश्न कुण्डली या प्रश्न वाक्यानुसार कहाँ पर किस प्रकार का वृक्ष फलीभूत हो सकता है और कहाँ नहीं आदि बातों का भी विचार किया जा सकता है। अथवा उपर्युक्त तीन योनियों का प्रयोजन दूसरे के मन की बात को जानना भी है। प्रश्नकर्ता के प्रश्नवाक्य से वर्तमान, भूत और भविष्यत् की सारी घटनाओं का सम्बन्ध रहता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि मानव के प्रश्नवाक्य या अन्य शारीरिक क्रियाएँ तीनों कालों की घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। मनोविज्ञान के विद्वान् लाव ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि शरीर यन्त्र के समान है और उसका सारा आचरण यान्त्रिक क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में ही अनायास हुआ करता है। मानव के शरीर में किसी भौतिक घटना या क्रिया का उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया उसके आचरण में प्रदर्शित है। दूसरे मनोविज्ञान के प्रसिद्ध पण्डित फ्रायडे का कथन है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का अधिकांश भाग अचेतन मन के रूप में है जिसे प्रवृत्तियों का अशान्त समुद्र कह सकते हैं। इस महासमुद्र में मुख्यतः काम की और गौणतः विभिन्न प्रकार की वासनाओं, इच्छाओं और कामनाओं की उत्ताल तरंगें उठती हैं, जो अपनी प्रचण्ड चपेट से जीवन नैया को आलोड़ित करती रहती हैं। मनुष्य के मन का दूसरा अंश चेतन है और यह निरन्तर घात-प्रतिघात के द्वारा अनन्त कामनाओं से प्रादुर्भूत होता है और उन्हीं को प्रतिबिम्बित करता रहता है। फ्रायडे के मतानुसार बुद्धि भी मनुष्य की प्रवृत्ति का एक प्रतीक है, जिसका काम केवल इतना ही है कि मनुष्य के द्वारा अपनी

कामनाओं का औचित्य सिद्ध कर सके। फलतः उन्नत और विकसित बुद्धि, चाहे वह कैसी भी प्रचण्ड और अभिनव क्यों न हो, एक निमित्त मात्र है, जिसके द्वारा प्रवृत्तियाँ अपनी वासनापूर्ति तथा सन्तोषप्राप्ति की चेष्टा करती हैं। इस मत के अनुसार स्पष्ट है कि बुद्धि प्रवृत्ति की दासी मात्र है; क्योंकि जब प्रवृत्ति ही बुद्धि की प्रेरणात्मिका शक्ति है, तब उसकी यह दासी उसी पथ पर चलने के लिए बाध्य है, जिस पर चलना उसकी स्वामिनी को अभीष्ट है।

इसका सारांश यह है कि मानव जीवन में मूलरूप से स्थित वासनाओं-इच्छाओं की प्रतिच्छाया मात्र ही विचार, विश्वास, कार्य और आचरण होते हैं। अतः प्रश्नवाक्य की धारा से मानव-जीवन के तह में रहनेवाली प्रवृत्तियों का अति घनिष्ट सम्बन्ध होता है; क्योंकि मानव प्रवृत्ति ही वासना पूर्ण करने के लिए प्रेरणात्मक बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर ज्ञानधारा को प्रवाहित करती रहती है। इस अविरल धारा का अनवच्छिन्न अंश प्रश्नवाक्य होता है, जिसका एक छोर प्रवृत्ति से सम्बद्ध रहता है। अतः प्रश्नवाक्य के विश्लेषण रूप धक्के से हृदयस्थ कुछ प्रवृत्तियों का उद्घाटन हो जाता है। इसलिए तीनों प्रकार की योनियों द्वारा मानसिक चिन्ता का ज्ञान करना विज्ञान-सम्मत है।

चोरी की गयी वस्तु के सम्बन्ध में विशेष विचार—चोरी की गयी वस्तु के सम्बन्ध में योनिविचार के अतिरिक्त निम्न विचार करना अत्यावश्यक है। यदि प्रश्नलग्न में स्थिर राशि हो या स्थिर राशि का नवांश हो तो अपने ही व्यक्ति ने वस्तु चुरायी है और वह घर के भीतर ही है, प्रश्नलग्न में चर राशि हो अथवा चर राशिका नवांश हो तो दूसरे किसी ने वस्तु चुरायी है तथा वह उस वस्तु को लेकर दूर चला गया है। यदि प्रश्नलग्न में द्विस्वभाव राशि हो या कि द्विस्वभाव राशि का नवांश हो तो अपने घर के निकटवर्ती मनुष्य ने द्रव्य चुराया है और उसने उस द्रव्य को बहुत दूर नहीं, किन्तु पास में ही छिपाकर रख दिया है। यदि प्रश्नलग्न में चन्द्रमा हो तो पूर्व दिशा की ओर, चौथे स्थान में चन्द्रमा हो तो उत्तर दिशा की ओर, सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो पश्चिम दिशा की ओर और दशम स्थान में चन्द्रमा हो तो दक्षिण दिशा की ओर चोरी की गयी वस्तु को समझना चाहिए। यदि लग्न स्थानपर सूर्य और चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय ही अपने घर का मनुष्य चोर होता है। यदि प्रश्नलग्न स्वामी और सप्तम भाव का स्वामी लग्न में स्थित हों तो निश्चय ही अपने कुटुम्ब के मनुष्य को चोर और सप्तम भाव का स्वामी सप्तम, तृतीय या बारहवें भाव में स्थित हो तो प्रबन्धकर्ता, मैनेजर आदि को चोर समझना चाहिए। यदि प्रश्नकर्ता अपने हाथों को कपड़ों के भीतर रखकर पाकिट, पतलून आदि के भीतर हाथ डालकर प्रश्न करे तो अपने घर का ही चोर और बाहर करके प्रश्न करे तो अन्य मनुष्य को चोर बतलाना चाहिए।

ज्योतिषी को लग्न के नवांशपर-से खोयी वस्तु का स्वरूप, द्रेष्काणपर-से चोर का स्वरूप, राशि पर-से दिशा, देश एवं कालादि का विचार और नवांश से जाति, अवस्था आदि का विचार करना चाहिए। यदि प्रश्नलग्न सिंह हो और उसमें सूर्य और चन्द्रमा स्थित हों तथा भौम और शनि की दृष्टि हो तो अन्धा चोर, चन्द्रमा बारहवें स्थान में हो तो बायें नेत्र से काना चोर ओर सूर्य बारहवें भाव में स्थित हो तो, दक्षिण नेत्र से काना चोर होता है।

यदि धन स्थान में शुक्र, व्यय स्थान में गुरु और लग्न स्थान में शुभ ग्रह हों तो चोरी गयी वस्तु पन्द्रह दिन के भीतर मिलेगी। लग्न में चन्द्रमा स्थित हो और लग्न राशि की दिशा में सूर्य स्थित हो तो लग्नेश की दिशा में चोरी की गयी वस्तु मिलती है। शीर्षोदय लग्न में पूर्ण चन्द्र अथवा शुभग्रह स्थित हों और लग्न स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो अथवा लाभ स्थान में बलवान शुभ ग्रह स्थित हों तो चोरी की गयी वस्तु की शीघ्र प्राप्ति होती है। यदि लग्न से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में शुभ ग्रह हों, प्रथम तृतीय और छठे स्थान में पाप ग्रह हों तो चोरी गयी वस्तु या खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति होती है। लग्न में पूर्ण चन्द्र हो और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो अथवा केन्द्र और उपचय स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। लग्न में पूर्ण चन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध इन ग्रहों में से कोई एक या दो ग्रह हों अथवा सप्तम स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी चोरी गयी अथवा खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। प्रश्न लग्न या चतुर्थ स्थान से दूसरे और तीसरे स्थान में शुभग्रह हों तो भी नष्ट हुआ द्रव्य कुछ समय के बाद मिल जाता है। प्रश्न लग्न स्थान में पाप ग्रहों की राशि हो और लग्न स्थान पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो भी खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति दस-पन्द्रह दिन के बाद हो जाती है। यदि प्रश्न समय सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन तीन राशियों में-से कोई भी राशि स्वनवांश युक्त सप्तम स्थान में हो और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो चोरी की गयी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है अथवा आठवें स्थान में बलवान मंगल हो तो भी खोयी हुई वस्तु नहीं मिलती है। यदि लग्न स्थान को बलवान सूर्य का मंगल देखते हों तो चोरी की गयी वस्तु ऊपर; बुध या शुक्र देखते हों तो भित्ति (दीवाल) आदि में खोदे हुए स्थान में; बृहस्पति या चन्द्रमा देखते हों तो समान भूमि में; शनि या राहु बलवान होकर लग्न को देखते हों तो भूमि में गड्ढे के अन्दर एवं बलवान रवि देखता हो तो छत के ऊपर खोयी हुई वस्तु की स्थिति समझनी चाहिए। शुक्र या चन्द्रमा लग्न में स्थित हों या लग्न को देखते हों तो नष्ट वस्तु जल में; बृहस्पति देखता हो तो देवस्थान में; रवि देखता हो तो पशुस्थान में; बुध देखता हो तो ईंटों के स्थान में; मंगल देखता हो तो राख के भीतर एवं शनि और राहु देखते हों तो घर के बाहर या वृक्ष के नीचे खोयी हुई वस्तु को जानना चाहिए।

चोर का नाम जानने की रीति—यदि प्रश्नलग्न चर हो तो चोर के नाम का पहला वर्ण संयुक्ताक्षर अर्थात् द्वारिका, व्रजरत्न आदि; स्थिर लग्न हो तो कृदन्त, तद्धित (पद संज्ञक) वर्ण अर्थात् भवानीशंकर, मंगल सेन इत्यादि और द्विस्वभाव लग्न हो तो स्वर वर्ण वाला नाम अर्थात् ईश्वरदास, ऋषभचन्द्र इत्यादि समझना चाहिए।

मूक प्रश्न विचार

आलिंगियम्मि जीवं मूलं अभिधूमितेसु वग्गेसु।
[1]दलिह [2]भणहडाउये तस्सारसण्णा सा झरणी ॥

---

१. सुदलिह—क. मू.।
२. भण्णदि—ता. मू.।

अर्थ—आलिंगित वर्ण जीवसंज्ञक; अभिधूमित मूलसंज्ञक और दग्ध वर्ण धातुसंज्ञक होते हैं। प्रश्नाक्षरों में जिस प्रकार के वर्णों की अधिकता रहती है; उसी संज्ञक प्रश्न ज्ञात करना चाहिए।

विवेचन—जब कोई व्यक्ति आकर प्रश्न करता है कि मेरे मन में कौन-सा विचार है? उस समय पहले की प्रक्रिया के अनुसार फल; पुष्प और देवता आदि के नाम पूछकर प्रश्नाक्षर ग्रहण कर लेने चाहिए। यदि प्रश्नाक्षरों में आलिंगित वर्ण अधिक हों तो जीव सम्बन्धी प्रश्न; अभिधूमित वर्ण हों तो मूल सम्बन्धी प्रश्न एवं दग्ध वर्ण अधिक हों तो धातु सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिए।

ग्रन्थान्तरों में प्रश्नवाक्य की प्रथम मात्रा से ही जीव, मूल और धातु सम्बन्धी विचार किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर उपर्युक्त गाथावाली—वर्णाधिक वाली प्रक्रिया विशेष वैज्ञानिक जँचती है।

मूल प्रश्न करते सम पृच्छक की ऊर्ध्व[1] दृष्टि हो तो जीवन-सम्बन्धी विचार, भूमि की ओर दृष्टि हो तो मूल सम्बन्धी विचार, तिरछी दृष्टि हो तो धातु सम्बन्धी विचार एंव मिश्र दृष्टि—कुछ भूमि की ओर और कुछ आकाश की ओर दृष्टि हो तो मिश्र—जीव, धातु और मूल सम्बन्धी मिश्रित विचार पृच्छक के मन में समझना चाहिए।

यदि पृच्छक बाहु[2], मुख और सिर का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो जीव सम्बन्धी विचार; उदर, हृदय और कटि का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो धातु सम्बन्धी एवं वस्ति, गुह्य, जंघा और चरण का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो मूल सम्बन्धी विचार पृच्छक के मन में समझना चाहिए। ऊर्ध्व स्थित होकर प्रश्न करे तो जीव चिन्ता, सामने होकर प्रश्न करे तो मूल चिन्ता और नीचे स्थित होकर प्रश्न करे तो धातु चिन्ता कहनी चाहिए। यदि प्रश्न के समय पृच्छक जल के पास हो तो जीवचिन्ता, अन्न के पास हो तो मूलचिन्ता और अग्नि के समीप हो तो धातुचिन्ता कहनी चाहिए। पृच्छक पूर्व, पश्चिम, आग्नेय कोणों में स्थित होकर प्रश्न करे तो धातु-सम्बन्धी विचार; उत्तर, दक्षिण और ईशान[3] कोण में स्थित होकर प्रश्न करे तो जीवचिन्ता एवं वायव्य और नैर्ऋत्यकोण[4] में स्थित होकर प्रश्न करे तो मूल चिन्ता पृच्छक के मन में समझनी चाहिए।

मुष्टिका प्रश्न विचार—जब यह पूछा जाए कि मुट्ठी में किस रंग की चीज है? तो पृच्छक के प्रश्नाक्षर लिख देना चाहिए। यदि प्रश्नाक्षरों में पहले के दो स्वर आलिंगित हों और तृतीय स्वर अभिधूमित हो तो मुट्ठी में श्वेत रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर अभिधूमित हों और तृतीय स्वर दग्ध हो तो पीले रंग की वस्तु; पूर्व के दो स्वर दग्ध और तृतीय आलिंगित हो तो रक्त-श्याम वर्ण की वस्तु; प्रथम दग्ध, द्वितीय आलिंगित और तृतीय अभिधूमित हो

---

१. के. प्र. र. पृ. ४५।
२. के प्र. र. पृ. ४५।
३. के. प्र. र. पृ. ४६।
४. के. प्र. र. पृ. ४६-४८।

तो श्याम-श्वेत वर्ण की वस्तु; प्रथम आलिंगित, द्वितीय दग्ध और तृतीय अधिभूमित हो तो काले रंग की वस्तु एवं प्रथम दग्ध, द्वितीय अभिधूमित और तृतीय आलिंगित स्वर हो तो हरे रंग की वस्तु मुट्ठी में समझनी चाहिए। यदि प्रश्नाक्षरों में पृच्छक का प्रथम स्वर अभिधूमित, द्वितीय आलिंगित और तृतीय दग्ध हो तो विचित्र वर्ण की वस्तु, तीनों स्वर आलिंगित हों तो शृंग वर्ण की वस्तु, तीनों दग्ध हों तो नील वर्ण की वस्तु एवं तीनों अभिधूमित स्वर हों तो कांचन वर्ण की वस्तु समझनी चाहिए।

मुष्टिका प्रश्न में जीव, धातु और मूल सम्बन्ध का द्योतक चक्र

जीव	मूल	धातु
तिर्यक् दृष्टि	ऊर्ध्व दृष्टि	भूमि दृष्टि
उदर, हृदय, कटि स्पर्श	बाहु, मुख, सिरस्पर्श	वस्ति, गुदा, जंघा स्पर्श
अधःस्थान में स्थित	ऊर्ध्व स्थान में स्थित	सम्मुख स्थित
अग्नि पास में	जल पास में	अन्न पास में
पूर्व, पश्चिम, अग्नि कोण से प्रश्न	उत्तर, दक्षिण, ईशान कोण से प्रश्न	वायव्य व नैर्ऋत कोण से प्रश्न

विशेष—चम्पा, गुलाब, नारियल, आम, जामुन आदि प्रसिद्ध प्रश्नवाक्यों का उच्चारण प्रायः सदा सभी पृच्छक करते हैं। अतएव पृच्छक से इन प्रसिद्ध फल, पुष्पादि के नामों को छोड़ अन्य प्रश्नवाक्य कहलाकर ग्रहण करना चाहिए। अथवा पृच्छक आते ही जिस वाक्य से बातचीत आरम्भ करे उसे ही प्रश्नवाक्य मानकर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। प्रश्नफल प्रतिपादन में सबसे बड़ी विशेषता प्रश्नवाक्य की है। अतः फल प्रतिपादक को प्रश्नवाक्य सावधानी और चतुराई पूर्वक ग्रहण करना चाहिए। पूर्वोक्त प्रक्रिया से जीव, मूल और धातु के भेद-प्रभेदों का विशेष विचार कर फल अवगत करना चाहिए।

आलिंगितादि मात्राओं का निवास

आलिंगएसु सग्गे[1] मत्ता अभिधूमिएसु[2] दड्ढेसु[3]।
ण पुलया[4] एवं खु सारणा वायरणे?॥

---

१. सग्गं—क. मू.।
२. अभिधूमितेसु—क. मू.।
३. माहीसु—ता. मू.। दंडेसु—क. मू.।
४. पुढविया क. मू.।

अर्थ—आलिंगित मात्राओं का स्वर्ग में, अभिधूमित का पृथ्वी पर और दग्ध मात्राओं का पाताल लोक में निवास रहता है।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों के आदि में आलिंगित मात्राएँ हों तो उस प्रश्न का सम्बन्ध स्वर्ग से, अभिधूमित मात्राएँ हों तो पृथ्वी से और दग्धमात्राएँ हों तो पाताल लोक से समझना चाहिए। यहाँ मात्रा निवास का कथन चोरी और मूक प्रश्नों के निर्णय के लिए किया है। ज्योतिष में बताया गया है कि यदि प्रश्नाक्षरों में तृतीय, सप्तम और नवम मात्राओं में-से कोई मात्रा हो तो देव सम्बन्धी प्रश्न; प्रथम, द्वितीय और द्वादश मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न; चतुर्थ, अष्टम और दशम मात्राओं में से कोई मात्रा हो तो पक्षिसम्बन्धी प्रश्न एवं पंचम, षष्ठ और एकादश मात्राओं में-से कोई मात्रा हो तो दैत्य सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिए।

यदि देवयोनि सम्बन्धी प्रश्न हो तो प्रश्नाक्षरों के प्रारम्भ में आलिंगित मात्रा होने से देवका निवास स्वर्ग में, अभिधूमित होने से मृत्यु लोक में और दग्ध मात्रा होने से पाताल लोक में समझना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न में आलिंगित और दग्ध मात्राओं के होने पर मृत मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न और अभिधूमित मात्राओं के होने पर जीवित मानव सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिए।

आलिंगितादि मात्राओं का स्वरूप बोधक चक्र

आलिंगित	अभिधूमित	दग्ध	संज्ञा
अ इ ए ओ	आ ई ऐ औ	उ ऊ अं अः	स्वर-मात्राएँ
पुरुष	स्त्री	नपुंसक	संज्ञा
सत्त्व	रज	तम	गुण
स्वर्ग	पृथ्वी	पाताल	निवास स्थान

लाभालाभ प्रश्नविचार

प्रश्ने आलिङ्गितैर्लाभः, अभिधूमितैरल्पलाभः[1], दग्धैर्नास्ति[2] लाभः।

अर्थ—पृच्छक के प्रश्न के प्रश्नाक्षर आलिंगित हों तो लाभ, अभिधूमित हों तो अल्पलाभ और दग्ध हों तो लाभ नहीं होता है।

विवेचन—यों तो लाभालाभ प्रश्न का विचार ज्योतिष शास्त्र में अनेक दृष्टिकोणों से किया गया है, पर यहाँ आचार्य ने आलिंगितादि प्रश्नाक्षरों पर-से जो विचार किया है, उसका

१. अभिधूमितेऽल्पलाभः—क. मू.।
२. दग्धे नास्ति लाभः—क. मू.।

अभिप्राय यह है कि यदि प्रश्न के आदि में आलिंगित मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में आलिंगित मात्राओं का योग अधिक हो तो पृच्छक को लाभ; अभिधूमित संज्ञक प्रश्नाक्षरों की आदि मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में अभिधूमित मात्राओं की संख्या अधिक हो तो अल्पलाभ एवं दग्ध संज्ञक आदि मात्रा हो या समस्त प्रश्नाक्षरों में दग्ध संज्ञक मात्राओं की अधिकता हो तो लाभ का अभाव समझना चाहिए।

ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों में बताया गया है कि तीन और पाँच आलिंगित मात्राओं के होने पर स्वर्ण लाभ; सात, आठ और नौ आलिंगित मात्राओं के होने पर स्वर्ण मुद्राओं का लाभ; दो और चार आलिंगित मात्राओं के होने पर रजत मुद्राओं का लाभ एवं एक या दो आलिंगित मात्राओं के होने पर साधारण द्रव्य लाभ होता है। एक, दो और तीन अभिधूमित मात्राओं के होने से साधारण द्रव्य लाभ; चार, पाँच और छः अभिधूमित मात्राओं के साथ दो आलिंगित मात्राओं के होने से सहस्र मुद्राओं का लाभ; सात, आठ और दस अभिधूमित मात्राओं के साथ दो से अधिक आलिंगित मात्राओं के होने से आभूषण लाभ; दो और तीन अभिधूमित मात्राओं के साथ पाँच आलिंगित मात्राओं के होने से कांचन और पृथ्वी लाभ; नौ और दस से अधिक अभिधूमित मात्राओं के साथ एक या दो दग्ध मात्राओं के होने से हानि; तीन या चार अभिधूमित मात्राओं के साथ दो या तीन दग्ध मात्राओं के होने से लाभ का अभाव; तीन से अधिक आलिंगित मात्राओं के साथ एक या दो दग्ध और चार अभिधूमित मात्राओं के होने से सम्मान लाभ; पाँच आलिंगित मात्राओं के साथ दो अभिधूमित और तीन दग्ध मात्राओं के होने से पृथ्वी लाभ; चार दग्ध मात्राओं के साथ एक आलिंगित और दो अभिधूमित होने से सहस्र मुद्राओं की हानि; सात अभिधूमित मात्राओं के साथ इतनी ही आलिंगित मात्राओं के होने से अपरिमित धन लाभ तथा दग्ध मात्राओं के होने से धन हानि; चार अभिधूमित मात्राओं के साथ चार आलिंगित मात्राओं के होने से स्त्री लाभ; सात दग्ध मात्राओं के साथ एक आलिंगित और एक अभिधूमित के होने से स्त्री-हानि और धन-हानि; तीन आलिंगित मात्राओं के साथ सात अभिधूमित और दो दग्ध मात्राओं के होने से सैकड़ों रुपयों का लाभ; ग्यारह दग्ध मात्राओं के साथ पाँच अभिधूमित और चार आलिंगित हों तो अपार कष्ट के साथ धन-हानि; दस से अधिक आलिंगित मात्राओं के साथ दो दग्ध और चार से कम अभिधूमित मात्राओं के होने पर वस्त्र, धन और कांचन का लाभ एवं तीनों संज्ञकों की मात्राओं की संख्या समान हो तो साधारण लाभ कहना चाहिए।

यों तो लाभालाभ निकालने के अनेक नियम हैं, पर आलिंगितादि मात्राओं के लिए गणित के निम्न नियम अधिक प्रचलित हैं–

१. आलिंगित मात्राओं को दग्ध मात्राओं की संख्या से गुणाकर अभिधूमित मात्राओं की संख्या का भाग देने पर सम शेष में लाभ और विषम शेष में हानि समझना चाहिए। यदि इस गणित प्रक्रिया में शून्य लब्धि और विषम शेष आया हो तो महाहानि तथा शून्य शेष और शून्य लब्धि हो तो अपार कष्ट समझना चाहिए।

२. प्रश्नाक्षरों में आलिंगितादि संज्ञाओं में जिस संज्ञा की मात्राएँ अधिक हों, उन्हें सात

से गुणाकर २२ का भाग देने पर सम शेष में लाभ और विषम शेष में लाभ का भाव समझना चाहिए।

३. जिस संज्ञक अधिक मात्राएँ हों, उन्हें तीन स्थानों में रखकर एक जगह आठ से, दूसरी जगह चौदह से और तीसरी जगह चौबीस से गुणा कर तीनों गुणनफल राशियों में सात का भाग देना चाहिए। यदि तीनों स्थानों में सम शेष बचे तो अपरिमित लाभ; दो स्थानों में सम शेष बचे तो शक्ति प्रमाण लाभ और एक स्थान में सम शेष बचे तो साधारण लाभ होता है। तीनों स्थानों में विषम शेष रहने से निश्चित हानि होती है।

द्रव्याक्षरों की संज्ञाएँ

दो बट्टा दो दीहा दो तत्ताहा दो य चउरस्स।
दो तिक्कायच्छिय दो वक्कक्खरा भणिया ॥

अर्थ—दो अक्षर वृत्ताकार, दो दीर्घाकार, दो त्रिकोणाकार, दो चौकोर और दो सच्छिद्र कहे गये हैं।

विवेचन—चोरी गयी वस्तु के स्वरूप विवेचन के लिए तथा प्रश्नों के उत्तर के लिए यहाँ आचार्य ने स्वरों का आकार-प्रकार बताया है। बारह स्वरों में दो स्वर वृत्ताकार, दो दीर्घाकार, दो त्रिकोण, दो चौकोर, दो छिद्राकार और दो वक्राकार हैं। आगे नाम सहित वर्णन किया जाता है—

स्वर और व्यंजनों की संज्ञाएँ और उनके फल

अ इ वृत्तौ, आ ई दीर्घौ, उ ए त्र्यस्त्रौ, ऊ ऐ चतुरस्त्रौ, ओ अं सच्छिद्रौ, औ अः [1]वृत्ताक्षरौ। अ ए क च ट त प य शाः वर्तुलाः, स्निग्धकराः लाभकराः—लाभा[2]: जीविता[3]र्थेषु गौरवर्णाः, दिवसचराः, गर्भे पुत्रकराः पूर्वाशावासिनः सच्छिद्राः। ऐ ख छ ठ थ फ र षाः दीर्घाः स्त्रि[4]योऽलाभकराः, अच्छिद्राः, रात्रिचराः, गर्भे [5]पुत्रिकराः, शक्तियुक्ताः, पक्षाक्षराः, प्रथमवयसि दक्षिणदिग्वासिनः कृष्ण[6]वर्णाः।

अर्थ—अ इ ये दो स्वर वृत्ताकार—गोल; आ ई ये दो स्वर दीर्घाकार—लम्बे; उ ए ये दो स्वर तिस्राकार—त्रिकोण; ऊ ऐ ये दो स्वर आयताकार—चौकोर; ओ अं ये दो स्वर छिद्राकार—छेद सहित और औ अः ये दो स्वर वक्राकार—टेढ़े आकार के हैं। अ ए क च

---

१. वक्राक्षरी—ता. मू.।
२. बालाः—ता. मू.।
३. जीवितार्थाः—क. मू.।
४. स्त्रीणाम्—क. मू.।
५. गर्भे बहुपुत्रिकराः—क. मू.।
६. चन्द्रोन्मीलनप्रश्नशास्त्रस्य ४९ तमश्लोकमादाय ५३ तमश्लोकपर्यन्तं—वर्णस्वरूपं द्रष्टव्यम्।

ट त प य श ये वर्ण गोलाकार, स्निग्धस्वरूप और लाभ करनेवाले हैं। तथा ये वर्ण जीवित रहने के इच्छुक, गौरवर्ण, दिवसचर, गर्भ में पुत्र उत्पन्न करनेवाले, पूर्व दिशा के वासी और सच्छिद्र हैं। ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण लम्बे, स्त्री की हानि करनेवाले, अछिद्र, रात्रि में विहार करनेवाले और गर्भ में कन्याएँ उत्पन्न करनेवाले हैं। ये शक्तिशाली, पक्षाक्षर, प्रथम अवस्था में दक्षिण दिग्वासी और कृष्णवर्ण हैं।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में प्रश्नशास्त्र के महत्त्वपूर्ण रहस्य का बहु भाग बतला दिया है। तात्पर्य यह है कि जब प्रश्नाक्षर अ ए क च ट त प य श हों अर्थात् वर्ग का प्रथम अक्षर अथवा आचार्य प्रतिपादित पाँच वर्गों में से पहले वर्ग के अक्षर प्रश्नाक्षरों के आदि वर्ण हों तो चोरी के प्रश्न में गौर वर्ण का नाटा व्यक्ति पूर्व दिशा की ओर का रहनेवाला चोर समझना चाहिए। जब सन्तान के सम्बन्ध में प्रश्न किया हो और उपर्युक्त वर्ण में कोई प्रश्न का आद्य वर्ण हो तो गौर वर्ण का सुन्दर स्वस्थ पुत्र होता है। विवाह—स्त्री लाभ के सम्बन्ध में जब प्रश्न हो और प्रश्नाक्षरों की उपर्युक्त स्थिति हो तो नाटे कद की सुन्दर गौर वर्ण की भार्या जल्द मिलती है। यद्यपि ये वर्ण सच्छिद्र हैं, इससे विवाह होने में अनेक प्रकार की बाधाएँ आती हैं, पर दिवाबली होने के कारण सफलता मिल जाती है। धन-लाभ और मुकद्दमा-विजय के सम्बन्ध में प्रश्न किया हो और प्रश्नाक्षरों की स्थिति उपर्युक्त हो तो पूर्व की ओर से धनलाभ होता है; यों तो प्रारम्भ में धनहानि भी दिखाई पड़ती है, पर अन्त में धनलाभ होता है। मुकद्दमा के प्रश्न में बहुत प्रयत्न करने पर विजय की आशा कहनी चाहिए। यदि रोगी की रोगनिवृत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न की उपर्युक्त स्थिति हो तो वैद्य के इलाज के द्वारा रोगी थोड़े दिनों में आरोग्य प्राप्त करता है।

जब प्रश्नाक्षरों के आदि वर्ण ऐ ख छ ठ थ फ र ष हों तो चोरी के प्रश्न में चोर लम्बे कद का, कृष्ण वर्ण, दक्षिण दिशा का रहनेवाला और चोरी के काम में पक्का होशियार समझना चाहिए। ऐसे प्रश्नाक्षरों में चोरी गयी चीज मिलती नहीं है, चोरी गयी चीज की दिशा दक्षिण कहनी चाहिए। गर्भ के होने पर लड़का या लड़की कौन सन्तान उत्पन्न होगी? ऐसे प्रश्न में जब प्रश्नाक्षरों की उपर्युक्त स्थिति हो तो लम्बी, स्वस्थ और काले रंग की लड़की उत्पन्न होने का फल कहना चाहिए। विवाह के प्रश्न में उपर्युक्त स्थिति होने पर विवाह नहीं होता है। वाग्दान—सगाई हो जाने के बाद सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। धनलाभ के प्रश्न में उक्त स्थिति होने पर प्रारम्भ में धनलाभ और अन्त में धनहानि कहनी चाहिए। मुकद्दमा-विजय के प्रश्न में उपर्युक्त स्थिति के होने पर थोड़ा प्रयत्न करने पर भी अवश्य विजय मिलती है। यद्यपि प्रारम्भ में ऐसा मालूम पड़ता है कि इसमें सफलता नहीं मिलेगी; लेकिन अन्ततोगत्वा विजयलक्ष्मी की ही प्राप्ति होती है।

इ ओ ग ज ड द[1] ब ल साः त्रिकोणाः, हरिताः, दिवसाक्षराः, युवानः, नागोरगाः, पुत्रकराः, पश्चिमदिग्वासिनः। ई औ घ झ ढ ध भ हाः चतुरस्राः, मध्यच्छिद्राः, मासाक्षराः, यौवनघ्नाः, गौरश्यामाः, उत्तरदिग्वासिनः। उ ऊ ङ ञ ण न माः अं अः एते

---

१. द्रष्टव्यम्—के. प्र. र. पृ. ८। बृहज्ज्योतिषार्णव, अ. ५।

शुक्ल-पीता[1]:, आरोहणाक्षराः[2], संवत्सराक्षराः,[3] अलाभकराः, सर्वदिशः दर्शका[4] भवन्ति।

अर्थ—इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण त्रिकोण—तिकोने, हरे रंग के, दिवसाक्षर दिनबली अर्थात् उसी दिन में फल देने वाले, युवक संज्ञक, नागोरग जाति के, गर्भ के प्रश्न में पुत्र उत्पन्न करनेवाले और पश्चिम दिशा में निवास करनेवाले हैं। ई और घ झ ढ ध भ ह ये वर्ण चौकोर, मध्यम में छिद्रवाले, मासाक्षर—मासबली अर्थात् मास के मध्य में फल देनेवाले, यौवन को नष्ट करनेवाले, गौर-श्यामवर्ण—गेहुआँ रंग और उत्तर दिशा में निवास करनेवाले हैं। उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः ये वर्ण शुक्ल-पीतवर्ण, आरोहणाक्षर—ऊपर वृद्धिगत होनेवाले, संवत्सराक्षर—संवृत्त में बली अर्थात् एक वर्ष में फल देनेवाले, लाभ नहीं करनेवाले और सभी दिशाओं को देखनेवाले होते हैं।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों के आद्य वर्ण इ ओ ग ज ड द ब ल स हों तो चोरी के प्रश्न में चोर युवक; काले रंग का, मध्यम कद वाला और पश्चिम दिशा का निवासी होता है। उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर चोरी गयी वस्तु की प्राप्ति एक दिन के बाद होती है तथा चोरी की वस्तु जमीन के भीतर गड़ी समझनी चाहिए। सन्तान प्रश्न में जब उपर्युक्त वर्ण प्रश्न के आद्य वर्ण हों या समस्त प्रश्नाक्षरों में उपर्युक्त वर्णों की अधिकता हो तो सन्तान लाभ समझना चाहिए। गर्भस्थ कौन-सी सन्तान है? यह ज्ञात करने के लिए उक्त प्रश्न स्थिति में पुत्रलाभ कहना चाहिए। जिस व्यक्ति की उम्र ३० वर्ष से अधिक हो गयी है, यदि ऐसा व्यक्ति सन्तान प्राप्ति के लिए प्रश्न करता है, तो उपर्युक्त प्रश्न स्थिति में निश्चय सन्तान प्राप्ति का फल कहना चाहिए। धनलाभ के प्रश्न में जब आद्य प्रश्नाक्षर इ ओ ग ज ड द ब ल स हो, या समस्त प्रश्नाक्षरों में इन वर्णों की अधिकता हो तो अल्पलाभ कहना चाहिए। यदि समस्त प्रश्नाक्षरों में तृतीय वर्ग के पाँच या सात वर्ण हों तो निश्चित धनलाभ और दो-तीन वर्णों के होने पर धनहानि कहनी चाहिए। मतान्तर में कहा गया है कि जब प्रश्नाक्षरों के आद्य अक्षर इ ओ ब ल स हों तो शारीरिक कष्ट और सन्तानमरण होता है। मुकद्दमा-विजय के प्रश्न में जब प्रश्नाक्षर उपर्युक्त हों तो विजय में सन्देह समझना चाहिए। ग ज द ये वर्ण यदि प्रश्नाक्षरों के आदि में हों तो निश्चित रूप से मुकद्दमा में हार कहनी चाहिए। रोग-निवृत्ति के प्रश्न में जब इ ओ ड प्रश्नाक्षरों के आद्य वर्ण हों तो रोगी की मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट एवं ल स ज आद्य वर्ण हों तो बहुत समय के बाद प्रयत्न करने पर रोगनिवृत्ति कहनी चाहिए।

यदि प्रश्नाक्षरों के आद्य वर्ण चतुर्थ वर्ग के—ई औ घ झ ढ ध भ व ह हों या प्रश्नाक्षरों में इन वर्णों की अधिकता हो तो चोरी के प्रश्न में वृद्ध, गेहुआँ वर्ण वाला, उत्तर दिशा का निवासी एवं लम्बे कद का व्यक्ति चोर कहना चाहिए। उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर चोरी

---

१. शुकाः, पीताः—क. मू.।

२. अरुणाक्षराः—क. मू.।

३. गौरः श्यामः कृष्णसंवत्साराक्षराः—क. मू.।

४. दर्शितः—क. मू.।

गयी वस्तु एक महीने के भीतर प्रयत्न करने से मिल जाती है। तथा चोरी गयी वस्तु की स्थिति बक्स या तिजोरी में बतलाना चाहिए। यदि पशुचोरी का प्रश्न हो तो जंगल में उस पशु का निवास कहना चाहिए। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि चोरी गया हुआ पशु थोड़े दिनों के बाद अपने-आप ही आ जाएगा। ऐसा फल कहना चाहिए। इसका कारण यह है कि तृतीय वर्ग के वर्ण नागोरग जाति के हैं, अतः उनका फल चौपायों की चोरी का अभाव है। सन्तान प्रश्न में जब आद्य प्रश्नाक्षर चतुर्थ वर्ग के हों तो सन्तान प्राप्ति का अभाव कहना चाहिए। यदि आद्य प्रश्नाक्षर झ ढ हों तो गर्भ का विनाश; भ व ई हों तो कन्या प्राप्ति और ह व प्रश्नाक्षरों के होने पर पुत्र-लाभ, किन्तु उसका तत्काल मरण फल कहना चाहिए। धनलाभ के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर चतुर्थ वर्ग के अक्षर हों या समस्त प्रश्नाक्षरों में चतुर्थ वर्ग के अक्षरों की अधिकता हो तो साधारण लाभ; घ भ व आद्य प्रश्नाक्षर हो तों अल्पलाभ, सम्मान प्राप्ति एवं यशोलाभ; झ औ ह आद्य प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नाक्षरों में इन वर्णों की अधिकता हो तो धनहानि, अपमान और पदच्युति आदि अनिष्टकारी फल कहना चाहिए। जय-विजय के प्रश्न में चतुर्थ वर्ग के आद्य प्रश्नाक्षरों के होने पर विजय लाभ; समस्त प्रश्नाक्षरों में चतुर्थ वर्ग के पाँच अक्षरों के होने पर ससम्मान विजयलाभ; तीन या सात अक्षरों के होने पर विजय और छह, आठ और दस अक्षरों के होने पर पराजय कहनी चाहिए। यदि आद्य प्रश्नाक्षर झ ढ औ ह हों तो निश्चय पराजय; भ व ई हों तो जय और घ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो सन्धि फल कहना चाहिए।

यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण पंचम वर्ग का अक्षर हो तथा समस्त प्रश्नाक्षरों में पंचम वर्ग के अक्षरों की अधिकता हो तो चोरी के प्रश्नों में चोरी गया द्रव्य एक वर्ष के भीतर अवश्य मिल जाता है तथा चोर का सम्यक् पता भी लग जाता है। जब ङ ञ न आद्य प्रश्नाक्षर होते हैं, उस समय चोरी की वस्तु का पता एक माह में लग जाता है, लेकिन जब ण ञ ऊ प्रश्नाक्षर होते हैं, उस समय चोरी गयी वस्तु का पता नहीं लगता है। हाँ, कुछ वर्षों के पश्चात् उस वस्तु के सम्बन्ध में समाचार अवश्य मिल जाता है। आलिंगितकाल में जब प्रश्नाक्षरों में पंचम वर्ग के वर्णों की अधिकता आए, तो चोरी के प्रश्न में पृच्छक के घर में ही चोरी की चीज को समझना चाहिए। अभिधूमित काल के प्रश्न में आद्यक्षर म न के होने पर चोरी की वसतु का पता शीघ्र लग जाने का फल बताना चाहिए। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि दग्ध काल में किया गया प्रश्न सदा निरर्थक या विपरीत फल देनेवाला होता है। अतः दग्ध काल में पंचम वर्ग के वर्णों के अधिक होने पर भी चोरी की गयी वस्तु का अभाव—अप्राप्ति फल ज्ञात करना चाहिए। सन्तान प्राप्ति के प्रश्न में जब आद्य वर्ण पंचम वर्ग के—उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः हों तो विलम्ब से सन्तान लाभ समझना चाहिए। यदि आलिंगित काल में सन्तान प्राप्ति का प्रश्न किया हो और आद्य प्रश्नाक्षर अ न म हों तो निश्चित रूप से पुत्र प्राप्ति; तथा आद्यक्षर उ ऊ हों तो कन्या-प्राप्ति का फल बताना चाहिए। अभिधूमित काल में यदि यही सन्तान प्राप्ति का प्रश्न किया गया हो तो जप-तप आदि शुभ कार्यों के करने पर सन्तान प्राप्ति एवं दग्ध काल में यदि प्रश्न किया हो तो सन्तान के अभाव का फल बतलाना चाहिए। लाभालाभ के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर पंचम वर्ग के वर्ण हों या

पंचम वर्ग के वर्णों की प्रश्नाक्षरों के वर्णों में संख्या अधिक हो तो लाभाभाव; यदि आलिंगित काल में प्रश्न किया गया हो और आद्य प्रश्नाक्षरों में म न ण हों तो स्वर्ण मुद्राओं का लाभ कहना चाहिए। आलिंगितकाल के प्रश्न में प्रथम वर्ग के तीन वर्ण और पंचम वर्ग के पाँच वर्ण हों तो जमीन के नीचे से धन लाभ; द्वितीय वर्ग के चार वर्ण, तृतीय वर्ग के तीन वर्ण और पंचम वर्ग के छः वर्ण हों तो स्त्रीलाभ, सम्मान प्राप्ति; प्रथम वर्ग के दो वर्ण, चतुर्थ वर्ग के सात वर्ण और पंचम वर्ग के आठ वर्ण हों तो यशोलाभ एवं चतुर्थ वर्ग के चार वर्ण और पंचम वर्ग के चार से अधिक वर्ण हों तो धन-कुटुम्ब हानि, शारीरिक कष्ट, कलह आदि अनिष्ट फल कहना चाहिए। जय-पराजय के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर उ ऊ ङ ञ ण् न म अं अः वर्ण हों तो विजय-प्राप्ति तथा समस्त प्रश्नाक्षरों में पंचम वर्ग के वर्णों की अधिकता हो तो साधारणतः विजय तथा आद्य प्रश्नाक्षर अं अः मात्रा वाले हों तो पराजय फल समझना चाहिए। रोगनिवृत्ति के प्रश्न में आलिंगित काल में पंचमवर्ग के वर्णों की संख्या प्रश्नश्रेणी में अधिक हो तो जल्द रोगनिवृत्ति; चतुर्थ वर्ग के वर्णों की संख्या अधिक हो तो विलम्ब से रोगनिवृत्ति और ण ङ आद्य प्रश्नाक्षर हों तो प्रयत्न करने पर एक वर्ष में रोगनिवृत्ति का फल बतलाना चाहिए। जब पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण पंचम वर्ग का हो तो रोगनिवृत्ति के प्रश्न में डॉक्टरी इलाज करने से जल्दी लाभ होता है। अभिधूमित काल के प्रश्न में रोग-आरोग्य विचार करने के लिए प्रत्येक वर्ग के वर्णों को प्रश्नाक्षरों में-से अलग-अलग लिख लेना चाहिए। पुनः द्वितीय वर्ग की मात्राओं की संख्या को चतुर्थ वर्ग की मात्राओं की संख्या से गुणाकर पृथक् गुणनफल को लिख लेना चाहिए। पश्चात् प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ग की व्यंजन संख्याओं को परस्पर गुणाकर गुणनफल दो स्थानों पर रखना चाहिए। प्रथम स्थान में पूर्व स्थापित गुणनफल से भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान के गुणनफल में जोड़ देना चाहिए। पश्चात् जो योगफल आए, उसमें समस्त प्रश्नाक्षरों की मात्रा संख्या से भाग देने से सम शेष में निश्चय रोगनिवृत्ति और विषम शेष में मृत्यु फल कहना चाहिए। यहाँ इतनी और विशेषता है कि समलब्धि और सम शेष में जल्दी अल्प कष्ट में ही रोगनिवृत्ति; विषम लब्धि और सम शेष में कुछ विलम्ब से बीमारी भोगने के बाद रोगनिवृत्ति; सम लब्धि और विषम शेष में अधिक कष्ट भोगने के उपरान्त रोगनिवृत्ति एवं विषम लब्धि और विषम शेष में मृत्यु-प्राप्ति कहनी चाहिए।

मास-परीक्षा विचार

अथ दिनमाससंवत्सरपरीक्षां वक्ष्यामः—तत्र अ ए क[1] (का) फाल्गुनः, च ट[2] (चटौ) चैत्रः; तपौ कार्तिकः, यशौ [3] मार्गशीर्षः, आ ऐ ख छ ठाः पौषः, थ फ र षाः माघः, इ ओ ग ज ड वैशाखः, द ब ल साः ज्येष्ठः, ई औ घ झ ढाः आषाढः, ध

---

१. अ ए कः—क. मू.।

२. चटः—क. मू.।

३. मार्गशिरः—क. मू. अग्रहायणः—क. मू.।

भ व हाः श्रावणः, उ ऊ ङ ञ भाद्रपदः, न म अं अः आश्वियुजः[1] **(युक)।**

अर्थ—दिन, मास और संवत्सर की परीक्षाको कहते हैं। इन दिनादि की परीक्षा में सर्व-प्रथम मास परीक्षा का विचार किया जाता है। यदि प्रश्नाक्षर अ ए क हों तो फाल्गुन, च ट हों तो चैत्र, त प हों तो कार्तिक, य श हों तो अगहन, आ ऐ ख छ ठ हों तो पौष, थ फ र ष हों तो माघ, इ ओ ग ज ड द हों तो वैशाख, द ब ल स हों तो ज्येष्ठ, ई औ घ झ ढ हों तो आषाढ़, ध भ व ह हों तो श्रावण, उ ऊ ङ ञ ण हों तो भाद्रपद एवं न म अं अः हों तो आश्विन-क्वार मास समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि अ ए क अक्षर फाल्गुन संज्ञक, च ट चैत्र संज्ञक, त प कार्तिक संज्ञक, य श अगहन-संज्ञक, आ ऐ ख छ ठ पौष संज्ञक, थ फ र ष माघ संज्ञक, इ ओ ग ज ड वैशाख संज्ञक, द ब ल स ज्येष्ठ संज्ञक, ई औ घ झ ढ आषाढ़ संज्ञक, ध भ व ह श्रावण संज्ञक, उ ऊ ङ ञ ण भाद्रपद संज्ञक, न म अं अः आश्विन संज्ञक हैं।

मास-संज्ञाबोधक चक्र

अर्हच्चूडामणि सारोक्त संज्ञाएँ	अक्षरों का विवरण	मास नाम
च ट	च ट	चैत्र
इ ओ ग ज ड	इ ओ ग ज ड	वैशाख
द ब ल स	द ब ल स	ज्येष्ठ
ई औ घ झ ढ	ई औ घ झ ढ	आषाढ़
ध भ व ह	ध भ व ह	श्रावण
उ ऊ ङ ञ ण	उ ऊ ङ ञ ण	भाद्रपद
न म अं अः	अनुस्वार विसर्ग न म अं अः	क्वार
त प	त प	कार्तिक
य श	य श	अगहन
आ ऐ ख छ ठ	आ ऐ ख छ ठ	पौष
थ फ र ष	थ फ र ष	माघ
अ ए क	अ ए क	फाल्गुन

विवेचन—आचार्य ने जो मास संज्ञक अक्षर बतलाये हैं, उनका उपयोग नष्ट जातक, कार्यसिद्धि, नष्ट वस्तु की प्राप्ति, पथिक आगमन, लाभालाभ, जय-पराजय एवं अन्य समयसूचक प्रश्नों के फल अवगत करने के लिए करना चाहिए। यदि पृच्छक के आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क हों या समस्त प्रश्नाक्षरों में ये तीन अक्षर हों तो कार्य सिद्धि के प्रश्न

१. "होइ चटेहि चित्ते वैसाहो होइ गजडेहिं वण्णेहिं। जिट्ठोवि दबलसेहिं ई औघझढेहिं आसाढो॥ णहु होइ दभवहेहिं सरिरिउ सरङञणेहिं भजवउए। बिंदुविसग्गा असेसय पंचमवण्णेहिं आसिण तु ॥ तहतप कत्तिकमासो कहितु पढमेहिं दोहिं वण्णेहिं। यशवण्णेहिं वि दोहि मिअसर णामो अ मासो आ॥ आईखछट्ठेहिं सोऽथ फरषवर्ण्णेहिं होइ तहा माहो। फग्गुणमासो ससिमुणि सरसहिं तहकवारेण ॥—अ. चू. सा. गा. ६९-७२।

में फाल्गुन मास में कार्य सिद्धि कहनी चाहिए। इसी प्रकार नष्ट वस्तु की प्राप्ति भी फाल्गुन मास में उक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर कहनी चाहिए।

इन मास संज्ञाओं का सबसे बड़ा उपयोग नष्ट जातक बनाने के लिए करना चाहिए। जिन लोगों की जन्मपत्री खो गयी है या जिनकी जन्मपत्री नहीं है, उनकी जन्मपत्री इस दिन, मास, संवत्सर परीक्षा पर-से बनायी जा सकती है। यों तो ज्योतिष-शास्त्र में अनेक गणित के नियम प्रचलित हैं जिन पर से जातक की जन्मपत्री बनायी जाती है। पर प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य ने केवल प्रश्नाक्षरों पर से बिना अपने गणित क्रिया के ही जन्म मास, जन्मतिथि और जन्मदिन निकाला है। यदि पृच्छक स्वस्थ मन से अपने इष्टदेव की आराधना कर प्रश्न करे तो उसके प्रश्नाक्षरों का विश्लेषण कर विचार करना चाहिए। आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क हों तो पृच्छक का जन्म फाल्गुन मास में, च ट हों तो चैत्र मास में, त प हों तो कार्तिक मास में, य श हों तो मार्गशीर्ष मास में, थ फ र ष हों तो माघ मास में, इ ओ ग ज ड हों तो वैशाख मास में, द ब ल स हों तो ज्येष्ठ मास में, ई औ घ झ ढ हों तो आषाढ़ मास में, ध भ व ह हों तो श्रावण मास में, उ ऊ ङ ञ ण न हों तो भाद्रपद में, म अनुस्वार और विसर्गयुक्त आद्य प्रश्नाक्षर हों तो क्वार मास में एवं आ ई ख छ ठ हों तो पौष मास में समझना चाहिए। परन्तु यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि प्रश्नाक्षरों को ग्रहण करते समय आलिंगितादि पूर्वोक्त समय का ऊहापोह साथ-साथ करना है, बिना समय का विचार किये प्रश्नाक्षरों का फल सम्यक् नहीं घटता है। आलिंगित और अभिधूमित समय के प्रश्न तो सार्थक निकलते हैं। लेकिन दग्ध समय के प्रश्न प्रायः निरर्थक होते हैं। अतएव दग्ध समय में नष्टजातक का विचार नहीं करना चाहिए। आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में वर्ग-विभाजन की प्रणाली पर जो संज्ञाएँ निश्चित की हैं, उनसे दग्ध समय का निषेध अर्थात् निकल आता है। यों तो नष्टजातक के मास का निर्णय करने की और भी अनेक प्रक्रिया हैं, जिनमें गणित के आधार पर से नष्ट जातक का विचार किया गया है। एक स्थान पर बताया है कि प्रश्न की आलिंगित मात्राओं को प्रश्न की दग्ध मात्राओं से गुणनफल में प्रश्न की अभिधूमित मात्राओं से गुणा कर १२ का भाग देना चाहिए। एकादि शेष में क्रमशः चैत्रादि मासों को समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि प्रश्न की

$$\frac{\text{आलिं० × अभि० × दग्ध मात्रा}}{१२} = \text{एकादि शेष मास आते हैं}$$

पक्ष का विचार

अ ए क च ट त प य शाः शुक्लपक्षः, आ ऐ ख ठ थ फ र षाः कृष्णपक्षः, इ ओ[1] ग ज ड द ब ल साः शुक्लपक्षः, चतुर्थ[2]वर्गोऽपि ई और घ झ ढ ध भ व हाः कृष्णपक्षः, पञ्चमवर्गोभयपक्षाभ्यामेकान्तरितभेदेन ज्ञातव्यः[3]।

---

१. 'ओ' इति पाठो नास्ति—क. मू.।

२. चतुर्थवर्ग : कृष्णपक्षः—क. मू.।

३. के. प्र. र. पृ.११।

अर्थ—अ ए क च ट त प य श ये वर्ण शुक्लपक्षसंज्ञक, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष ये वर्ण कृष्णपक्ष संज्ञक, इ ओ ग ज ड द ब ल स ये वर्ण शुक्लपक्ष संज्ञक, ई औ घ झ ढ भ व ह ये वर्ण कृष्णपक्ष संज्ञक और पंचम वर्ण आधा शुक्लपक्ष संज्ञक और आधा कृष्णपक्ष संज्ञक होता है। अभिप्राय यह है कि उ ऊ ङ ञ ण न म ये वर्ण शुक्ल पक्ष संज्ञक और अं अः ये वर्ण कृष्णपक्ष संज्ञक होते हैं।

आचार्य का भाव यह है कि यदि आद्य प्रश्नाक्षर या समस्त प्रश्नाक्षरों में प्रथम वर्ग के वर्ण अधिक हों—अ ए क च ट त प य श अधिक हों तो शुक्लपक्ष, द्वितीय वर्ग के वर्ण—आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष अधिक हों तो कृष्णपक्ष, तृतीय वर्ग के वर्ण—इ ओ ग ज ड द ब ल स अधिक हों तो शुक्लपक्ष, चतुर्थ वर्ग के वर्ण—ई औ घ झ ढ ध भ व ह अधिक हों तो कृष्णपक्ष, पंचमवर्ग के—उ ऊ ङ ञ ण न म ये वर्ण अधिक हों तो शुक्लपक्ष एवं पंचमवर्ग के—अं अः—अनुस्वार और विसर्ग हों तो कृष्णपक्ष समझना चाहिए।

पक्ष-संज्ञा-बोधक चक्र

केवल ज्ञान—प्रश्न चूड़ामणि का मत	अ ए क च ट त प य श	आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष	इ ओ ग ज ड द ब ल स	ई औ घ झ द ध भ व ह	उ ऊ ङ ञ ण न म	अं अः
केरल मत	अ क च ट त	आ ए ऐ ख छ ठ थ फ र ष	इ ग ज ड द ब ल स	ई औ घ झ ढ ध भ व ह	ऊ न म	प य श ओ अं अः
स्वरशास्त्र-का मत	अ ई	आ ई	उ ए	ऊ ऐ	अं ओ	औ अः
	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष	शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष

विवेचन—नष्ट वस्तु किस पक्ष में प्राप्त होगी? यह जानने के लिए कोई व्यक्ति प्रश्न करे तो आद्य प्रश्नाक्षर अ ए क च ट त प य श होने से शुक्ल पक्ष में, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष होने से कृष्ण पक्ष में, इ ओ ग ज ड द ब ल स होने से शुक्लपक्ष में, इ औ घ झ ढ ध भ व ह होने से कृष्णपक्ष में, उ ऊ ङ ञ ण न म होने से शुक्लपक्ष में और अं अः होने से कृष्णपक्ष में पृच्छक की नष्ट वस्तु की प्राप्ति कहनी चाहिए। स्वरशास्त्र का मत है कि यदि प्रश्नाक्षरों की आद्य मात्राएँ अ इ हों तो शुक्लपक्ष में, आ ई हों तो कृष्णपक्ष में, उ ए हों तो शुक्लपक्ष में, ऊ ऐ हों तो कृष्णपक्ष में, अं ओ हों तो शुक्लपक्ष में एवं औ अः हों तो कृष्णपक्ष में वस्तु की प्राप्ति समझनी चाहिए। नष्ट जन्मपत्री बनाने के लिए यदि प्रश्न हो तो प्रथम उपर्युक्त विधि से मास ज्ञात कर पक्ष का विचार करना चाहिए। यदि नष्ट जातक के प्रश्नों में प्रश्नाक्षरों की आद्य मात्रा अ इ हों तो शुक्लपक्ष का जन्म, आ ई हों तो कृष्णपक्ष का जन्म; ऊ ए हों तो शुक्लपक्ष जन्म, फ ऐ हों तो कृष्णपक्ष का

जन्म, अं ओ हों तो शुक्लपक्ष का जन्म और औ अः हों तो कृष्णपक्ष का जन्म जातक का कहना चाहिए।

१. पृच्छक के समस्त प्रश्नाक्षरों में से आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध स्वर एवं व्यंजनों को पृथक्-पृथक् कर लिख लेना चाहिए। पश्चात् आलिंगित और दग्ध वर्णों की संख्या को परस्पर गुणाकर अभिधूमित वर्ण संख्या को आगत गुणनफल में जोड़ देना चाहिए। अनन्तर उस योगफल में दो का भाग देने से एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्णपक्ष अवगत करना चाहिए।

२. प्रश्नाक्षरों में-से द्वितीय और चतुर्थ वर्ग के अक्षरों को पृथक् कर दोनों संख्याओं का परस्पर गुणा कर लेना चाहिए। पश्चात् इस गुणनफल में प्रश्नाक्षरों में रहनेवाले प्रथम और पंचम वर्ग के वर्णों की संख्या को जोड़ देना चाहिए और इस योगफल में से तृतीय वर्ग के वर्णों की संख्या को घटा देना चाहिए। पश्चात् जो शेष बचे उसमें दो का भाग देने पर एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्णपक्ष समझना चाहिए।

३. प्रश्नाक्षरों में रहनेवाली सिर्फ आलिंगित मात्राओं को तीन से गुणाकर, गुणनफल में अभिधूमित और दग्ध मात्राओं की संख्या को जोड़ देने पर जो योगफल हो, उसमें दो का भाग देने पर एक शेष में शुक्लपक्ष और शून्य या दो शेष में कृष्णपक्ष समझना चाहिए।

४. अधराक्षर प्रश्नवर्ण हों तो कृष्णपक्ष और उत्तराक्षर प्रश्नवर्ण हों तो शुक्लपक्ष ज्ञात करना चाहिए।

तिथि विचार

अथ तिथयः—अ इ ए शुक्लपक्षप्रतिपत्। क २, च ३, ट ४, त ५, प ६, य ७, श ८, ग ९, ज १०, ड ११, द १२, ब १३, ल १४, स १५ इति शुक्लपक्षः। अं पञ्चम्यादि, अः त्रयोदश्याम्, अवर्गे ग्रामं, कवर्गे ग्रामबाह्यं, चवर्गे गव्यूतिमात्रम्, टवर्गे ६, तवर्गे १२, पवर्गे[1] १५, यवर्गे ४८, शवर्गे ९६, ङ ञ ण न म वर्गे १९२। एतदेव[2] दिनमाससंवत्सराणां दृष्टप्रमाणमिति सर्वेषामेव गुणानां स एव कालो द्रष्टव्यः।

अर्थ—अब तिथिविचार कहते हैं—अ इ ए शुक्लपक्ष के प्रतिपदा संज्ञक, क वर्ण शुक्लपक्ष का द्वितीया संज्ञक, च वर्ण शुक्लपक्ष का तृतीया संज्ञक, ट वर्ण शुक्लपक्ष का चतुर्थी संज्ञक, त वर्ण शुक्लपक्ष का पंचमी संज्ञक, प वर्ण शुक्लपक्ष का षष्ठी संज्ञक य वर्ण शुक्लपक्ष का सप्तमी संज्ञक श वर्ण शुक्लपक्ष का अष्टमी संज्ञक, ग वर्ण शुक्लपक्ष का नौमी संज्ञक, ज वर्ण शुक्लपक्ष का दशमी संज्ञक, ड वर्ण शुक्लपक्ष का एकादशी संज्ञक, द वर्ण शुक्लपक्ष का द्वादशी संज्ञक, व वर्ण शुक्लपक्ष का त्रयोदशी संज्ञक, ल वर्ण शुक्लपक्ष का चतुर्दशी संज्ञक एवं स वर्ण पूर्णिमा संज्ञक है। इस प्रकार शुक्लपक्ष की तिथियों का निरूपण किया गया है।

---

१. पवर्ग २५—क. मू.।

२. तदेव—क. मू.।

अं वर्ण कृष्णपक्ष की पंचमी का बोधक और अः कृष्णपक्ष की त्रयोदशी का बोधक है। ख वर्ण कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का बोधक, छ वर्ण कृष्णपक्ष की द्वितीया का बोधक, ठ वर्ण कृष्णपक्ष की तृतीया का बोधक, फ वर्ण कृष्णपक्ष की चतुर्थी का बोधक, र वर्ण कृष्णपक्ष की षष्ठी का बोधक, ष वर्ण कृष्णपक्ष की सप्तमी का बोधक, घ वर्ण कृष्णपक्ष की अष्टमी का बोधक, झ वर्ण कृष्णपक्ष की नौमी का बोधक, ढ वर्ण कृष्णपक्ष की दशमी का बोधक, ध वर्ण कृष्णपक्ष की एकादशी का बोधक, भ वर्ण कृष्णपक्ष की द्वादशी का बोधक, व वर्ण कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का बोधक और ह वर्ण अमवास्या का बोधक है।

प्रश्नाक्षर अ वर्ग—अ आ इ ई उ ऊ हों तो गाँव में वस्तु, क वर्ग—क ख ग घ हों तो गाँव से बाहर जंगलादि में वस्तु, च वर्ग—च छ ज झ हों तो दो कोश की दूरी पर वस्तु, ट वर्ग—ट ठ ड ढ हों तो बारह कोश की दूरी पर वस्तु, त वर्ग—त थ द ध हों तो २४ कोश की दूरी पर वस्तु, प वर्ग—प फ ब भ हों तो ३० कोश की दूरी पर वस्तु, य वर्ग—य र ल व हों तो ९६ कोश की दूरी पर वस्तु, श वर्ग—श ष स ह हों तो १९२ कोश की दूरी पर वस्तु और ङ ञ ण न म हों तो ३८४ कोश की दूरी पर वस्तु समझनी चाहिए। इस प्रकार दिन, मास, संवत्सर और स्थान प्रमाण कहा है। इसे सब प्रकार के प्रश्नों में घटा लेना चाहिए।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में जो स्थान प्रमाण बतलाया है, उसका प्रयोजन चोरी की गयी वस्तु की स्थिति का पता लगाने के लिए है। चोरी के प्रश्न में जब प्रश्नाक्षर अ आ इ ई उ ऊ हों तो चोरी की वस्तु गाँव के भीतर और क ख ग घ प्रश्नाक्षर हों तो गाँव के बाहर वस्तु की स्थिति समझनी चाहिए। च छ ज झ प्रश्नाक्षरों के होने पर दो कोश की दूरी पर गाँव से बाहर, ट ठ ड ढ प्रश्नाक्षरों के होने पर १२ कोश की दूरी पर, त थ द ध प्रश्नाक्षरों के होने पर २४ कोश की दूरी पर, प फ ब भ प्रश्नाक्षरों के होने पर ३० कोश की दूरी पर, य र ल व प्रश्नाक्षरों के होने पर ९६ कोश की दूरी पर, श ष स ह के होने पर १९२ कोश की दूरी पर एवं ङ ञ ण न म प्रश्नाक्षरों के होने पर ३८४ कोश की दूरी पर वस्तु की स्थिति अवगत करनी चाहिए। परदेश में गये व्यक्ति की दूरी ज्ञात करने के प्रश्न में भी उपर्युक्त प्रश्न-विधि से विचार किया जाता है।

नष्ट जन्मपत्री बनाने के लिए केवल तिथि विचार ही उपयोगी है। जैनाचार्य ने गणित क्रिया के अवलम्बन के बिना ही इस विषय का सम्यक् प्रतिपादन किया है।

वर्णों की गव्यूति संज्ञक कथन

अ आ १; इ ई २; उ ऊ ३; ए ऐ ४; ओ औ ५; अं अः ६; यावत्तत्राक्षराणि तावद्योज्यम्। केवलिप्रश्ने दृश्यन्ते ताश्चवर्गे स्वरे ता संख्या यावदन्य[1] वर्णसंयुक्ताक्षराणि दृश्यन्ते तदेव संख्यां व्याख्यास्यामः— अ क च ट त प य शादयोऽवर्गे ग्रामम्; कवर्गे

---

१. यावत्वर्णाः—क. मू.।

ग्रामबाह्यं;: द्विगव्यूतिः;[1] चवर्गे ४ गव्यूति; टवर्गे ६ गव्यूतिः; तवर्गे १२ गव्यूतिः; पवर्गे २४ गव्यूतिः; यवर्गे ४८ गव्यूतिः, शवर्गे ९६ गव्यूतिः, ङ ञ ण न माः १०० गव्यूतिः। या गव्यूतिस्तदेव दिनमासवर्षसंख्यास्वरसंयोगेऽस्ति तथा[3] सा वर्गस्य पूर्वोक्तक्रमेण क च ट त प य शादीनां विनिर्दिशेत्।

अर्थ—अ आ इन उभय वर्णों की एक संख्या, इ, ई इन दोनों वर्णों की दो संख्या; उ ऊ इन दोनों वर्णों की तीन संख्या; ए ऐ इन दोनों वर्णों की चार संख्या, ओ औ इन दोनों वर्णों की पाँच संख्या एवं अं अः इन दोनों वर्णों की छः संख्या निर्धारित की गयी है। जहाँ जितने अक्षर हों, वहाँ उतनी संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिए। केवलज्ञान में जो स्वर संख्या और स्वर व्यंजन सयुक्त संख्या देखी गयी है; यहाँ उसी का व्याख्यान किया जाता है।

अ क च ट त प य शादि वर्गों में—अ वर्ग प्रश्नाक्षरों में गाँव में; कवर्ग में ग्राम बाह्य दो गव्यूति[4] मात्र; चवर्ग में ४ गव्यूति; टवर्ग में ६ गव्यूति; तवर्ग में १२ गव्यूति; पवर्ग में २४ गव्यूति; यवर्ग में ४८ गव्यूति; शवर्ग में ९६ गव्यूति। और ङ ञ ण न म में १०० गव्यूति समझना चाहिए। जिस वर्ग की जो गव्यूति संख्या बतलायी गयी है, वही उसकी दिन, मास, वर्ष संख्या स्वरों के संयुक्त होने पर भी मानी जाती है। तथा पहले बतायी हुई विधि से क च ट प य शादि वर्गों की संख्या का निर्देश करना चाहिए।

विवेचन—यों तो आचार्य ने पहले भी तिथियों की संज्ञाओं के साथ वर्णों की गव्यूति संख्या कही है, पर वहाँ पर उसका अभिप्राय वस्तु की दूरी निकालने का है और जो ऊपर वर्णों की गव्यूति बतायी है, उसका रहस्य दिन, मास, वर्ष संख्या निकालने का है। अभिप्राय यह है कि पहली गव्यूति-संज्ञा-द्वारा स्थान दूरी निकली गयी है और इसके द्वारा समय सम्बन्धी दूरी—कालावधि का निर्देश किया गया है। अतएव यहाँ गव्यूति शब्द का अर्थ कोश न लेकर समय की संख्या का बोधक द्विगुनी राशि लेना चाहिए। 'बृहज्ज्योतिषार्णव' के पंचम अध्याय के रत्न प्रकरण में गव्यूति शब्द सामान्य संख्या वाचक तथा जैन प्रश्नशास्त्र में दो संख्या का वाचक आया है। अतएव यहाँ पर जिस वर्ग की जितनी गव्यूति बतलायी गयी है, उसकी दूनी संख्या ग्रहण करनी चाहिए। ऊपर जो स्वरों की संख्या कही है, उसमें भी गव्यूति संख्या ही समझनी चाहिए। अतः अ = १, आ = २, इ = ३, ई = ४, उ = ५, ऊ = ६, ए = ७, ऐ = ८, ओ = ९, औ = १०, अं = ११, अः = १२ है। तात्पर्य यह है कि यदि किसी का प्रश्न यह हो कि अमुक कार्य कब पूरा होगा? तो इस प्रकार के प्रश्न में यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण अ हो तो एक दिन या एक मास अथवा एक वर्ष में; आ हो तो दो दिन या दो मास अथवा दो वर्षों में; इ हो तो तीन दिन या तीन

---

१. चवर्गेत्रिगव्यूतिः—क. मू.।

२. पवर्गे २८ गव्यूतिः—क. मू.।

३. तदा—क. मू.।

४. "गोर्यूतिः, क्रोशद्वये, क्रोशे च"—श. म. नि. पृ. १४१। "गव्यूतिः संख्या वाचकः "—बृ. ज्यो, अ. केरल प्रकरण।

मास अथवा तीन वर्षों में; ई हो तो चार दिन या चार मास अथवा चार वर्षों में; उ हो तो पाँच दिन या पाँच मास अथवा पाँच वर्षों में; ऊ हो तो छः दिन या छः मास अथवा छः वर्षों में; ए हो तो सात दिन या सात मास अथवा सात वर्षों में; ऐ हो तो आठ दिन या आठ मास अथवा आठ वर्षों में; ओ हो तो नौ दिन या नौ मास अथवा नौ वर्षों में; औ हो तो दस दिन या दस मास अथवा दस वर्षों में; अं हो तो ग्यारह दिन या ग्यारह मास अथवा ग्यारह वर्षों में एवं अः हो तो बारह दिन या बारह मास अथवा बारह वर्षों में कार्य पूरा होता है। समय-मर्यादा से सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्रश्न हैं, उन सबकी अवधि उपर्युक्त ढंग से ही ज्ञात करनी चाहिए। इसी प्रकार स्वर संयुक्त क ख ग घ—का कि की कु कू के कै को कौ कं कः; खा खि खी खु खू खे खै खो खौ खं खः; ग गा गि गी गु गू गे गै गो गौ गं गः; घ घा घि घी घु घू घे घै घो घौ घं घः;—प्रश्नाक्षरों के होने पर गाँव से बाहर चार कोश की दूरी पर पृच्छक की वस्तु एवं चार दिन या चार मास अथवा चार वर्षों के भीतर उस कार्य की सिद्धि कहनी चाहिए। च छ ज झ स्वर संयुक्त प्रश्नाक्षरों—च चा चि ची चु चू चे चै चो चौ चं चः; छ छा छि छी छू छु छे छै छो छौ छं छः; ज जा जि जी जु जू जे जै जौ जं जः; झ झा झि झी झू झु झे झै झो झौ झं झः;—के होने पर आठ दिन या आठ मास अथवा आठ वर्षों में कार्य होता है। ट ठ ड ढ स्वर संयुक्त प्रश्नाक्षरों—ट टा टि टी टु टू टे टै टो टौ टं टः; ठ ठा ठि ठी ठु ठू ठे ठै ठो ठौ ठं ठः; ड डा डि डी डु डू डे डै डो डौ डं डः; ढ ढा ढि ढी ढु ढू ढे ढै ढो ढौ ढं ढः—के होने पर बारह दिन या बारह मास अथवा बारह वर्षों में कार्य सिद्ध होता है। इसी प्रकार आगे भी स्वर-संयोग की प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए। जब नष्टजातक का प्रश्न हो, उस मास इस स्वर-व्यंजन संयुक्त प्रक्रिया पर-से जातक की गत आयु निकालनी चाहिए। पश्चात् पूर्वोक्त विधि से जन्ममास, जन्मदिन, जन्मपक्ष और जन्म संवत् जान कर आगेवाली विधिपर-से इष्ट काल और लग्न का साधन कर नष्ट जन्मपत्री बना लेनी चाहिए।

इस गव्यूति संख्यापर-से जय-पराजय का समय बड़ी आसानी से निकाला जा सकेगा, क्योंकि पृच्छक के प्रश्नाक्षरों पर-से जय-पराजय की व्यवस्था का विचार कर पुनः उपर्युक्त विधि से समय अवधि का निर्देश करना चाहिए। सुख-दुःख, रोग-नीरोग, हानि-लाभ एवं समय के शुभाशुभत्व के निरूपण के लिए भी उपर्युक्त दिन, मास और संवत्सर संख्या की व्यवस्था परमोपयोगी है। अभिप्राय यह है समस्त कार्यों की समय मर्यादा के कथन में उपर्युक्त व्यवस्था का अवलम्बन लेना चाहिए। समय सीमा का आनयन प्रश्न कुण्डली की ग्रह स्थिति पर से भी कर लेना आवश्यक है। उपर्युक्त दोनों विधियों के समन्वय से ही फलादेश कहना उपयोगी होगा।

गादि शब्दों के स्वर संयोग का विचार

अथ गादीनां स्वरसंयोगमाह—ग गा २, गि गी३, गु गू४, गे गै५, गो गौ ६, गं गः ७। अथ खादीनां स्वरसंयोगमाह—ख खा३, खि खी ४, खु खू ५, खे खै ६, खो

खौ ७, खं खः ८। घादीनां चैवमेव–घ घा४, घि घी ५, घु घू ६, घे घै ७, घो घौ ८, घं घः ९। ङ ङा ५, ङि ङी ६, ङु ङू ७, ङे ङै ८, ङो ङौ ९, ङं ङः १०। क का १, कि की २, कु कू ३, के कै ४, को कौ ५, कं कः ६। ककारादीनां[1] या संख्या डकारस्य सा संख्या। क च ट त प य शादीनां या संख्या ठकारस्य सा संख्या ज्ञेया[2]। चकारस्य छ ठ थ फ र षादीनां च या संख्या यकारस्य संयोगे घ झ ढ ध भादीनां सा संख्या। थ संयोगे जकारादीनां सा संख्या ङ ञ ण न मादीनां च या संख्या। तत्र गृहीत्वाऽधराक्षराणि[3] च द्वितीयस्थानादौ राशी निरीक्षयेत्। या यस्य संख्या निश्चिता[4] तस्मै तस्यां दिशि मध्ये विनियोजयेत्। सम्मितां द्विगुणीकृत्य [5]दशभिर्गुणयेत्। सैषा[6] काल-संख्या विनिर्दिशेत्।

अर्थ–गादि वर्णों के स्वर योग को कहते हैं–ग गा इन वर्णों की दो संख्या; गि गी इन वर्णों को तीन संख्या; गु गू इन वर्णों की चार संख्या; गे गै इन वर्णों की पाँच संख्या; गो गौ इन वर्णों की छः संख्या और गं गः इन वर्णों की सात संख्या है।

अब खादि वर्णों के स्वरसंयोग को कहते हैं–ख खा इन वर्णों की तीन संख्या खि खी इन वर्णों की चार संख्या; खु खू इन वर्णों की पाँच संख्या; खे खै इन वर्णों की छः संख्या; खो खौ इन वर्णों की सात और खं खः इन वर्णों की आठ संख्या होती है।

घादि वर्णों की संख्या का क्रम भी इस प्रकार अवगत करना चाहिए–घ घा इन वर्णों की चार संख्या; घि घी इन वर्णों की पाँच संख्या; घु घू इन वर्णों की छह संख्या; घे घै इन वर्णों की सात संख्या; घो घौ इन वर्णों की आठ संख्या एवं घं घः इन वर्णों की नौ संख्या है।

ङ ङा इन वर्णों की पाँच संख्या; ङि ङी इन वर्णों की छः संख्या, ङु ङू इन वर्णों की सात संख्या; ङे ङै इन वर्णों की आठ संख्या; ङो ङी इन वर्णों की नौ संख्या और ङं ङः इन वर्णों की दस संख्या है।

क का इन वर्णों की एक संख्या; कि की इन वर्णों की दो संख्या कु कू इन वर्णों की तीन संख्या; के कै इन वर्णों की चार संख्या; को कौ इन वर्णों की पाँच संख्या और कं कः इन वर्णों की छः संख्या है। क का, कि की आदि की जो संख्या है, ड डा, डि डी आदि की भी वही संख्या है अर्थात् ड डा इन वर्णों की एक संख्या, डि डी इन वर्णों की दो संख्या, डु डू इन वर्णों की तीन संख्या, डे डै इन वर्गों की चार संख्या, डो डौ इन वर्णों की पाँच संख्या और डं डः इन वर्णों की छः संख्या है। क च ट त प य शादि वर्णों की जो संख्या है, ठकार की वही संख्या है अर्थात् ठ ठा इन वर्णों की दो संख्या, ठि ठी इन

---

१. के कादीनां–ता. मू.।
२. ज्ञेया इति पाठो नास्ति–ता. मू.।
३. अधराक्षराः–क. मू.।
४. तस्यै-तस्य दिशि मध्ये–ता. मू.।
५. गुणयेच्च–ता. मू.।
६. एषा–ता. मू.।

वर्णों की चार संख्या, ठु ठू इन वर्णों की छः संख्या, ठे ठै इन वर्णों की बारह संख्या, ठो ठौ इन वर्णों की चौबीस संख्या और ठं ठः इन वर्णों की अड़तालीस संख्या होती है। चकार की और छ ठ थ फ र ष इन वर्णों की जो संख्या है, यकार के संयोग होने पर घ झ ढ ध भ की वही संख्या होती है। ङ ञ ण न म की जो संख्या है, थ संयुक्त जकार की वही संख्या होती है अर्थात् थ ज की संख्या १००।

प्रश्नाक्षरों को ग्रहण कर द्वितीय स्थान में राशि का निरीक्षण करना चाहिए। जिस वर्ण की जो संख्या निश्चित की गयी है, उसको उसकी दिशा में लिख देना चाहिए। समस्त संख्याओं को जोड़कर योगफल को दूना कर दस से गुणा करना चाहिए। गुणा करने से जो गुणनफल आवे वही काल संख्या समझनी चाहिए।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में समय-मर्यादा निकालने की एक निश्चित प्रक्रिया बतलायी है। इसमें प्रश्न के सभी वर्णों का उपयोग हो जाता है तथा सभी वर्णों की संख्यापर-से एक निश्चित संख्या की निष्पत्ति होती है। यदि इस प्रक्रिया के अनुसार समय-मर्यादा निकाली जाय तो निश्चित समयसंख्या दिनों में अवगत करनी चाहिए। जहाँ उलझन का सवाल हो वहाँ भले ही इस संख्या को मासों में ज्ञात करें। इस समय संख्या का उपयोग प्रायः सभी प्रकार के प्रश्नों के निर्णय में होता है। इसीलिए आचार्य ने समस्त संयुक्त-असंयुक्त वर्णों की संख्याएँ पृथक्-पृथक् निश्चित की हैं। अतएव समस्त प्रश्नाक्षरों की संख्या को एक स्थान में जोड़कर रख लेना चाहिए, पश्चात् इस योगफल को दूना कर दस से गुणा करें और गुणनफल प्रमाण समयसंख्या समझें।

किसी भी प्रश्न के समय की संख्या को ज्ञात करने का एक नियम यह भी है कि स्वर और व्यंजनों की संख्या को पृथक्-पृथक् निकालकर योग कर लें। यहाँ संख्या का क्रम निम्न प्रकार अवगत करें—अ = १, आ = २, इ = ३, ई = ४, उ = ५, ऊ = ६, ए = ७, ऐ = ८, ओ = ९, औ = १०, अं = ११, अः = १२, क = १३, ख = १४, ग = १५, घ = १६, च = १७, छ = १८, ज = १९, झ = २०, ट = २१, ठ = २२, ड = २३, ढ = २४, त = २५, थ = २६, द = २७, ध = २८, प = २९, फ = ३०, ब = ३१, भ = ३२, य = ३३, र = ३४, ल = ३५, व = ३६, श = ३७, ष = ३८, स = ३९, ह = ४०, ङ ञ ण न म = १००।

प्रश्न के स्वर और व्यंजनों की संख्या के योग में २० से गुणा करें और गुणनफल में व्यंजन संख्या का आधा जोड़ दें तो दिनात्मक समय संख्या आ जाएगी।

उदाहरण—जैसे मोहन ने अपने कार्यसिद्धि की समय-अवधि पूछी है। यहाँ मोहन से प्रश्नवाक्य पूछा तो उसने 'कैलास पर्वत' कहा। यहाँ पर मोहन के प्रश्नवाक्य में स्वर और व्यंजनों का विश्लेषण किया, तो निम्न रूप हुआ—

क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ इस विश्लेषण में क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यंजन हैं और ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वर हैं। उपर्युक्त संख्या-विधि से स्वर और व्यंजनों की संख्या निकाली तो—

१३ + ३५ + ३६ + २६ + ३६ + ३४ + २५ = २११ व्यंजन संख्या का योग।

८ + २ + १ + १ + १ + १ = १४ स्वर संख्या का योग।

२११ + १४ = २२५ योगफल; २२५ × २० = ४५०० गुणनफल।

२११ ÷ २ = १०५$\frac{१}{२}$ = व्यंजनसंख्या का आधा।

४५०० + १०५$\frac{१}{२}$ = ४६०५$\frac{१}{२}$ दिन अर्थात् १२ वर्ष ६ महीना १५ दिन के भीतर वह कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

सीधे-सादे प्रश्नों की जो जल्दी ही हल होनेवाले हों, उनकी समय संख्या निकालने के लिए स्वर और व्यंजन संख्या को परस्पर गुणा कर ३० का भाग देने पर दिनात्मक समय में-से स्वर संख्या को घटाने पर कालावधि की दिनात्मक संख्या आती है।

उदाहरण—प्रश्नवाक्य पहले का ही है। इसकी स्वर संख्या १४ और व्यंजन संख्या २११ है। इन दोनों का गुणा किया—

१४ × २११ = २६५४ ÷ ३० = ६८—१४ = ८४ दिन अर्थात् दो महीना चौबीस दिन में कार्य सिद्ध होगा। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध समय में किये गये प्रश्नों की समय संख्या निकालने की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं, जिन पर-से विभिन्न प्रश्नों की समयसंख्या विभिन्न आती है। 'बृहज्ज्योतिषार्णव' में समय संख्या निकालने की अंक विधि एक प्रश्न पर-से बतायी है। उसमें कहा गया कि पृच्छक से कोई अंक पूछकर उसमें उसी अंक का चौथाई हिस्सा जोड़कर तीन का भाग देने पर समयसंख्या निकल आती है। पर यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि यह समय सीमा छोटे-मोटे प्रश्नों के उत्तर के लिए ही उपयोगी हो सकती है, बड़े प्रश्नों के लिए नहीं।

उपर्युक्त समय सूचक प्रकरण से नष्ट जातक का इष्टकाल भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके साधन की प्रक्रिया यह है कि समस्त प्रश्नाक्षरों का उक्त विधि से जो कालमान आएगा, वह पलात्मक इष्टकाल होगा। इसमें ६० का भाग देने से घट्यात्मक होगा तथा घटी स्थान में ६० से अधिक होने पर इसमें भी ६० का भाग देने से जो शेष बचेगा, वही घट्यात्मक जन्म समय का इष्टकाल होगा। प्रथम आचार्य-द्वारा प्रतिपादित प्रक्रिया से इष्टकाल साधन का उदाहरण दिया जाता है—

प्रश्नवाक्य यहाँ भी 'कैलास पर्वत' ही है। इसकी कालसंख्या उक्त विधि से बनायी तो ४ + ४८ + ६६ + २४ + ४८ + ४८ + १२ = २८० × २ = ५६०, इसको १० से गुणा किया तो—५६० × १० = ५६०० पलात्मक इष्टकाल हुआ।

५६०० ÷ ६० = ६३ घटी २० पल। यहाँ घटी स्थान में ६० से अधिक हैं। अतः ६० का भाग देकर शेष मात्र ३३ घटी ग्रहण किया। इसलिए यहाँ इष्टकाल ३३ घटी २० पल माना जायगा।

अन्य ग्रन्थान्तरों में प्रतिपादित कालसाधन के नियमों पर-से भी इष्टकाल का साधन किया जा सकता है। पहले जो संख्यामान प्रतिपादक वर्णों-द्वारा इसी प्रश्न का ४६०५$\frac{१}{२}$ काल

मान आया है, इसी को यहाँ पलात्मक इष्टकाल मान लिया जाएगा अतः ४६०५$\frac{१}{२}$ × ६० = ७४ घटी ४५$\frac{१}{२}$ पल; घटी स्थान में पुनः ६० का भाग दिया तो ७६ ÷ ६० = १ लब्धि और शेष १६ आया, अतएव १६ घटी ४५ पल इष्टकाल माना जाएगा। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के प्रश्नाक्षरों को ग्रहण कर इस काल साधन नियम द्वारा जन्म समय का इष्टकाल लाया जा सकता है। मास, पक्ष, तिथि और इष्टकाल के ज्ञात हो जाने पर लग्न साधन के नियम द्वारा लग्न लाकर जन्मकुण्डली बना लेनी चाहिए।

ग्रह और राशियों का कथन

अष्टसु वर्गेषु राहुपर्यन्ताः[१] अष्टग्रहाः, ङ ञ ण न मेषु केतुग्रहश्च[२]। अकारादिद्वादश-मात्राः[३] स्युर्द्वादशराशयः। एकारादयस्ते च मासाः, ये च तानि लग्नानि। यान्यक्षराणि तानि नक्षत्राणि (तान्यंशानि) भवन्ति। ककारादिहकारान्तमश्विन्यादिनक्षत्राणि क्षिपेत्। ङ ञ ण न मान् वर्जयित्वा उत्तराक्षरेषु अश्विन्याद्याः,[४] अधराक्षरेषु[५] धनिष्ठाद्याः। एष्वेकान्तरितनक्षत्रं विचारयेत् अधराक्षरं संसाधयेत्। अथ राशिषूत्तराधरं उत्तराधरनक्षत्रं च[६] निर्दिशेत्। इति नष्टजातकम्।[७]

अर्थ—अष्टवर्गों में राहुपर्यन्त आठ ग्रह होते हैं और ङ ञ ण न म इन वर्णों में केतु ग्रह होता है। अकारादि १२ स्वर द्वादश राशि संज्ञक होते हैं। एकारादिक बारह महीने के वर्ण कहे गये हैं, वे ही द्वादश लग्न संज्ञक होते हैं। प्रश्न में जितने अक्षर होते हैं, उतने ही लग्न के अंश समझने चाहिए।

क अक्षरों से लेकर हकार पर्यन्त—क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ त थ द ध व फ ब भ य र ल व श ष स ह ये २८ अक्षर क्रमशः अश्विन्यादि २८ नक्षत्र संज्ञक हैं। ङ ञ ण न म इनको छोड़कर उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स की अश्विन्यादि संज्ञा और अधराक्षरों—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह की धनिष्ठादि संज्ञा होती है। यहाँ एकान्तरित रूप से नक्षत्रों का विचार कर अधराक्षरों को सिद्ध करना चाहिए। उत्तराधर राशियों में उत्तराधर नक्षत्रों का निरूपण करना चाहिए। इस प्रकार नष्टजातक की विधि अवगत करनी चाहिए।

विवेचन—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन प्रश्नाक्षरों का स्वामी सूर्य; क ख ग घ ङ इन वर्णों का चन्द्रमा; च छ ज झ ञ इन वर्णों का मंगल; ट

---

१. ग्रहान् क्षिपेत्—क. मू.।
२. केतवे—क. मू.।
३. द्वादशमात्रासु द्वादश राशयः—क. मू.।
४. अश्विन्यादौ—क. मू.।
५. धनिष्ठादौ—क. मू.।
६. वापि तस्याधराक्षराणां नक्षत्रं—क. मू.।
७. तुलना—च. ज्यो. पृ. ६३। के. प्र. र. पृ. ११३-११४।

ठ ड ढ ण इन वर्णों का बुध; त थ द ध न इन वर्णों का गुरु; प फ ब भ म इन वर्णों का शुक्र; य र ल व इन वर्णों का शनि, श ष स ह इन वर्णों का राहु और ङ ञ ण न म इन अनुनासिक वर्णों का केतु है। अ वर्ण प्रश्न का आद्यक्षर हो तो जातक की मेषराशि, आ प्रश्न का आद्यक्षर हो तो वृषराशि, इस प्रश्न का आद्यक्षर हो तो तो मिथुन राशि, ई प्रश्न का आद्यक्षर हो तो कर्क राशि, उ हो तो सिंह राशि, ऊ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो कन्या राशि, ए आद्य प्रश्नाक्षर हो तो तुला राशि, ऐ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो वृश्चिक राशि, ओ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो धन राशि औ आद्य प्रश्नाक्षर हो तो मकर राशि, अं प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो कुम्भ राशि और अः आद्य प्रश्नाक्षर हो तो मीन राशि जन्म समय की—जन्म राशि समझनी चाहिए। यहाँ जो वर्ण जिस राशि के लिए कहे गये हैं, उनकी मात्राएँ भी लेनी चाहिए। एकारादि जो मास संज्ञक अक्षर हैं, वे ही मेषादि द्वादश लग्न संज्ञक होते हैं—अ ए क इन वर्णों की मेष लग्न संज्ञा, च ट इन वर्णों की वृष लग्न संज्ञा, त प इन वर्णों की मिथुन लग्न संज्ञा, य श इन वर्णों की कर्क लग्न संज्ञा, ग ज ड इन वर्णों की तुला लग्न संज्ञा, द ब ल स इन वर्णों की वृश्चिक लग्न संज्ञा, ई औ ध झ ढ इन वर्णों की धनु लग्न संज्ञा, ध भ व ह इन वर्णों की मकर लग्न संज्ञा, उ ऊ ङ ञ ण इन वर्णों की कुम्भ लग्न संज्ञा एवं अं अः—अनुस्वार और विसर्ग की मीन लग्न संज्ञा है।

एक अनुभूत लग्नानयन का नियम यह है कि जो ग्रह जिन अक्षरों का स्वामी बताया गया है, प्रश्न के उन वर्णों में उसी ग्रह की राशि-लग्न होती है। इसका विवेचन इस प्रकार है कि अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन वर्णों का स्वामी सूर्य बताया है और सूर्य की राशि सिंह होती है, अतः उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर सिंह लग्न जातक की अवगत करनी चाहिए। इसी प्रकार क ख ग घ ङ इन वर्णों का स्वामी मतान्तर में मंगल बताया है, अतः मेष और वृश्चिक इन दोनों में से कोई लग्न समझनी चाहिए। यदि वर्ग का सम अक्षर प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो सम राशि संज्ञक लग्न और विषम प्रश्नाक्षर आद्य वर्ण हो तो विषम राशि लग्न होती है। तात्पर्य[1] यह है कि क ग ङ इन आद्य प्रश्नाक्षरों में मेष लग्न, छ झ इन आद्य प्रश्नाक्षरों में वृष लग्न, ट ड ण इन आद्य प्रश्नाक्षरों में मिथुन लग्न, य र ल व श ष स ह इन प्रश्नाक्षरों में कर्क लग्न, अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन आद्य प्रश्नाक्षरों में सिंह लग्न, ठ ढ इन वर्णों की कन्या लग्न, च ज ञ इन वर्णों की तुला लग्न, ख घ इन वर्णों की वृश्चिक लग्न, त द इन वर्णों की धनु लग्न, फ भ इन वर्णों की मकर लग्न, प ब इन वर्णों की कुम्भ लग्न एवं थ ध इन वर्णों की मीन लग्न होती है।

नष्ट जातक बनाने की व्यवस्थित विधि—सर्व प्रथम पृच्छक के प्रश्नाक्षरों को लिखकर, उसके स्वर और व्यंजन पृथक् कर अंक संख्या अलग-अलग बना लें। पश्चात् स्वर संख्या और व्यंजन संख्या का परस्पर गुणा कर उस गुणनफल में नामाक्षरों की संख्या को जोड़ दें। अनन्तर संवत्सर, मास, पक्ष, दिन, तिथि, नक्षत्र, लग्न आदि के साधन के लिए

---

१. च. ज्यो. पृ. ३४।

अपने-अपने ध्रुवांक और क्षेपक जोड़कर अपनी राशि संख्या का भाग देने पर अर्थात् संवत्सर के लिए ६० का, मास के लिए १२ का, तिथि के लिए १५ का, नक्षत्र के लिए २७ का, योग के लिए २७ का, लग्न के लिए १२ का एवं ग्रहों के आनयन के लिए ९ का भाग देना चाहिए। इस प्रकार नष्टजातक का जन्मपत्र बनाया जाता है।

स्वरवर्णांक चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः	०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०	१	२	३	४	५	६	०
थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
७	८	९	०	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७	८

संवत्सर, मास, तिथि आदि के ध्रुव-क्षेपांक

संवत्सर	मास	तिथि	वार	नक्षत्र	योग	लग्न	संज्ञाएँ
३२	८	१०	७	७	२०	२१	ध्रुवांक
१०८	५६	६०	५८	७३	५८	५७	क्षेपांक
०	५३	५३	१०६	१०६	१०६	१०६	वर्गांक

ग्रहों के ध्रुव-क्षेपांक

सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	ग्रह
३०	१३	२१	३२	२३	२४	२५	३६	ध्रुवांक
१०३	०	३३	४०	६	०	३	७७	क्षेपांक
५१	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	वर्गांक

उदाहरण—पृच्छक से प्रश्नवाक्य पूछा तो उसने 'कैलास पर्वत' कहा। इसका विश्लेषण किया तो—क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ हुआ। इस विश्लेषण में स्वर और व्यंजनों की संख्याएँ पृथक्-पृथक् ग्रहण की तो १ + ३ + ७ + १ + २ + ४ + ६ = २४ व्यंजन संख्या, १२ + २ १ + १ + १ + १ = १८ स्वर संख्या, इन स्वर और व्यंजन संख्याओं का परस्पर गुणा किया तो २४ × १८ = ४३२

प्रश्नांक हुआ। इसमें नामाक्षर जोड़ने हैं—पृच्छक का नाम मनोहरलाल है—अतः नाम वर्णों की ६ संख्या भी प्रश्नांकों में जोड़ी तो ४३२ + ६ = ४३८ पिण्डांक हुआ। इसमें जन्म संवत् निकालने के लिए संवत्सर का ध्रुवांक ३२ जोड़ा तो ४३८ + ३२ = ४७० हुआ। इसमें संवत्सर का क्षेपांक जोड़ा तो ४७० + १०८ = ५७८ पिण्ड हुआ। इसमें ६० का भाग दिया, तो ५७८ ÷ ६० = ९ लब्धि और ३८ शेष अर्थात् ३८वाँ संवत्सर क्रोधी हुआ। अतः जातक का जन्म क्रोधी संवत्सर में समझना चाहिए। संवत्सरों की गणना प्रभव से की जाती है।

संतत्सरबोधक सारणी

१ प्रभव	११ ईश्वर	२१ सर्वजित्	३१ हेमलम्ब	४१ प्लवंग	५१ पिंगल
२ विभव	१२ बहुधान्य	२२ सर्वधारी	३२ विलंबी	४२ कीलक	५२ कालयुक्त
३ शुक्ल	१३ प्रमाथी	२३ विरोधी	३३ विकारी	४३ सौम्य	५३ सिद्धार्थी
४ प्रमोद	१४ विक्रम	२४ विकृति	३४ शार्वरी	४४ साधारण	५४ रौद्र
५ प्रजापति	१५ वृष	२५ खर	३५ प्लव	४५ विरोधकृत्	५५ दुर्मति
६ अंगिरा	१६ चित्रभानु	२६ नंदन	३६ शुभकृत	४६ परिधावी	५६ दुन्दुभि
७ श्रीमुख	१७ सुभानु	२७ विजय	३७ शोभन	४७ प्रमादी	५७ रुधिरोद्गारी
८ भरण	१८ तारण	२८ जय	३८ क्रोधी	४८ आनंद	५८ रक्ताक्षी
९ युवा	१९ पार्थिव	२९ मन्मथ	३९ विश्वावसु	४९ राक्षस	५९ क्रोधन
१० धाता	२० व्यय	३० दुर्मुख	४० पराभव	५० नल	६० क्षय

पिण्डांक ४३८ में मासानयन के लिए उसका ध्रुवांक, क्षेपाक और वर्गांक जोड़ा तो ४३८ + ८ + ५६ + ५३ = ५५५ मास पिण्ड हुआ। इसमें १२ का भाग दिया तो ५५५ ÷ १२ = ४६ लब्धि, ३ शेष रहा है। मासों की गणना मार्गशीर्ष से ली जाती है। अतः गणना करने पर तीसरा मास माघ हुआ। इसलिए जातक का जन्म माघ मास में हुआ कहना चाहिए।

पक्ष विचार के लिए यदि प्रश्नाक्षरों में समय संख्यक मात्राएँ हों तो शुक्लपक्ष और विषमसंख्यक मात्राएं हों तो कृष्ण पक्ष समझना चाहिए। प्रस्तुत उदाहरण में ६ मात्राएँ हैं, अतः समयंख्यक मात्राएँ होने के कारण शुक्लपक्ष का जन्म माना जाएगा।

तिथ्यानयन के लिए पिण्डांक ४३८ में तिथि के ध्रुवांक, क्षेपांक और वर्गांक जोड़े तो ४३८ + १० + ६० + ५३ = ५६१ पिण्ड हुआ, इसमें १५ का भाग दिया तो ५६१ ÷ १५ = ३७ लब्धि, ६ शेष, यहाँ प्रतिपदा से गणना की तो षष्ठी तिथि आयी।

नक्षत्रानयन के पिण्डांक में नक्षत्र के ध्रुवांक, क्षेपांक, वर्गांक जोड़े तो ४३८ + ७ + ७३ + १०६ = ६२४ पिण्ड, ६२४ ÷ २७ = २३ लब्धि, ३ शेष, कृत्तिकादिसे नक्षत्र गणना की तो ३री संख्या मृगशिर नक्षत्र की आयी, अतः मृगशिर जन्मनक्षत्र हुआ।

नक्षत्रनामावली

१. कृत्तिका	८. मघा	१५. अनुराधा	२२. शतभिषा
२. रोहिणी	९. पूर्वाफाल्गुनी	१६. ज्येष्ठा	२३. पूर्वाभाद्रपद
३. मृगशिरा	१०. उत्तराफाल्गुनी	१७. मूल	२४. उत्तराभाद्रपद
४. आर्द्रा	११. हस्त	१८. पूर्वाषाढ़ा	२५. रेवती
५. पुनर्वसु	१२. चित्रा	१९. उत्तराषाढ़ा	२६. अश्विनी
६. पुष्य	१३. स्वाति	२०. श्रवण	२७. भरणी
७. आश्लेषा	१४. विशाखा	२१. धनिष्ठा	—

वारानयन के लिए—४३८ पिण्ड में ७ ध्रुवांक + ५८ क्षेपांक + १०६ वर्गांक = ४३८ + ७ + ५८ + १०६ = ६०९ ÷ २७ = २२ लब्धि, ५ शेष, ५वाँ वार गुरुवार हुआ।

योग नामावली

१ विष्कम्भ	८ धृति	१५ वज्र	२२ साध्य
२ प्रीति	९ शूल	१६ सिद्धि	२३ शुभ
३ आयुष्मान्	१० गण्ड	१७ व्यतीपात	२४ शुक्ल
४ सौभाग्य	११ वृद्धि	१८ वरीयान्	२५ ब्रह्म
५ शोभन	१२ ध्रुव	१९ परिघ	२६ ऐन्द्र
६ अतिगण्ड	१३ व्याघात	२० शिव	२७ वैधृति
७ सुकर्मा	१४ हर्षण	२१ सिद्ध	

योगानयन—४३८ + २० + ५८ + १०६ = ६२२ ÷ २७ = २३ लब्धि, १ शेष पहला योग विष्कम्भ हुआ।

लग्नानयन के लिए प्रक्रिया—४३८ पिण्डांक + २१ ध्रुवांक + ५७ क्षेपांक + १०६ वर्गांक = ४३८ + २१ + ५७ + १०६ = ६२२ ÷ १२ = ५१ लब्धि, शेष १०, मेषादि गणना की तो १०वीं लग्न मकर हुई। यहाँ कुल स्वर-व्यंजन संख्या प्रश्नाक्षरों की १३ है, अतः मकर लग्न के १३ अंश लग्न राशि के माने जायेंगे।

ग्रहानयन

सूर्यानयन—४३८ पिण्डांक + ३० सूर्य ध्रुवांक + १०३ सूर्य क्षेपांक + ५१ वर्गांक = ४३८ + ३० + १०३ + ५१ = ६२२ ÷ १२ = ५१ लब्धि, १० शेष, अतः मकर राशि का सूर्य है। यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि मास संख्या और सूर्य राशि की समता के लिए मास संख्या में एक जोड़ना या घटाना होता है।

चन्द्रानयन—४३८ + १३ + ० + ५३ = ५०४ ÷ १२ = ४२ लब्धि, ० शेष, मेष से गणना करने पर बारहवीं संख्या मीन की हुई, अतः मीन राशि का चन्द्रमा है।

मंगलानयन–४३८ + २१ + ३३ + ५३ = ५४५ ÷ १२ = ४५ लब्धि, ५ शेष, यहाँ पाँचवीं संख्या सिंह राशि की हुई।

बुधानयन–४३८ + ३२ + ४० + ५३ = ५६३ ÷ १२ = ४६ लब्धि, ११ शेष, यहाँ ११वीं संख्या कुम्भ राशि की हुई।

गुरु-आनयन–४३८ + २३ + ६ + ५३ = ५२० ÷ १२ = ४३ लब्धि, ४ शेष चौथी संख्या कर्क राशि की है, अतः गुरु कर्क राशि का हुआ।

शुक्रानयन–४३८ + २५ + ० + ५३ = ५१५ ÷ १२ = ४२ लब्धि, ११ शेष, ग्यारहवीं संख्या कुम्भ राशि की है, अतः शुक्र कुम्भ राशि का हुआ।

शन्यानयन–४३८ + २५ + ३ + ५३ = ५१६ ÷ १२ = ४३ लब्धि, ३ शेष, तीसरी राशि मिथुन है, अतः शनि मिथुन का है।

राहु-आनयन–४३८ + ३६ + ७७ + ५३ = ६०४ ÷ १२ = ५० लब्धि, ४ शेष चौथी राशि कर्क है, अतः राहु कर्क का हुआ। राहु की राशि में ६ राशि जोड़ने से केतु की राशि आती है, अतः यहाँ केतु मकर राशि का है।

नष्ट जन्मपत्रिका-स्वरूप

जन्मसंवत् क्रोधी शुभमास माघ, शुक्लपक्ष, षष्ठी तिथि, गुरुवार को विष्कम्भ योग में जन्म हुआ। जातक का जन्म लग्न ६। १३ है जन्मकुण्डली निम्न प्रकार हुई–

जन्मकुण्डली चक्र

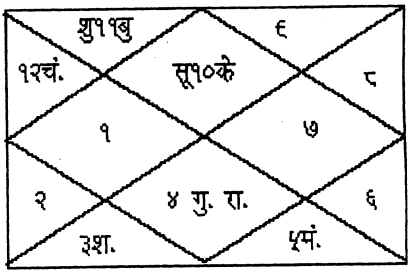

विशेष–नष्ट-विधि से बनायी जन्मकुण्डली का फल जातक ग्रन्थों के आधार से कहना चाहिए। तथा पहले जो मास, पक्ष, दिन और इष्टकाल का आनयन किया है, उस इष्टकाल पर से गणित द्वारा लग्न का साधन कर उसी समय के ग्रह लाकर गणित से नष्ट जन्मपत्री बनायी जा सकती है। इस इष्टकाल की विधिपर-से जन्मकुण्डली के समस्त गणित को कर लेना चाहिए।

गमनागमन प्रश्न विचार

अथगमनागमनमाह–आ ई ऐ औ दीर्घस्वरसंयुक्तानि प्रश्नाक्षराणि भवन्ति, तदा गमनं भवत्येव। उत्तराक्षरेषु उत्तरस्वरसंयुक्तेषु अ इ ए ओ एवमादिष्वागमनममादिशेत्

उत्तराक्षरेषु नास्ति गमनम्। यत्र प्रश्ने द्विपादाक्षराणि भवन्ति ड ग क ख अन्तदीर्घ[1]स्वर संयोगे अनभिहतश्च[2] गमनहेत्वर्थः। इति गमनागमनम्[3]।

अर्थ—गमनागमन प्रश्न को कहते हैं—आ ई ऐ औ इन दीर्घ स्वरों से युक्त प्रश्नाक्षर हों तो पृच्छक का गमन होता है। यदि उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में उत्तर स्वर अ इ.ए ओ संयुक्त हों तो पृच्छक जिस परदेसी के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, वह अवश्य आता है। यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षर उत्तर संज्ञक हों तो गमन नहीं होता है। जहाँ प्रश्न में द्विपाद संज्ञक अ ए क च ट त प य श वर्ण, ड ग क ख तथा य र ल व ये वर्ण दीर्घ मात्राओं से युक्त हों एवं अनभिहत संज्ञके वर्ण प्रश्नाक्षर हों, वहाँ गमन करने में कारण होते हैं अर्थात् उपर्युक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर गमन होता है। इस प्रकार गमनागमन प्रकरण समाप्त हुआ।

विवेचन—इस प्रकरण में आचार्य ने पथिक के आगमन एवं गमन के प्रश्न का विचार किया है। यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण दीर्घ मात्रा से युक्त हो तो पृच्छक का गमन कहना चाहिए। क ग च ज ट ड त द न प ब म य ल श स इन वर्णों में-से ह्रस्व मात्रा युक्त कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पथिक का आगमन बतलाना चाहिए। यदि प्रश्नाक्षरों में आद्य प्रश्नाक्षर द्विपाद संज्ञक हो और द्वितीय प्रश्नाक्षर चतुष्पाद संज्ञक हो, तो सवारी द्वारा गमन कहना चाहिए। यदि आद्य प्रश्नाक्षर द्विपाद संज्ञक और द्वितीय प्रश्नाक्षर अपाद संज्ञक हो, तो बिना सवारी के पैदल गमन बतलाना चाहिए। प्रश्न का आद्यक्षर अ ए क च ट त प व श इनमें से कोई हो और वह दीर्घ हो तो निश्चय ही गमन करना चाहिए। यदि प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण अधर मात्रा वाला हो तो शीघ्र गमन और उत्तर मात्रा वाला हो तो गमनाभाव कहना चाहिए।

पथिकागमन के प्रश्न में जितने व्यंजन हों, उनकी संख्या को द्विगुणित कर मात्रा संख्या की त्रिगुणित राशि में जोड़ दें और जो योगफल हो उसमें दो का भाग दें, एक शेष रहे तो शीघ्र आगमन और शून्य शेष में विलम्ब से आगमन कहना चाहिए।

प्रश्नशास्त्र के ग्रन्थान्तरों में कहा गया है कि यदि प्रश्न लग्न से चौथे या दशवें स्थान में शुभ ग्रह हों तो गमनाभाव और पाप ग्रह हों तो अवश्य गमन होता है।

आगमन के प्रश्न में यदि प्रश्न काल की कुण्डली में २।५।८।११ स्थानों में ग्रह हों, तो विदेश गये हुए पुरुष का शीघ्र आगमन होता है। २।५।११ इन स्थानों में चन्द्रमा स्थित हो, तो सुखपूर्वक पथिक का आगमन होता है। प्रश्न कुण्डली के आठवें भाग में स्थित चन्द्रमा पथिक के रोगी होने की सूचना देता है। यदि प्रश्न लग्न से सप्तम भाव में चन्द्रमा हो, तो पथिक को मार्ग में आता हुआ कहना चाहिए। प्रश्नकाल में चर राशियों—मेष, कर्क, तुला

---

१. अन्तःदीर्घस्वरसंयोगे क. मू.।

२. अभिहत—क. मू.।

३. के. प्र. र. पृ. ६१। बृहज्ज्योतिषार्णव, अ. ५।

और मकर में से कोई राशिलग्न हो और चन्द्रमा चतुर्थ में बैठा हो, तो विदेशी किसी निश्चित स्थान पर स्थित है, ऐसा फल समझना चाहिए।

यदि लग्न का स्वामी लग्न स्थान या दसवें स्थान में स्थित हो अथवा ४।७ इन भावों में स्थित हो और लग्न स्थान के ऊपर उसकी दृष्टि हो, तो प्रवासी सुखपूर्वक परदेस में रहता हुआ वापस आता है। यदि लग्नेश ६।३।८।२ इन स्थानों में हो, तो परदेसी रास्ते में आता हुआ समझना चाहिए। लग्न चर हो, चन्द्रमा चर राशि पर और सौम्य ग्रह—चन्द्र, बुद्ध, गुरु, शुक्र १।३।४।५।६।१० में स्थित हों और चन्द्रमा वक्र गतिवाला हो, तो परदेसी थोड़े ही समय में लौट आता है। २।३। ५। ६। ७ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह वक्र गति हों, गुरु १। ४। ७। १० स्थानों में हो और शुक्र, नवम, पंचम स्थान में हो, तो विदेशी शीघ्र आता है। शुक्र और गुरु लग्न में हों तो आनेवाले की चोरी होती है। बृहस्पति अपनी उच्च राशि पर हो अथवा दसवें स्थान में हो तो परदेस में गये व्यक्ति को अधिक धनलाभ कहना चाहिए। यदि शुक्र, बुध, चन्द्रमा, दसवें स्थान में स्थित हों, तो परदेसी सुखपूर्वक धन, यश और सम्मान को प्राप्त कर कुछ दिनों में लौटता है। यदि सप्तम स्थान का स्वामी प्रश्नकुण्डली में लग्न में हो और लग्नेश सप्तम स्थान में स्थित हो, तो प्रवासी जल्दी वापस आता है।

यदि प्रश्नकाल[1] में स्थित लग्न हो और चन्द्रमा स्थिर राशि में स्थित हो तथा मन्दगति वाले ग्रह केन्द्र—१।४।७।१० स्थानों में स्थित हों, लग्न और लग्नेश दृष्टिहीन हों, तो इस प्रकार की प्रश्न स्थिति में परेदसी का आगमन नहीं होता है। मंगल दसवें स्थान में स्थित हो तथा वक्र गति वाले ग्रहों के साथ इत्थशाल[2] करता हो और चन्द्रमा सौम्य ग्रहों से अदृष्ट हो, तो प्रवासी जीवित नहीं लौटता। तथा सौम्यग्रह—चन्द्रमा बुध, गुरु, शुक्र ६।८।१२ इन भावों में स्थित हों और निर्बल पाप ग्रहों से दृष्ट हों और चन्द्रमा एवं सूर्य पाप ग्रहों से दृष्ट हों तो दूर स्थित प्रवासी की मृत्यु कहनी चाहिए। यदि पृष्ठोदय मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर राशियाँ पाप ग्रह से युक्त हों एवं १।४।५।६।७।८।९।१० इन स्थानों में पाप ग्रह हों तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि इन स्थानों पर न हो, तो प्रवासी की मृत्यु कहनी चाहिए।

सूर्य प्रश्नकुण्डली के नौवें भाव में स्थित हो, तो प्रवासी को रोग पीड़ा; बुध इसी स्थान में हो तथा शुभग्रहों की दृष्टि हो, तो सम्मान प्राप्ति; मंगल इसी भाव में शुभग्रहों से अदृष्ट हो, तो संकट; गुरु इसी भाव में लग्नेश या दशमेश होकर बैठा हो, तो अर्थ प्राप्ति और शनि इसी भाव में अष्टमेश होकर स्थित हो, तो नाना प्रकार के कष्ट प्रवासी को कहने चाहिए। यदि प्रश्नकाल में कर्क, वृश्चिक, कुम्भ और मीन लग्न हों, लग्नेश पाप ग्रहों के साथ हो और चन्द्रमा चर राशि में स्थित हो, तो विदेशी आने का विचार करने पर भी नहीं आ सकता है। हाँ वह सुखपूर्वक कुछ समय तक वहाँ रह जाने के बाद आता है। लग्न द्विस्वभाव हो और चन्द्रमा चर राशि में हो, तो शत्रु आते हुए प्रवासी को बीच में रोककर कष्ट देता है। लग्न स्थान से जितने स्थान में बली ग्रह स्थित हों, उतने ही मास में प्रवासी

---

१. प्र. वै. पृ. ७०-७१।

२. शीघ्र गति वाला ग्रह पीछे और मन्द गति वाला ग्रह आगे हो तो इत्थशाल योग होता है।

लौट आता है। यदि बलवान ग्रह चर राशि में स्थित हों, तो एक महीने में, स्थिर राशि में हों, तो तीन महीने में और द्विस्वभाव राशि में स्थित हों, तो दो महीने में प्रवासी वापस आता है। लग्न से जितनी दूर पर हो, उतने ही दिनों में लौटने का दिन कहना चाहिए।

लाभालाभ प्रश्न विचार

अथ लाभालाभमाह–प्रश्ने सङ्कट[1]विकटमात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेषु बहुलाभः। [2]विकट-मात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेष्वल्पलाभः। [3]सङ्कटमात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेष्वल्पलाभः, कष्टसाध्यश्च। जीवाक्षरेषु जीवलाभो धातुलाभश्च। मूलाक्षरेषु मूललाभः। इति पूर्वं कथयित्वा पुनः संख्यां विनिर्दिशेत्।

अर्थ–अथ लाभालाभ का विचार करते हैं। प्रश्न में संकटविकट मात्राओं से युक्त संयुक्त उत्तराक्षर हों तो बहुत लाभ होता है। विकट मात्रा–आ इ ऐ औ मात्राओं से संयुक्त उत्तराक्षर– क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स हों तो इस प्रकार के प्रश्न में पृच्छक को अल्प लाभ होता है। संकट–अ इ ए ओ मात्राओं से संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न के हों तों अल्प लाभ और कष्ट से उसकी प्राप्ति होती है। जीवाक्षर प्रश्नाक्षर– अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह हों तो जीवलाभ और धातुलाभ होता है। मूलाक्षर–ई ऐ औ ङ ञ ण न म ल र ष प्रश्नाक्षर हों तो मूल लाभ होता है। इस प्रकार पहले जीव, मूल और धातु का लाभ कहकर लाभ की संख्या निश्चित करनी चाहिए। संख्या लाने की प्रक्रिया समयावधि की विधि के अनुसार ज्ञात करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि उ ऊ अं अः इन मात्राओं से संयुक्त क ग च ज ट ड त द न प ब म य ल श वर्णों में-से कोई भी वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को अत्यधिक लाभ होता है। आ ई ऐ औ इन मात्राओं से संयुक्त पूर्वोक्त अक्षरों में से कोई अक्षर आद्य प्रश्नाक्षर हो तो अल्पलाभ एवं अ इ ए ओ इन मात्राओं से संयुक्त पूर्व वर्णों में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को कष्ट से अल्पलाभ होता है।

विवेचन– लाभालाभ के प्रश्न का विचार ज्योतिषशास्त्र में दो प्रकार से किया है–प्रथम प्रश्नाक्षर पर-से और द्वितीय प्रश्नलग्न से। प्रश्नाक्षरवाले सिद्धान्त के सम्बन्ध में

---

१. सररिउ सहदिवाअर सराइ वग्गाण पंचमा वण्णा। डड्ढा वियड संकड अहराहर असुह णामाइं॥ उ ऊ अं अः एते पंचमषष्ठिका एकादशमद्वादशमाश्चत्वारः स्वराः तथा ङ ञ ण न मा इति वर्गाणां पञ्चमा वर्णाः दग्धाः विकटसंकटा अधरा अशुभनामकाश्च भवन्ति॥' –अ. चू. सा. गा. ४।

२. कुचुजुगवसुदिससरआ वीय चउत्थाइं वग्गवण्णाइं। अहिधूमिआइं मज्झा ते उण अहराइं वियडाइ॥ आ ई ऐ औ द्वितीयचतुर्थाष्टमदशमश्चत्वारः स्वराः तथा खछठथफरषाः घझढधभवहाः, एते द्वितीयचतुर्थवर्गाणां चतुर्दशवर्णाः अभिधूमिताः मध्यास्तथा उत्तराधरा विकटाश्चभवन्तीति॥'–अ.चू. सा. गा. ३।

३. "पढमं तईयसत्तम रधसर पढम तईयवग्गवण्णाइं। आलिंगियाहिं सुहया उत्तरसंकडअ णामाईं॥ आ इ ए ओ एते प्रथमसप्तमनवमाश्चत्वारः तथा क च ट त प य शा ग ज ड द व ल सा एते प्रथमतृतीयचतुर्दशवर्णाश्च आलिंगिताः, सुभगाः, उत्तराः संकटनामकाश्च भवन्तीति" अ. चू. सा. गा. २।

'समयावधि' के प्रकरणों में काफी लिखा जा चुका है। यहाँ पर प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया जाता है–

'भुवनदीपक'[1] नामक ग्रन्थ में आचार्य पद्मप्रभसूरि ने लाभालाभ का रहस्य बतलाते हुए लिखा है कि प्रथम लग्न का स्वामी लेनेवाला और ग्यारहवें स्थान का स्वामी देनेवाला होता है। जब प्रश्नकुण्डली में लग्नेश और एकादशेश दोनों ग्रह एक साथ हों तथा चन्द्रमा ग्याहवें स्थान को देखता हो तो लाभ का पूर्ण योग समझना चाहिए। उपर्युक्त दोनों स्थान–लग्न और एकादश तथा उक्त दोनों स्थान के स्वामी–लग्नेश और एकादशेश इन चारों की विभिन्न परिस्थितियों से लाभालाभ का निरूपण करना चाहिए।

लग्नेश, चन्द्रमा और द्वितीयेश ये तीनों एक साथ १।२।५।९ इन स्थानों में प्रश्नकुण्डली में हों तो शीघ्र सहस्रों रुपयों का लाभ पृच्छक को होता है। चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र पूर्ण बली हों २। ११। ९। ५। १। ४। ७। १० इन स्थानों में स्थित हों या अपनी उच्च राशि को प्राप्त हों और पाप ग्रहरहित हों तो पृच्छक को शीघ्र ही बहुत लाभ होता है। शुक्र अपनी उच्च राशि पर स्थित हुआ लग्न में बैठा हो या चौथे अथवा पाँचवें भाव में बैठा हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत हो, तो गाँव, नगर, मकान और पृथ्वी आदि का लाभ होता है। यदि लग्न का स्वामी अपनी उच्च राशि पर हो या लग्न स्थान में हो और कर्म-दसवें स्थान का स्वामी लग्न को देखता हो, तो पृच्छक को राजा[2] से धन लाभ होता है। यदि कर्म-दसवें भाव का स्वामी पाप ग्रहों के द्वारा देखा जाय तो, स्वल्पलाभ राजा से होता है। चन्द्रमा, लग्नेश और द्वितीयेश इन तीनों का कंबूल[3] योग हो, तो प्रचुर धन का लाभ होता है। धन स्थान–द्वितीय भाव का स्वामी अपने घर या उच्च राशि में बैठा हो तो प्रचुर द्रव्य का लाभ होता है। धनेश शत्रुराशि या नीच राशि में स्थित हो, तो लाभाभाव समझना चाहिए। यदि प्रश्नकुण्डली में लग्न का स्वामी लग्न में; धन का स्वामी धन स्थान में और लाभेश लाभ स्थान में हो, तो रत्न, सोना, चाँदी और आभूषणों का लाभ होता है। लग्नेश अपनी उच्च राशि का हो या लग्न स्थान में हो तथा लग्नेश भी लग्न स्थान में हो अथवा लग्नेश और लाभेश दोनों लाभ स्थान में हों, तो पृच्छक को द्रव्य का लाभ करानेवाला योग होता है। लग्नेश और धनेश लग्न स्थान में हों, बृहस्पति को चन्द्रमा देखता हो तथा बृहस्पति बली हो, तो पूछनेवाले व्यक्ति को अधिक लाभ करनेवाला योग समझना चाहिए। धनेश और बृहस्पति ये दोनों शुक्र और बुध से युक्त हों, तो अधिक धन मिलता है।

गुरु, बुध और शुक्र ये तीनों प्रश्नकुण्डली में नीच के हों तथा पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हों तथा १। २। ५। ९। १० इन स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों में ये ग्रह स्थित हों, तो धन का नाश होता है। इस प्रकार के प्रश्नवाला व्यक्ति व्यापार में अपरिमित धन

---

१. भु., दी. श्लो ८०-८१

२. प्र. वै पृ. १३-१४।

३. लग्नेश और कार्येश इन दोनों का इत्थशाल हो तथा इन दोनों में-से किसी एक के साथ चन्द्रमा इत्थशाल करता हो तो कम्बूल योग होता है–ता. नी. पृ. ७६।

का नाश करता है। यदि लग्नेश शत्रुराशि में हो या नीचस्थ हो तथा धनेश नीचस्थ होकर छठे स्थान में स्थित हो तो धनक्षति होती है।

शुभाशुभ प्रश्न विचार

अथ शुभाशुभमाह—अभिधूमितमात्रायां संयुक्ताक्षरे दीर्घायुः।[1] प्रश्नेऽभिघातितेषु दीर्घमरणमादिशेत् सङ्कटमात्रा संयुक्ताधराक्षरेषु रोगो भवति। दीर्घस्वर संयुक्तोत्तराक्षरेषु दीर्घरोगो भवति। अधोमात्रासंयुक्तोत्तराक्षरेषु देवताक्रान्तस्य मृत्युर्भवति। अधरोत्तरेषु धात्वक्षरेषु अभिधूमितस्वरसंयुक्तेषु स्त्रीभ्यो मृत्युर्भवेति। [3]एते स्वरसंयुक्तेषु[4]...।

अर्थ—शुभाशुभ प्रकरण को कहते हैं। प्रश्नाक्षरों में आद्य प्रश्नवर्ण अभिधूमित मात्रा से संयुक्त व्यंजन हो तो दीर्घायु होती है। प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर अभिघातित वर्ण हो तो कुछ समय के बाद मृत्यु; संकट मात्राओं—अ इ ए ओ से युक्त अधराक्षरों—ख छ घ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो पृच्छक को रोग होता है। आ ई ऐ औ इन मात्राओं से युक्त उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में-से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो लम्बी बीमारी-बहुत समय तक कष्ट देनेवाला रोग होता है। अधोमात्राओं—आ ई ऐ औ से संयुक्त उत्तराक्षर—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में से कोई वर्ण आद्य प्रश्नाक्षर हो तो देव के द्वारा पीड़ित होने—भूत, प्रेत द्वारा आविष्ट होने से मृत्यु होती है। अधरोत्तर धात्वक्षरों में—त थ द ध प फ ब भ व स इन वर्णों में अभिधूमित—अ ई ऐ औ स्वरों के संयुक्त होने पर स्त्रियों से मृत्यु होती है। ह्रस्व स्वर संयुक्त दग्ध प्रश्नाक्षर हों तो शत्रुओं के द्वारा या शस्त्रघात से मरण होता है।

विवेचन—आचार्य ने इस शुभाशुभ प्रकरण में पृच्छक की आयु का विचार किया है। प्रश्नाक्षरवाले सिद्धान्त के अनुसार प्रश्नश्रेणी में आद्य वर्ण आलिंगित मात्रा हो तो रोगी का रोग यत्नसाध्य, अभिधूमित मात्रा हो तो कष्टसाध्य एवं दग्ध मात्रा हो तो मृत्यु फल कहना चाहिए। पृच्छक के प्रश्नाक्षरों में आद्य वर्ण आ ई ऐ औ इन मात्राओं से संयुक्त संयुक्ताक्षर हो तो पृच्छक की दीर्घायु कहनी चाहिए। यदि आद्य प्रश्नवर्ण क्या, ख्या, ग्या, घ्या, च्या, छ्या, ज्या, झ्या, ट्या, ठ्या, ड्या, ढ्या, त्या, थ्या, द्या, ध्या, न्या, प्या, फ्या, व्या, भ्या, म्या, य्या, रया, ल्या, व्या; श्या, ष्या, स्या, और ह्या, इनमें-से कोई हो तो दीर्घायु, क्वि, ख्वि, ग्वि, घ्वि, च्वि, छ्वि ज्वि, झ्वि, ट्वि, ड्वि, ढ्वि, त्वि, थ्वि, द्वि, ध्वि, न्वि, प्वि, फ्वि, ब्वि भ्वि म्वि, य्वि, र्वि, ल्वि, व्वि, श्वि, ष्वि, स्वि और ह्वि इन वर्णों में-से कोई भी वर्ण हो तो प्रश्नकाल

---

१. प्रश्ने दशाभिघातितेषु—क. मू.।
२. स्त्रीभ्यो मृत्युर्भवति—तपत इत्यर्थः—क. मू.।
३. एते ह्रस्वस्वर संयुक्तेषु...। इत्त मुन्दे अल्प इल्ल...क. मू.।
४. बृहज्ज्योतिषार्णवस्य चन्द्रोन्मीलनप्रकरणं तथा चन्द्रोन्मीलनप्रश्नस्य द्वादशतमं प्रकरणं च द्रष्टव्यम्।

के बाद ५९, ४९ या ६९ वर्ष आयु कहनी चाहिए। यदि किसी का प्रश्न ऐसा हो कि मेरी कुल आयु कितनी है, तो प्रश्नाक्षरों की व्यंजन संख्या और स्वर संख्या को परस्पर गुणाकर २ का भाग देने पर आयु के वर्ष आते हैं।

रोगी व्यक्ति की रोगावधि पूर्वोक्त समय अवधि के नियमों से भी निकाली जा सकती है। तथा निम्न गणित नियमों से प्रश्नाक्षरों पर-से रोग-आरोग्य का निश्चय कर सकते हैं।

१—प्रश्नश्रेणी की वर्ण और मात्रा संख्या को जोड़कर, जो योगफल आए उसमें एक और जोड़ना चाहिए, इस योग को दो से गुणाकर तीन का भाग दें, एक शेष में रोगिनिवृत्ति, दो शेष में व्याधिवृद्धि और शून्य शेष में मरण कहना चाहिए। जैसे रामदास की प्रश्नवर्णसंख्या ८ है। अतः ८ + १ = ९ × २ = १८ ÷ ३ = ६ लब्धि, शेष ०, अतः मरण फल हुआ।

२—प्रश्नश्रेणी की अभिधूमित और आलिंगित मात्राओं की संख्या का परस्पर गुणा कर, इन गुणनफल में दग्ध मात्राओं की संख्या जोड़ देनी चाहिए। फिर योगफल को तीन से गुणा कर चार से विभाजित करना चाहिए। एक शेष में रोगनिवृत्ति, दो शेष में रोगवृद्धि, तीन शेष में मृत्यु और शून्य शेष में कुछ दिनों तक कष्ट पाने के पश्चात् रोग दूर होता है।

३—पूर्वोक्त समयावधि सूचक अंक संख्या के अनुसार स्वर और व्यंजनों की संख्या पृथक्-पृथक् लाकर दोनों को जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में पृच्छक के नामाक्षरों को तिगुना कर जोड़ दें, पश्चात् आगत योगफल में पाँच का भाग दें। एक शेष में विलम्ब से रोगनिवृत्ति; दो शेष में जल्दी रोगनिवृत्ति, तीन शेष में मृत्युतुल्य कष्ट, चार शेष में मृत्यु या तत्तुल्य कष्ट और शून्य शेष में मृत्यु फल होता है।

प्रश्नकुण्डलीवाले सिद्धान्त के अनुसार प्रश्नलग्न में पाप ग्रहों—सूर्य, मंगल, शनि और क्षीण चन्द्रमा की राशि हो और अष्टम भाव पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा दो पाप ग्रहों के मध्यवर्ती या पाप ग्रहों से युक्त चन्द्रमा अष्टम भाव में हो तो रोगी का शीघ्र मरण होता है। यदि प्रश्नकुण्डली में सभी पाप ग्रह लग्न से १२वें स्थान में हों और चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो अथवा पापग्रह सप्तम भाव में हों और चन्द्रमा लग्न में हो या पापग्रह अष्टम भाव में हों और चन्द्रमा छठे स्थान में हो, तो रोगी का शीघ्र मरण होता है। चन्द्रमा लग्न में हो और सूर्य सप्तम में हो, तो रोगी का मरण शीघ्र होता है। चन्द्रयुक्त मंगल मेष या वृश्चिक राशि के २३ अंश से लेकर २७ अंश तक स्थित हो, तो रोगी का निश्चय मरण होता है। यदि प्रश्न-लग्न से सप्तम भाव शुभग्रह युक्त हो, तो रोगी को शुभ और पापग्रह युक्त हो तो रोगी को अशुभ होता है। यदि सप्तम भाव में शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के ग्रह मिश्रित हों, तो कुछ समय तक बीमारी का कष्ट होने के बाद रोगी अच्छा हो जाता है। प्रश्नकुण्डली के अष्टम भाव में यदि सूर्य या मंगल हो, तो रोगी को रक्त और पित्तजनित रोग होता है। यदि अष्टम में बुध हो, तो सन्निपात रोग होता है। यदि राहु युक्त रवि षष्ठ

---

१. प्र. भू. वि. पृ. ५३-५४।

भाव में हो तो कुष्ठ और राहु युक्त रवि अष्टम भाव में हो, तो महाकष्ट होता है।

यदि लग्नेश निर्बल हो, अष्टमेश बलवान हो, और चन्द्रमा छठे या आठवें स्थान में हो तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्नेश यदि उदित हो और अष्टमेश दुर्बल हो एवं एकादश बलवान हो तो रोगी चिरंजीवी होता है। यदि प्रश्नकुण्डली के अष्टम स्थान में राहु हो, तो भूत, पिशाच, जादू-टोना, नजर आदि से रोग उत्पन्न होता है। शनि लग्न या अष्टम स्थान में हो, तो केवल भूत, पिशाच से रोग उत्पन्न होता है।

प्रश्नलग्न में क्रूर ग्रह हों तो आयुर्वेद के इलाज से रोग दूर नहीं होता है; बल्कि जैसे-जैसे उपचार किया जाता है, वैसे-वैसे रोग बढ़ता है। यदि प्रश्नलग्न में बलवान शुभ ग्रह हों तो इलाज से रोग जल्द दूर होता है। प्रश्नकुण्डली के सातवें भाव में पाप ग्रह हों तो वैद्यक के इलाज से हानि और शुभ ग्रह हों तो डॉक्टरी इलाज से लाभ समझना चाहिए। प्रश्नलग्न से दसवें भाव में शुभ ग्रह हों तो इलाज, पथ्य आदि उपचारों से रोगनिवृत्ति एवं अशुभ ग्रह हों तो उपचार आदि से रोगवृद्धि अवगत करनी चाहिए। शुभ ग्रह के साथ अथवा लग्नस्वामी के साथ चन्द्रमा इत्थशाल[1] योग करता हो और शुभ ग्रहों से युक्त होकर केन्द्र में स्थित हो, तो रोगी का रोग जल्द अच्छा होता है। केन्द्र में लग्नेश या चन्द्रमा हो और ये दोनों शुभ ग्रहों से युक्त और दृष्ट हों, तो शीघ्र रोगनिवृत्ति और पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, तो विलम्ब से रोगनिवृत्ति होती है। प्रश्नलग्न चर या द्विस्वभाव हो, लग्नेश और चन्द्रमा शुभ ग्रहों से युक्त होकर अपनी राशि या १। ४। १० भावों में स्थित हों, तो जल्द रोग दूर होता है। लग्न में कोई ग्रह वक्री हो तो रोग यत्न करने पर दूर होता है, लग्न में अष्टमेश हो तथा चन्द्रमा और लग्नेश आठवें भाव में हों, तो रोगी की मृत्यु कहनी चाहिए। लग्नेश और अष्टमेश का इत्थशाल योग हो या ये ग्रह पाप ग्रहों से देखे जाते हों, तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्नेश चतुर्थ भाव में न हो, चन्द्रमा छठे भाव में हो और चन्द्रमा सप्तमेश के साथ इत्थशाल योग करता हो अथवा सप्तमेश छठे घर में हो, तो निश्चय से रोगी मृत्यु होती है। लग्नेश और चन्द्रमा का अशुभ ग्रह के साथ इत्थशाल हो या लग्नेश और चन्द्रमा ४।८। ६ में स्थित हों एवं पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, तो रोगनाशक; ६।८।१० इन भावों में पाप ग्रह हों और चन्द्रमा अष्टम स्थान में स्थित हो, तो रोगी की मृत्यु होती है। लग्न, सप्तम और अष्टम इन स्थानों में पाप ग्रह हो और शुभ ग्रह निर्बल हों; चन्द्रमा चतुर्थ, अष्टम स्थान में हो एवं चन्द्रमा के पास के दोनों स्थानों में पाप ग्रह हों, तो रोगी की मृत्यु होती है।

चवर्ग पञ्चाधिकार

गर्गः—आलिङ्गितेषूत्तराक्षरेषूत्तरस्वरसंयुक्तेषु यवर्गं प्राप्नोति। सिंहावलोकनक्रमेणावर्गे (क्रमेण चवर्गे)ऽभिघातिते कवर्गं प्राप्नोति।[1] मण्डूकप्लवनक्रमेण [2]कवर्गेऽभिधूमिते पवर्गं

१. ता. नी. पृ. ६५।

२. चवर्गेऽभिधूमिते पवर्गं प्राप्नोति—क. मू.।

प्राप्नोति। अमोहितक्रमेण चवर्गे दग्धे पवर्गं प्राप्नोति। गजविलोकितक्रमेण चवर्गमालिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्तेऽवर्गं प्राप्नोति। सिंहदृशानुक्रमेण[1] चवर्गे दग्धे अवर्गो भेकप्लुत्या [2]प्राप्नोति। इति [3]चवर्गपञ्चाधिकारः।

अर्थ—गर्गाचार्य द्वारा कहे गये वर्गानयन के नियम को बताते हैं। आलिंगित उत्तराक्षराक्षर उत्तर स्वर संयुक्त होने पर प्रश्न का चवर्ग यवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग के अभिधातित होने पर प्रश्न का चवर्ग कवर्गको प्राप्त हो जाता है। मण्डूकप्लवनक्रम से चवर्ग के अभिधूमित होने पर प्रश्न का चवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अश्वमोहित क्रम से चवर्ग के दग्ध होने पर प्रश्न का चवर्ग पवर्ग को प्राप्त हो जाता है।

गजविलोकन क्रम से आलिंगित में उत्तरस्वर संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहदृष्टि अनुक्रम से चवर्ग के दग्ध होने पर भेकप्लवन सिद्धान्त द्वारा चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रश्न का चवर्ग पाँचों वर्गों को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि प्रश्न का प्रत्येक वर्ग विशेष-विशेष नियमों के द्वारा पाँचों वर्गों को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार चवर्ग का पञ्चवर्गाधिकार पूर्ण हुआ।

विवेचन—आचार्य ने मूकप्रश्न, मुष्टिका प्रश्न, लूकाप्रश्न आदि के लिए उपयोगी वर्णनिष्कासन का नियम ऊपर गर्गाचार्य द्वारा प्रतिपादित लिखा है। इस नियम का भाव यह है कि मन में चिन्तित या मुट्ठी की वस्तु का नाम किस वर्ग के अक्षरों का है। यह निश्चित है कि प्रश्नाक्षर जिस वर्ग के होते हैं, वस्तु का नाम उस वर्ग के अक्षर पर नहीं होता है। प्रत्येक प्रश्न में सिंहावलोकन, गजावलोकन, नन्द्यावर्त, मण्डूकप्लवन, अश्वमोहितक्रम ये पाँच प्रकार के सिद्धान्त वर्गाक्षरों के परिवर्तन में काम करते हैं। चन्द्रोन्मीलन प्रश्नशास्त्र में आठ प्रकार के परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण किया है। यहाँ उपर्युक्त पाँचों सिद्धान्तों का स्वरूप दिया जाता है।

१—सिंहावलोकन क्रम-अकारादि बारह स्वरों के अंक-स्थापन कर तथा ककारादि तैंतीस व्यंजनों के अंक स्थापित कर चक्र बना लेना। पश्चात् अधर प्रश्न हो तो आद्यवर्ण की व्यंजन संख्या को ५ से गुणा कर मात्रांक संख्या में जोड़ दें और योगफल में आठ का भाग लेने पर एकादि शेष में अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग समझना चाहिए। यदि उत्तर प्रश्न हो तो मात्रांक संख्या को ११ से गुणा कर व्यंजन संख्या में जोड़ दें और उसमें १० और जोड़कर आठ से भाग दें तथा एकादि शेष में अवर्गादि ज्ञात करें। संयुक्त वेला में पृच्छक जिस दिशा में मुख करके बैठे, उसके पीछे की दिशा का अंक

---

१. अनुक्रमेण इति पाठे नास्ति—क. मू.।
२. प्राप्नोति-इति पाठे नास्ति— क. मू.।
३. बृ. ज्यो ४। २८३, २८६-८८।

दिक्चक्र में देखकर उस अंक से प्रश्नाक्षर संख्या को गुणा कर तीन से भाग देना चाहिए। एक शेष में जीवचिन्ता; दो में धातुचिन्ता और शून्य शेष में मूलचिन्ता समझनी चाहिए। पुनः लब्ध को पिण्ड में मिलाकर दो से भाग देना चाहिए। एक शेष में सुखदायक और शून्य या दो शेष में दुःखदायक समझना चाहिए।

सिंहावलोकन दिक्चक्र

ई श २१	पू. अ. २८	अ. क. २७
उ.य. २२	श्री.	च. २६ द.
वाय.प. २३	त. २४ प.	ट. ७ नै.

सिंहावलोकन स्वर व्यंजनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	०	०	०

उदाहरण—पृच्छक का प्रश्नवाक्य 'कैलास पर्वत' है। यहाँ प्रश्नवाक्य 'क' उत्तराक्षर से प्रारम्भ होता है, अतः प्रश्नवाक्य का विश्लेषण किया तो क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वर; क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यंजन—सिंहावलोकन के अंक चक्रानुसार मात्रांक=८ + २ + १ + १ + १ + १= १४, **व्यंजनांक** = १ + २८ + ३२ + २१ + २७ + २९ + १६ = १५४। १४ × ११ = १५४ + १५४ = ३०८ + १० = ३१८ ÷ ८ = ३९ **लब्धि, ६ शेष रहा। अतः यवर्ग का प्रश्न माना जायगा।**

२—गजावलोकन चक्र—अकारादि बारह स्वरों के चार को आदि कर यथाक्रम से अंक जानना, क वर्ग का पाँच आदि कर, च वर्ग का छः आदि कर, ट वर्ग का सात आदि कर, त वर्ग का आठ आदि कर, प वर्ग का नौ आदि कर और य वर्ग का दस आदि कर अंक संख्या लिख लेनी चाहिए। संयुक्तवेला में पृच्छक जिस दिशा में मुख करके बैठा हो, उसके पीछे की दिशा का अंक दिक्चक्र में देखकर लिख लेना चाहिए। पश्चात् प्रश्नाक्षर संख्या से गुणा कर तीन का भाग देना चाहिए। एक शेष में जीवचिन्ता, दो शेष में धातुचिन्ता और शून्य शेष में मूलचिन्ता कहनी चाहिए। पुनः लब्धि को पिण्ड में मिलाकर दो से भाग देना चाहिए तथा एक शेष में लाभ और शून्य शेष में अलाभ फल होता है। पश्चात् फिर से लब्धि को पिण्ड में जोड़कर दो का भाग देने से एक शेष में सुख और शून्य शेष में दुःख फल होता है।

दिक्चक्र-गजावलोकन

ई श ११	पू. अ. ४	अ. क. ५
उ.य. १०	संयुक्त वेला प्रश्न	द. च. ६
वाय.ष. ९	प. त. ८	नै. ट. ७

गजावलोकन स्वर-व्यंजनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
५	६	७	८	९	६	७	८	९	१०	७	८
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
९	१०	११	८	९	१०	११	१२	९	१०	११	१२
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
१३	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	०	०	०

उदाहरण—संयुक्तवेला का प्रश्नवाक्य 'कैलास पर्वत' है। पृच्छक ने पूर्व दिशा की ओर मुख कर प्रश्न किया है अतः उसके पीछे की दिशा पश्चिम का दिगंक८ ग्रहण किया। प्रश्नाक्षरों की स्वर व्यंजनांक संख्या को दिगंक से गुणा करना है। अतः प्रश्नवाक्य के विश्लेषणानुसार—क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = ५ + १२ + १६ + ९ + ११ + १३ + ८ = ७४ व्यंजनांक; ११ + ५ + ४ + ४ + ४ + ४ = ३२ स्वरांक = ३२ + ७४ = १०६ प्रश्नांक, १०६ × ८ = ८४८ पिण्डांक, ८४८ ÷ ३ = २८२ लब्धि, २ शेष, अतः धातुचिन्ता का प्रश्न हुआ। ८४८ + २८२ = ११३० ÷ २ = ५६५ लब्धि, शेष ०। अतः इसका फल हानि कहना चाहिए। पुनः पिण्डांक में लब्धि को जोड़ा तो ८४८ + ५६५ + १४१३ ÷ २ = ७०६ लब्धि, शेष १। अतः सुख फल समझना चाहिए।

३—नद्यावर्त चक्र-अवर्गादि के एक-एक वृद्धिक्रम से अंक स्थापन कर स्वर-व्यंजनांक स्थापित कर लेना चाहिए। अधर वर्ग प्रश्नाक्षर हों, तो व्यंजन और स्वर संख्या का योग कर आठ से भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग य वर्ग और श वर्ग ग्रहण करने चाहिए।

उत्तर वर्ण प्रश्नाक्षर हों, तो स्वर और व्यंजनांक की संख्या को १३ से गुणा कर १२ जोड़ देने पर प्रश्नपिण्डांक हो जाता है। इस प्रश्न पिण्डांक में ८ से भाग देने पर एकादि शेष में क्रमशः अवर्गादि समझने चाहिए। पश्चात् लब्धि को प्रश्न पिण्ड में जोड़कर ५ का भाग देने पर शेष नाम का प्रथम वर्ण जानना।

नद्यावर्त चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	१	२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
३	४	५	१	२	३	४	५	१	२	३	४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
५	१	२	३	४	१	२	३	४	०	०	०

उदाहरण—प्रश्नाक्षर मोहन के 'कैलास पर्वत' हैं। इसका विश्लेषण किया तो क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यंजनाक्षर, ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वराक्षर, २ + ३ + ३ + १ + २ + ४ + १ = १६ व्यंजनांक, ८ + २ + १ + १ + १ + १ = १४ स्वरांक, १६ + १४ = ३०, ३० ÷ ८ = ३ लब्धि, ६ शेष=प वर्ग का नाम समझना चाहिए।

जब प्रश्नाक्षर 'कैलास पर्वत' रखे जाते हैं तो उत्तर प्रश्नाक्षर होने के कारण स्वरव्यंजन संख्या २६ को १३ से गुणा किया तो २६ × १३ = ३७७ + १२ = ३८६ प्रश्नापिण्डांक हुआ। ३८६ ÷ ८ = ४८ लब्धि, ५ शेष। त वर्ग का नाम कहना चाहिए।

४—मण्डूकप्लवन चक्र[1]—अकारादि स्वरों को एकादि संख्या और ककारादि व्यंजनों की दो आदि संख्या वर्गवृद्धि के क्रम से स्थापित कर लेनी चाहिए। प्रश्नवाक्य के समस्त स्वर व्यंजनों की संख्या को ११ से गुणाकर १० जोड़ना चाहिए। इस योगफल का नाम प्रश्नपिण्ड समझना चाहिए। प्रश्न पिण्ड में आठ से भाग देने पर एकादि शेष में विलोम क्रम से वर्गाक्षर होते हैं अर्थात् एक शेष में श वर्ग, दो शेष में य वर्ग, तीन शेष में प वर्ग, चार शेष में त वर्ग, पाँच शेष में ट वर्ग, छः शेष में च वर्ग, सात शेष में क वर्ग और शून्य या आठ शेष में अ वर्ग होता है। पुनः लब्धि को पिण्ड में जोड़कर पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में विलोम क्रम से वर्ग का ज्ञान करना चाहिए।

मण्डूकप्लवन दिक्चक्र

ई श ३२००	पू. अ. २५	आग्ने. क. ५०
उ.य. १६००	श्री	द. च. १००
वाय.प. ८००	प. त. ४००	नै. ट. २००

मण्डूकप्लवन स्वर-व्यंजनाङ्कबोधक चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
२	३	४	५	६	३	४	५	६	७	४	५
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
६	७	८	५	६	७	८	९	७	८	९	
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
१०	७	८	९	१०	८	९	१०	११	०	०	०

उदाहरण—मोहन का प्रश्नवाक्य—'कैलास पर्वत' है, इसका विश्लेषण किया तो क् + ऐ + ल् + आ + स् + अ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = क् + ल् + स् + प् + र् + व् + त् व्यंजनाक्षर, ऐ + आ + अ + अ + अ + अ स्वराक्षर, २ + ९ + १० + ६ + ८ + १० + ५ = ५० व्यंजनांक, ८ + २ + १ + १ + १ + १ = १४ स्वरांक, ५० + १४ = ६४ प्रश्नाक्षरांक, ६४ × ११ = ७०४ + १० = ७१४ प्रश्नपिण्डांक, ७१४ ÷ ८ = ८९ लब्ध, २ शेष, विलोमक्रम से शेषांक में वर्ग संख्या की गणना की तो य वर्ग आया। पुनः

---

१. बृ.ज्यो. अ. ४। २९२-९३।

७१४ + ८६ = ८०३ ÷ ५ = १६० लब्ध, ३ शेष। विलोमक्रम से गणना की तो प वर्ग आया।

५—अश्वमोहितचक्र[1]—अकारादि स्वरों के द्विगुणित अंक और ककारादि व्यंजनों के अंक पूर्ववत् स्थापित कर चक्र बना लेना चाहिए। यदि प्रश्नवाक्य का आद्य वर्ग अधर—ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह में से कोई अक्षर हो तो प्रश्नाक्षरों की स्वर व्यंजन संख्या को एकत्रित कर आठ का भाग देने पर एकादि शेष में अवर्गादि समझने चाहिए। यदि उत्तराक्षरों— क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल श स में से कोई भी वर्ण प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण हो तो प्रश्नाक्षरों के स्वर व्यंजन की अंक संख्या को पन्द्रह से गुणा कर चौदह जोड़कर आठ का भाग देने पर एकादि शेष में अवर्गादि होते हैं। पश्चात् लब्ध को पिण्ड में जोड़कर पुनः पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में वर्ण के प्रथमादि वर्ग होते हैं।

अश्वमोहित का दिक्चक्र

ई श ३२००	पू. अ. २५	आग्ने. क. ५०
उ.य. १६००	श्री	द. च. १००
वाय.प. ८०६	प. त. ४००	नै. ट. २००

अश्वमोहित का स्वर-व्यंजनाङ्क चक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१६	२०	२१	२२	२३	२४
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०	०
२५	२६	२७	२८	२६	३०	३१	३२	३३	०	०	०

उदाहरण—मोहन का प्रश्न वाक्य 'कैलास पर्वत' है। यहाँ प्रश्न वाक्य का आद्य वर्ण उत्तर संज्ञक वर्ग है। अतः निम्न क्रिया करनी होगी—१ + २८ + ३२ + २१ + २७ + २६ + १६ = १५४ व्यंजनांक संख्या, १६ + ४ + २ + २ + २ + २ = २८ स्वरांक संख्या, १५४ + २८ = १८२ स्वर व्यंजनांक संख्या का योग, १८२ × १५ = २७३० + १४ = २७४४ ÷ ८ = ३४३ लब्ध, ० शेष यहाँ श वर्ग का प्रश्न माना जाएगा। पश्चात् २७४४ + ३४३ = ३०८७ ÷ ५ = ६१७ लब्ध, २ शेष, यहाँ पर वर्ग का द्वितीय अक्षर प्रश्न का होगा।

'नरपतिजयचर्या' में अश्वचक्र[2] का निरूपण करते हुए बताया है कि एक घोड़े की मूर्ति बनाकर, उसके मुख आदि विभिन्न अंगों पर पृच्छक के प्रश्नाक्षरानुसार और अट्ठाईस नक्षत्रों को क्रम से स्थापित कर देना चाहिए। प्रश्नाक्षरगत नक्षत्र को आदि के दो नक्षत्र मुख में रखकर पश्चात् चक्षुद्वय, कर्णद्वय, मस्तक, पूँछ और दोनों पैर इन आठ अंगों में आगे सोलह नक्षत्र क्रमशः स्थापना करें। पश्चात् पेट में पाँच और पीठ में भी पाँच नक्षत्रों का स्थापन

१. बृ.ज्यो. अ. ४। २६०-६१।
२. न. ज. पृ. २०२

करें। सूर्य की स्थिति के अनुसार इस चक्र का फल समझें। यदि अश्व के मुख में सूर्य नक्षत्र हो तो विजय, लाभ और सुख होता है। शनि नक्षत्र यदि अश्वचक्र के कान, पूँछ, पैर या पीठ में रहे तो दुःख, हानि और पराजय होता है। यदि उपर्युक्त स्थान में सूर्य नक्षत्र रहे तो वस्त्रादि का लाभ होता है।

आचार्य द्वारा कथित प्रकरण का तात्पर्य यह है कि यदि प्रश्नाक्षर आलिंगित समय में उत्तराक्षर उत्तरस्वर संयुक्त हों तो चवर्ग के होने पर भी चवर्ग यवर्ग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जिस वस्तु के सम्बन्ध में प्रश्न है, उसका नाम य वर्ग के अक्षरों में समझना चाहिए। पूर्वोक्त सिंहावलोकन क्रम से अभिघातित च वर्ग के होने पर चवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अर्थात् उक्त प्रश्नस्थिति में वस्तु का नाम क वर्ग के अक्षरों में समझना चाहिए। मण्डूकप्लवन क्रम से जब अभिधूमित चवर्ग प्रश्नाक्षर—वर्गाक्षर आएँ, उस समय वह पवर्ग को प्राप्त हो जाता है। अश्वमोहित क्रम से जब दग्ध प्रश्नाक्षरों में चवर्ग आए, उस समय वह पवर्ग को प्राप्त हो जाता है। सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग के प्राप्त होने पर मण्डूकप्लवन रीति से अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। गजावलोकन क्रम से उत्तराक्षर उत्तर स्वरसंयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर चवर्ग अवर्ग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार चवर्ग विभिन्न प्रश्नस्थितियों के अनुसार विभिन्न वर्गों को प्राप्त होता है। इस प्राप्ति का प्रधान लक्ष्य वर्गाक्षरों का निष्कासन है। अवर्ग पञ्चक के द्वारा प्रश्नवाक्य का स्वरूप निर्धारण करने में बड़ी भारी सहायता मिलती है। अतः प्रश्न यथार्थ फल निरूपण के लिए उक्त प्रणाली की जानकारी आवश्यक है।

तवर्ग चक्र विचार

तवर्गे आलिङ्गिते यवर्गं नद्यावर्त-क्रमेण प्राप्नोति। तवर्गेऽभिधूमिते शवर्गं शशदृशा[1](सिंहदृशा)नुक्रमेण प्राप्नोति। तवर्गे दग्धेऽवर्ग जन[2](गज)विलोकितक्रमेण प्राप्नोति। तवर्गे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते चवर्गं सिंह[3]दृशानुक्र[4]मेण प्राप्नोति। तवर्गेऽभिघातिते टवर्गं भेकप्लुत्या[5] प्राप्नोति। इति तवर्गचक्रम्।

अर्थ—आलिंगित त वर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर त वर्ग नद्यावर्त क्रम से यवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर सिंहावलोकन क्रम से तवर्ग शवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध प्रश्नाक्षरों में तवर्ग के होने पर गजविलोकित क्रम से प्रश्न का तवर्ग अवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराक्षरों—क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म य ल व स ह के उत्तर स्वरसंयुक्त होने पर आलिंगित काल के प्रश्न में तवर्ग सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग

---

१. शशाङ्का क. मू.। शशकारिदृशा—क. मू.।

२. गज— क. मू.।

३. शशकारिदृशा। ता. मू.।

४. अनुक्रमेण प्राप्नोति—इति पाठो नास्ति—क. मू.।

५. मण्डूक-प्लवनगत्या—ता. मू.।

को प्राप्त होता है। अभिघातित तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त प्रकरण में तवर्ग के परिवर्तन का विचार किया है। चोरी गयी वस्तु, मुट्ठी में रखी गयी वस्तु एवं मन में चिन्तित वस्तु के नाम को ज्ञात करने के लिए तवर्ग के चक्र का विचार किया है। क्योंकि प्रश्नवाक्यों की किस प्रकार की स्थिति में तवर्ग परिवर्तित होकर किस अवस्था को प्राप्त होता है तथा उस अवस्था के अनुसार तवर्ग का कौन-सा वर्ग मानना पड़ेगा—आदि विचार उपर्युक्त प्रकरण में विद्यमान है। इसका विशेष विवेचन पहले किया जा चुका है। गर्गाचार्य ने नद्यावर्त, सिंहावलोकन, गजावलोकन, अश्वमोहित और मण्डूकप्लवन आदि चक्रों के गणित को न लिखकर केवल प्रश्नाक्षरों पर-से ही किस प्रकार के प्रश्न में किस दृष्टि से कौन-सा वर्ग आता है, इसका कथन किया है। पहले जो नद्यावर्त आदि का गणित दिया गया है, उससे भी प्रामाणिक ढंग से वर्ग का नाम निकाला जा सकता है।

यवर्ग[1] चक्र विचार

यवर्गे आलिङ्गितेऽवर्गं नद्यावर्तक्रमेण प्राप्नोति। यवर्गेऽभिधूमिते कवर्गमरव-मीहितक्रमेण[2] [3]प्राप्नोति। यवर्गेऽभिघातिते शवर्गं भेकप्लुत्या[4] प्राप्नोति। [5]इति यवर्गचक्रम्।

अर्थ—आलिंगित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग नद्यावर्तक्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग अश्वमोहित क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का यवर्ग मण्डूकप्लवन गति से शवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार यवर्ग चक्र का वर्णन समझना चाहिए।

कवर्ग चक्र विचार

कवर्गे[6] आलिङ्गिते टवर्गमश्वप्लुत्याऽभिधूमिते दग्धेऽभिघातिते च चीनप्लुतिं (चीनगत्या तवर्गं) प्राप्नोति[7]। इति कवर्गचक्र[8]म्।

अर्थ—आलिंगित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग अश्वगति-अश्वमोहित क्रम से टवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित, दग्ध और अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न

---

१. यवर्ग चक्रं—ता. मू.।
२. अश्वमोहितक्रमः—क. मू.।
३. प्राप्नोतीति पाठो नास्ति—क. मू.।
४. मण्डूकप्लवनगत्या—ता. मू.।
५. इति यवर्गचक्रम्—ता. मू.।
६. कवर्गे आलिङ्गिते, उन्नद्धनकेऽभिधूमितेवं, अश्वगत्याके दग्धे अभिघातितं चीनगतिं—इति कवर्गचक्रम्—क. मू.।
७. प्राप्नोतीति पाठो नास्ति—ता. मू.।
८. कवर्णचक्रम्—ता. मू.।

का कवर्ग मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार कवर्ग का वर्णन हुआ।

विवेचन—उपर्युक्त कवर्ग चक्र के ग्रन्थान्तरों में कई रूप पाये जाते हैं। एक स्थान[1] पर बताया गया है कि आलिंगित समय का प्रश्न होने पर, आलिंगित ही प्रश्नाक्षरों के होने पर, प्रश्न का कवर्ग अश्वमोहित क्रम से टवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में आलिंगित और संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग गजावलोकन क्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। दग्धवेलाके प्रश्न में असंयुक्त और संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर सिंहावलोकन क्रम से प्रश्न का कवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है। अधर प्रश्न वर्णों के होने पर प्रश्न का कवर्ग नद्यावर्त क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का कवर्ग मण्डूकप्लवन गति से यवर्ग को प्राप्त होता है।

टवर्ग चक्र विचार

टवर्गे[2] आलिङ्गिते नद्यावर्तेन[3], टवर्गेऽभिधूमितेऽश्वगत्या, टवर्गे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते कवर्गं प्राप्नोति। टवर्गेऽभिधूमिते तवर्गं भेकक्रमेण[4] प्राप्नोति। इति टवर्ग-चक्रम्।[5]

अर्थ—आलिंगित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का टवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्नाक्षरों के होने पर अश्वमोहित क्रम से प्रश्न का टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। आलिंगित प्रश्न में उत्तराक्षरों के उत्तर स्वरसंयुक्त होने पर प्रश्न का टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित प्रश्न के होने पर प्रश्न का टवर्ग मण्डूकप्लवन गति से तवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार टवर्ग का वर्णन हुआ।

विवचेन—ग्रन्थान्तरों में बताया गया है कि आलिंगित वेला के प्रश्न में उत्तरवर्ण के प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ण टवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में अधर वर्ण प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध वेला के प्रश्न में अधरोत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग चवर्ग को प्राप्त हो जाता है। संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर आद्य टवर्ग सिंहावलोकन क्रम से तवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य टवर्ग गजावलोकन क्रम से पवर्ग को प्राप्त होता है। अभिघातित प्रश्नाक्षरों के होने पर आद्य टवर्ग अश्वमोहित क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है। टवर्ग के अनभिहत होने पर टवर्ग चवर्ग को प्राप्त होता है। प्रथम श्रेणी में टवर्ग के दग्ध होने पर टवर्ग पवर्ग को, आलिंगित होने पर

---

१. बृहज्ज्योतिषार्णवग्रन्थस्य चतुर्थोऽध्यायः द्रष्टव्यः।

२. टेआलिङ्गिते पन्नाद्येनटेऽभिधूमितेऽश्वगत्या टे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते कं टेऽभिघातिते तं भेकक्रमेण। इति टवर्ग चक्रम्—क. मू.।

३. पन्नाद्येन— ता. मू.।

४. मण्डूकगत्या—ता. मू.।

५. टवर्णचक्रम्—ता. मू.।

टवर्ग अवर्ग को, अभिधूमित होने पर टवर्ग तवर्ग को एवं अधरोत्तर स्वरसंयुक्त अभिधूमित होने पर टवर्ग शवर्ग को प्राप्त होता है। यह टवर्ग, यवर्ग और कवर्ग विचार प्रश्नवाक्य के स्वरूप निर्णय में बहुत सहायक है। अतः फलादेश निरूपणस्वरूप निर्धारण के पश्चात् ही हो सकता है।

पवर्ग चक्र विचार

पवर्गे आलिङ्गिते[1] शवर्गं नद्यावर्तक्रमेण, [2]पवर्गेऽभिधूमिते अम् अश्वगत्या, [3]पवर्गे[4]दग्धे कवर्गं गजदृशा, [5]पवर्गे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते [6]टवर्गं सिंहदृशा, [7]पवर्गेऽभिधूमिते यं मण्डूक[8]प्लुत्या [9]प्राप्नोति। इति पवर्गचक्रम्[10]।

अर्थ—आलिंगित प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का पवर्ग नद्यावर्त क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के अभिधूमित होने पर प्रश्न का पवर्ग अश्वगति से अवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के दग्ध होने पर गजावलोकन क्रम से प्रश्न का पवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के आलिंगित होने पर प्रश्नाक्षरों के उत्तराक्षर उत्तर स्वर संयुक्त होने पर सिंहावलोकन क्रम से पवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है। पवर्ग के अभिघातित होने पर मण्डूक प्लवन गति से पवर्ग यवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार पवर्ग चक्र का वर्णन हुआ।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्र में पवर्ग के चक्र का स्वरूप बताया गया है कि आलिंगित वेला के प्रश्न में आद्य प्रश्नाक्षर पवर्ग के होने पर नद्यावर्त की चक्र की दृष्टि से पवर्ग शवर्ग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् पवर्ग के प्रश्नाक्षरों में वस्तु का नाम शवर्ग का समझना चाहिए। अभिधूमित वेला के प्रश्न में पवर्ग अश्वमोहित से अवर्ग को प्राप्त होता है अर्थात् उक्त स्थिति में वस्तु का नाम अवर्ग अक्षरों में अवगत करना चाहिए। दग्धवेला का प्रश्न होने पर सिंहावलोकन क्रम से पवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम क ख ग घ ङ इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला होता है। उत्तर प्रश्नाक्षरों के होने पर पवर्ग नद्यावर्त क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम च छ ज झ ञ इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिए। अधर प्रश्नवर्णों के होने पर मण्डूकप्लवन गति से पवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम त थ द ध न इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिए। अधरोत्तर प्रश्नवर्णों के

---

१. पे आलिंगिते शन्नाद्यने—क. मू.।
२. पेऽभिधूमिते—क. मू.।
३. पे—क. मू.।
४. कं—क. मू.।
५. पे—क. मू.।
६. टं—क. मू.।
७. पे—क. मू.।
८. मण्डूकप्लवनगत्या—क. मू.।
९. प्राप्नोतीति पाठो नास्ति—ता. मू.।
१०. पवर्णचक्रम्—ता. मू.।

होने पर पवर्ग सिंह दृष्टि से यवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम य र ल व इन वर्णों से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिए। उत्तराधर प्रश्न वर्णों के होने पर प्रश्न आद्य पवर्ग गजावलोकन क्रम से अपने ही वर्ग को—पवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम प फ ब भ म इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिए। उत्तर स्वर-संयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर पवर्ग नद्यावर्त क्रम से शवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम श ष स ह इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिए। अधर स्वरसंयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर पवर्ग पन्नगगति से चवर्ग को प्राप्त होता है—वस्तु का नाम च छ ज झ ञ इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला समझना चाहिए। अधरोत्तर स्वरसंयुक्त उत्तर वर्णों के होने पर आद्य प्रश्नाक्षर पवर्ग अश्वमोहित क्रम से अवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त और संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य पवर्ग गजगति से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत प्रश्न के होने पर नद्यावर्त क्रम से टवर्ग को, अनभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर मण्डूकगति से पवर्ग तवर्ग को, दग्ध प्रश्न के होने पर सिंहदृशा गति से पवर्ग यवर्ग को और आलिंगित प्रश्न के होने पर पवर्ग अश्वगति से शवर्ग को प्राप्त होता है। जिस समय पवर्ग जिस वर्ग को प्राप्त होता है, उस समय वस्तु का नाम उसी वर्ग के अक्षरों पर समझना चाहिए।

शवर्ग चक्र विचार

शे[1] आलिङ्गिते कं[2] (नद्यावर्तेन) शेऽभि[3]धूमिते चं[4] शे दग्धे टं[5] गजगत्या, शे आलिङ्गिते उत्तराक्षरे उत्तरस्वरसंयुक्ते सिंहदृशा पं[6] शेऽभिघातिते[7] अं[8] मण्डूकप्लुत्या प्राप्नोति। इति शवर्गचक्रम्[9]।

अर्थ—प्रश्न का आद्य वर्ण आलिंगित शवर्ग का होने पर नद्यावर्त क्रम से शवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित शवर्ग का होने पर अश्वमोहित क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। द्रग्ध शवर्ग का होने पर गजगति से टवर्ग को शवर्ग प्राप्त करता है। आलिंगित शवर्ग के उत्तराक्षर उत्तरस्वर संयुक्त होने पर सिंहावलोकन क्रम से प्रश्न का शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग के अभिघातित होने पर मण्डूकप्लवन गति से प्रश्न का आद्य शवर्ग अवर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार शवर्ग चक्र का वर्णन हुआ।

विवेचन—शवर्ग चक्र का वर्णन करते हुए बताया गया है कि आलिंगित वेला के प्रश्न

---

१. शेऽलिङ्गते कं नांशेन—क. मू.।
२. कवर्ग—ता. मू.।
३. शेऽभिधूमिते चं अश्वगत्या—क. मू.।
४. ता वर्ग—ता. मू.।
५. टवर्ग—ता. मू.।
६. पवर्ग—ता. मू.।
७. शवर्गेऽभिघातिते—क. मू.।
८. अवर्ग—ता. मू.।
९. श वर्गचक्रम्—ता. मू.।

में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ग शवर्ग नद्यावर्त क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण शवर्ण अश्वमोहित क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। दग्ध वेला के प्रश्न में प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ग शवर्ग गजगति से टवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराक्षर उत्तर स्वरसंयुक्त प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ग शवर्ग सिंह दृष्टि की गति से पवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग के अभिघातित प्रश्न के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से अवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षरों में प्रश्न का आद्य शवर्ग टवर्ग को प्राप्त होता है। अधर मात्रा संयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर गजगति से प्रश्न का आद्य शवर्ग तवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तर मात्रा संयुक्त उत्तर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग सिंहावलोकन क्रम से कवर्ग को प्राप्त होता है। उत्तर मात्रा संयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग गजगति से अवर्ग को प्राप्त होता है। अधर मात्रा संयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर नद्यावर्त क्रम से शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तर मात्रासंयुक्त अधर वर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग अश्वमोहित क्रम से यवर्ग को प्राप्त होता है। अधरोत्तराधर मात्रासंयुक्त अधरवर्णों के प्रश्नाक्षर होने पर शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से अपने वर्ग–शवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग गजगति से कवर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग सिंहावलोकन क्रम से चवर्ग को प्राप्त होता है। संयुक्त प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग अश्वमोहित क्रम से टवर्ग को प्राप्त होता है। असंयुक्त और दग्ध प्रश्न वर्णों के होने पर मण्डूकप्लवन गति से शवर्ग कवर्ग को प्राप्त होता है।

ग्रन्थकारोक्त शवर्ग चक्र

अधरोत्त[1]रक्रमेण द्रष्टव्यम्। अभिहतेऽवर्गे उत्तराक्षरे पवर्गं, अधराक्षरे टवर्गमनभिहतेऽवर्ग[2]मुत्तराक्षरेऽधराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते[3] चवर्गे उत्तराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते[4] (अभिहते) चवर्गे उत्तराक्षरे चवर्गम्, अधराक्षरेऽवर्गम्, अनभिहते पवर्गे उत्तराक्षरेऽधराक्षरेऽधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति। अनभिहते 'श[5]' उत्तराक्षरे अधराक्षरे वाऽधरस्वरसंयुक्ते चवर्गं प्राप्नोति, द्वयोः सिंहावलोकनक्रमेण पश्यन्तः[6]। शवर्गश्च मण्डूकप्लुत्या स्ववर्गं प्राप्नोति। इति शवर्गचक्रम्।

अर्थ–अधरोत्तर क्रम से शवर्ग का विचार करना चाहिए। अभिहत अवर्ग उत्तराक्षरों में शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है। अधराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर टवर्ग को प्राप्त होता

---

१. अधरा अधरोत्तरक्रमेण द्रष्टव्याः–क. मू.।

२. अवर्गे–क. मू.।

३. अनभिहते-अभ्यतिवर्गे उत्तराक्षरे पवर्गं, कवर्गे उत्तराक्षरे शवर्गं, अधराक्षरे स्ववर्गं प्राप्नोति।

४. अभिहते च वर्गे उत्तराक्षरे अधरस्वरसंयुक्ते वा स्ववर्गं प्राप्नोति–क. मू.।

५. शवर्गे–ता. मू.।

६. पश्यतः–क. मू.। तुलना–वृ.ज्यो. ४।२६४–३०८।

है। अनभिहत अवर्ग उत्तराक्षर, अधराक्षर या अधर स्वरसंयुक्त वर्णों के होने पर स्ववर्ग को प्राप्त होता है।

अनभिहत चवर्ग उत्तराक्षर में या अधरस्वरसंयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न में शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत पवर्ग में उत्तराक्षर या अधराक्षर अथवा अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षर प्रश्न में शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अनभिहत शवर्ग उत्तराक्षर में या अधराक्षर में या अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षर में सिंहावलोकन क्रम से शवर्ग चवर्ग को प्राप्त होता है। शवर्ग मण्डूकप्लवन गति से स्ववर्ग को प्राप्त होता है। इस प्रकार शवर्ग चक्र पूर्ण हुआ।

विवेचन—यदि प्रश्नाक्षरों का आद्य वर्ण अभिहत संज्ञक हो तो शवर्ग पवर्ग को प्राप्त होता है अर्थात् प फ ब भ म इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला वस्तु का नाम होता है। अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य वर्ण शवर्ग टवर्ग को प्राप्त हो जाता है। ट ठ ड ढ ण इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला वस्तु का नाम समझना चाहिए। अनभिहत प्रश्नाक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है—श ष स ह इन वर्णों से प्रारम्भ होनेवाला वस्तु का नाम होता है।

अवर्ग के प्रश्नाक्षरों में प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अधराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर तथा अधर स्वरसंयुक्त अधराक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत प्रश्न में प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त करता है। चवर्ग उत्तराक्षर या अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य श वर्ग या प्रश्न का आद्य चवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराधर मात्राओं से संयुक्त उत्तराक्षर प्रश्नवर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गुणोत्तर मात्राओं से संयुक्त अधराधर प्रश्नवर्णों के होने पर सिंहावलोकन क्रम से शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त करता है।

अनभिहत, पवर्ग, उत्तराक्षर, अधराक्षर और अधर स्वरसंयुक्त उत्तराक्षरों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग या प्रश्न का आद्य पवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गजावलोकन क्रम से आलिंगित वेला के प्रश्न में अभिहत पवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य पवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। नद्यावर्त क्रम से आलिंगित वेला के प्रश्न में अभिहत टवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अश्वमोहित क्रम से आलिंगित वेला के प्रश्न में अभिहत कवर्ग या चवर्ग अथवा शवर्ग के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। मण्डूकप्लवन गति से आलिंगित वेला के प्रश्न में अभिहत तवर्ग या पवर्ग के होने पर प्रश्न का आद्य तवर्ग, पवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। अभिधूमित वेला के प्रश्न में अनभिहत चवर्ग या शवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर प्रश्न का आद्य चवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। गजावलोकन क्रम से अभिधूमित वेला के प्रश्न में प्रश्न का आद्य कवर्ग, अवर्ग या शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं। अभिधूमित वेला के प्रश्न में नद्यावर्त क्रम से प्रश्न का आद्य आलिंगित चवर्ग और टवर्ग अपने-अपने वर्ग को प्राप्त होते हैं। दग्ध वेला के प्रश्न में प्रश्न के आद्य पवर्ग, यवर्ग और तवर्ग सिंहावलोकन क्रम से स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं।

यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि इस समय के प्रश्न में प्रश्न का आद्य शवर्ग

चवर्ग को प्राप्त होता है। अभिहत उत्तराक्षर प्रश्न वर्णों के होने पर प्रश्न का आद्य शवर्ग या चवर्ग सिंहावलोकन क्रम से स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं। मण्डूकप्लवन गति से प्रश्न का आद्य शवर्ग स्ववर्ग को प्राप्त होता है। उत्तराधर संयुक्त आलिंगित प्रश्नवर्णों के होने पर सिंह दृष्टि से शवर्ग, टवर्ग या यवर्ग अपने स्ववर्ग को प्राप्त होते हैं।

चिन्तामणिचक्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
११२	१४१	१६८	१२६	२२४	२५२	२८०	३०८	३३६	३६४	३८२	४१०
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ
१५५	१८६	२१७	२४८	२७८	१६८	१९६	२२४	२५२	२८०	२१७	२५०
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
२८३	३१६	३४८	२२४	२५६	२८८	३०८	३३६	२८५	३१०	३३५	३६०
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	क्ष	०	०
३८५	२८०	३०८	३३६	३६४	३४३	३८२	४३२	४६४	५०५	०	०

वर्ग-नाम निकालने का सुगम नियम—अधर प्रश्न हो तो उक्त चिन्तामणि चक्र के अनुसार स्वर व्यंजनांक संख्या को योग कर ३० से गुणा करना, गुणनफल में २९ जोड़कर आठ से भाग देने पर शेष अवर्गादि जानना और उत्तर प्रश्न हो तो स्वर-व्यंजनांक संख्या का योग कर ६० से गुणा कर, गुणनफल में ५९ जोड़ने पर प्रश्न-पिण्ड होता है। इस प्रश्न-पिण्ड में आठ का भाग देने पर शेष नाम के प्रथमाक्षर का वर्ग होता है। पुनः प्रश्न पिण्ड में लब्ध को जोड़कर पाँच का भाग देने पर शेष नाम के प्रथमाक्षर का वर्ग होता है।

उदाहरण—मोहन का प्रश्नवाक्य 'सुमेरु पर्वत' है। यहाँ प्रश्नवाक्य का आद्यक्षर उत्तर वर्ण संज्ञक है, अतः प्रश्न उत्तरसंज्ञक माना जाएगा। इसका विश्लेषण किया तो—

स् + उ + म् + ए + रु + उ + प् + अ + र + व् + अ + त् + अ = स् + म् + र् + प् + र् + व् + त्=व्यंजनाक्षर; उ + ए + उ + अ + अ + अ = स्वराक्षर;

४३२ + ३८४ + ३०८ + २८५ + ३०८ + ३६४ + २२४ = २३०६ व्यंजनांक संख्या; २२४ + २८० + २२४ + ११२ + ११२ + ११२ = १०६४ स्वरांक संख्या; २३०६ + १०६४ = ३३७० प्रश्नाक्षरांक संख्या। ३३७० × ६० = २०२२०० + ५९ = २०२२५९ ÷ ८ = २५२८२ लब्ध, ३ शेष; चवर्ग हुआ अतः वस्तु के नाम का प्रथमाक्षर चवर्ग से प्रारम्भ होने वाला समझना चाहिए। पुनः २५२८२ + २०२२५९ = २२७४४१ ÷ ५ = ४५५०८ लब्ध, शेष १; अतः चवर्ग का प्रथमाक्षर नाम का होना चाहिए। एकादि शेष में वर्ग के एकादि वर्ण ग्रहण किये जाते हैं। इसलिए प्रस्तुत प्रश्न में चवर्ग का प्रथम अक्षर—च से वस्तु का नाम प्रारम्भ होता है।

प्रश्नाक्षरों की स्वर-व्यंजनांक संख्या में-से आलिंगित प्रश्न हो तो एक कम करने से, अभिधूमित हो तो दो कम करने से और दग्ध हो तो तीन कम करने से प्रश्नपिण्डांक संख्या

आती है। इस प्रश्न पिण्ड संख्या में ८ का भाग देने से शून्य शेष में अवर्ग, सात शेष में कवर्ग, छ शेष में चवर्ग, पाँच शेष में टवर्ग, चार शेष में तवर्ग, तीन शेष में पवर्ग, दो शेष में यवर्ग, एवं एक शेष में शवर्ग होता है। वर्ग का आनयन कर लेने के पश्चात् अक्षरानयन को निम्न सिद्धान्त से कहना चाहिए।

प्रश्न श्रेणी प्रश्नक्षरों में प्रथमाक्षर आलिंगित स्वरसंयुक्त हो तो जिस वर्ग का प्रश्न है, उसी वर्ग का प्रथमाक्षर जानना। अधराक्षर अधर स्वरसंयुक्त हो तो उस वर्ग का दूसरा अक्षर नामाक्षर होता है। उत्तराधर वर्ण दग्ध स्वरसंयुक्त हों तो उस वर्ग का तीसरा अक्षर, उत्तर वर्ण, अधर स्वरसंयुक्त हों तो उस वर्ग का प्रथम अक्षर नामाक्षर, प्रश्न में अभिघाताक्षर नामाक्षर हों तो उस वर्ग का पाँचवाँ अक्षर नामाक्षर, अभिहत प्रश्न हो तो उस वर्ग का चौथा अक्षर नामाक्षर, अनभिहत प्रश्न हो तो उस वर्ग का तीसरा अक्षर नामाक्षर, असंयुक्त प्रश्न हो तो उस वर्ग का दूसरा अक्षर नामाक्षर एवं संयुक्त प्रश्न हो तो उस वर्ग का प्रथम अक्षर नामाक्षर होता है।

नामाक्षर लाने की गणित-विधि यह है कि पूर्वोक्त विधि से सर्ववर्गांकानयन में जो प्रश्नपिण्ड आया है, उसमें वर्गांकानयन की लब्धि को जोड़कर पाँच का भाग देने पर एकादि शेष में उस वर्ग का प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण होता है।

उदाहरण—मोहन का प्रश्न वाक्य 'सुमेरु पर्वत' है। यहाँ प्रश्न वाक्य के प्रारम्भ में उकार की मात्रा है, अतः यह दग्ध प्रश्न माना जाएगा। प्रश्न वाक्य का विश्लेषण निम्न प्रकार हुआ—

स् + उ + म् + ए + रु + उ + प् + अ + र् + व् + अ + त् + अ = स + म् + र् + प् + र् + व् + त् =व्यंजनाक्षर; उ + ए + उ + अ + अ = स्वराक्षर या मात्राएँ।

नाम निकालने के लिए सर्ववर्गांकानयन चक्र

सर्ववर्गांकानयन के लिए विश्लेषण—सु + मे + रु + प + र्व + त = ५ + १० + ५ + ३ + ३ + ५ + ४ = ३५ प्रश्नांक संख्या। यहाँ दग्ध प्रश्न होने से तीन घटाया तो—३५ − ३ = ३२ प्रश्नपिण्डांक संख्या, ३२ ÷ ८=४ लब्ध, ० शेष, अतः अवर्ग का प्रश्न है—३२ + ४ = ३६ ÷ ५ = ७ लब्ध, १ शेष यहाँ पर आया। अतः आ से प्रारम्भ होनेवाला नाम समझना चाहिए।

चिन्तामणि चक्र और सर्ववर्गांकानयन चक्र इन दोनों के द्वारा किसी भी वस्तु का नाम जाना जा सकता है। चिन्तामणि चक्र अनुभूत है। इसके द्वारा सम्यक् गणित क्रिया करने पर वस्तु या चोर का नाम यथार्थ निकलता है।

आचार्य ने बिना गणित क्रिया के केवल आलिंगित, अभिधूमित और दग्ध इन तीन प्रकार के प्रश्नों के अनुसार बताया है कि प्रत्येक वर्ग पाँचों वर्गों में भ्रमण करता हुआ किसी निश्चित वर्ग को प्राप्त होता है। वस्तु या व्यक्ति का नाम भी उस वर्ग के नाम पर होता है।

गाथा

जो पढमो सो मरओ, जो मरओ सो होई अत्ति आ।
अत्तिल्लेसा पढमो डातण्णामं णत्थि संदेहो॥

॥इति केवलज्ञानप्रश्नचूडामणिः समाप्तः॥

●

परिशिष्ट-१

नक्षत्रों के नाम

अश्विनी, भरणी कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २७ नक्षत्र हैं। धनिष्ठा से रेवती तक पाँच नक्षत्रों में पंचक माना जाता है। अश्विनी, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल और रेवती इन पाँच नक्षत्रों में जन्मे बालक का मूल दोष माना जाता है। कोई-कोई मघा नक्षत्र को भी मूल में परिगणित करते हैं। आश्लेषा नक्षत्र को सर्पमूल और ज्येष्ठा को गण्डान्तमूल कहते हैं। मूल नक्षत्र के प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण का जन्म अशुभ माना जाता है। कोई-कोई अभिजित् को २८वाँ नक्षत्र मानते हैं। ज्योतिर्विदों का अभिमत है कि उत्तराषाढ़ा की अन्तिम १५ घटियाँ और श्रवण के प्रारम्भ की ४ घटियाँ, इस प्रकार १९ घटियों के मानवाला अभिजित् नक्षत्र होता है। यह समस्त कार्यों में शुभ माना गया है।

योगों के नाम

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृत ये २७ योग हैं।

करणों के नाम

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनी, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये ११ करण हैं। तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं।

समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य

जन्मनक्षत्र, जन्ममास, जन्मतिथि, व्यतीपातयोग, भद्रा, वैधृतियोग, अमावस्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, अधिकमास, कुलिक, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ योग की प्रथम पाँच

घटिकाएँ, परिघ योग का पूर्वार्ध, शूलयोग की प्रथम सात घटिकाएँ, गण्ड और अतिगण्ड की छः-छः घटिकाएँ एवं व्याघातयोग की प्रथम आठ घटिकाएँ, हर्षण और वज्र योग की नौ घटिकाएँ, व्यतीपात और वैधृतियोग समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य हैं। मतान्तर से विष्कम्भ के तीन दण्ड, शूल के पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड के सात दण्ड एवं व्याघात व वज्र योग के नौ दण्ड शुभ कार्यों में त्याज्य हैं। कृत्य चिन्तामणि के अनुसार शुभ कार्यों में साध्य योग का एक दण्ड, व्याघात योग के दो दण्ड, शूल योग के सात दण्ड, वज्र योग के छः दण्ड एवं गण्ड व अतिगण्ड के नौ दण्ड त्याज्य हैं।

सीमन्तोन्नयनमुहूर्त व चक्र

बृहस्पति, रवि और मंगलवार में; मृगशिर, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु और हस्त नक्षत्रों में; चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी और अमावास्या को छोड़कर अन्य तिथियों में; मासेश्वर के बल रहते, गर्भाधान से आठवें या छठे मास में; केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रहों (१।४।७।१०।५।९) के रहते; ग्यारहवें, छठे, तीसरे स्थान में क्रूर ग्रहों के रहते हुए; पुरुषसंज्ञक ग्रहों के लग्न अथवा नवांश में रहने पर सीमन्तोन्नयन कर्म श्रेष्ठ है। किसी-किसी आचार्य के मत से उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी और रेवती नक्षत्र में और चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र इन-इन वारों में सीमन्तोन्नयन करना शुभ है। तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण प्रत्येक दिन के प्रत्येक पंचांग में लिखे रहते हैं। अतः पंचांग देखकर प्रत्येक मुहूर्त निकाल लेना चाहिए।

नक्षत्र	मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त। मतान्तर से उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहणी, रेवती।
वार	गुरु, सूर्य, मंगल। मतान्तर से—चन्द्रमा, बुध, शुक्र।
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१३

पुंसवनमुहूर्त व चक्र

श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्र में, शुभ ग्रहों के दिन में; गर्भा धान से तीसरे मास में, शुभ ग्रहों से दृष्ट, युत वा शुभग्रह सम्बन्धी लग्न में और लग्न से आठवें स्थान में किसी ग्रह के न रहते, दोपहर के पूर्व पुंसवन करना चाहिए, इसमें सीमन्तोन्नयन के नक्षत्र भी लिये गये हैं।

नक्षत्र	श्रवण, रोहिणी, पुष्य—उत्तम। मृगशिरा, पुनर्वसु, हस्त, रेवती, मूल, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी—मध्यम।
वार	मंगल, शुक्र, सूर्य, बृहस्पति।
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३
लग्न	पुंसंज्ञक लग्न में, लग्न से १।४।५।७।९।१० इन स्थानों में शुभ ग्रह हों तथा चन्द्रमा १।६।८।१२ इन स्थानों में न हो और पापग्रह ३।६।११ में हों।

जातकर्म और नामकर्ममुहूर्त व चक्र

यदि किसी कारणवश जन्मकाल में जातकर्म नहीं किया गया हो तो अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पौर्णमासी, सूर्यसंक्रान्ति तथा चतुर्थी और नवमी छोड़कर अन्य तिथियों में, व्यतीपातादि दोषरहित शुभ ग्रहों के दिनों में, जन्मकाल में, ग्यारहवें या बारहवें दिन में, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में जातकर्म और नामकर्म करने चाहिए। जैन मान्यता के अनुसार नाम कर्म ४५ दिन तक किया जा सकता है।

नक्षत्र	शतभिषा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा।
वार	सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र।
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१३।
शुभलग्न	२।५।८।११।
लग्नशुद्धि	लग्न से १।५।७।९।१० इन स्थानों में शुभ ग्रह उत्तम है। ३।६।११ इन स्थानों में पापग्रह शुभ हैं। ८।१२ में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिए।

स्तनपान मुहूर्त व चक्र

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त चित्रा, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ लग्न में स्तनपान करना शुभ है।

नक्षत्र	अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद, रेवती।
वार	शुक्र, बुध, सोम, गुरु।

सूतिकास्नानमुहूर्त व चक्र

रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाति, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों में; रवि, मंगल और गुरुवार में प्रसूता स्त्री का स्नान कराना शुभ है। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा नक्षत्र में; बुध और शनिवार में; चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी तिथि में प्रसूता स्त्री को स्नान नहीं करना चाहिए।

नक्षत्र	रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, अनुराधा।
वार	सूर्य, मंगल, गुरु।
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१३
लग्नशुद्धि	पंचम सें कोई ग्रह न हो। १।४।७।१० में शुभ ग्रह हो।

दोलारोहण मुहूर्त व चक्र

रेवती, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र में तथा चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार में पहले-पहल बालक को पालने पर चढ़ाना शुभ है।

नक्षत्र	रेवती, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी।
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र।
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१२।१३।

भूम्युपवेशनमुहूर्त व चक्र

मंगल के वली होने पर, चौथ, नवमी, चतुर्दशी को छोड़कर अन्य तिथियों में, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्रों में बालक को भूमि में बैठाना चाहिए।

नक्षत्र	उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, मृगशिर, ज्येष्ठा, अनुराधा, अश्विनी, हस्त, पुष्य।
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र।
तिथि	१।२।३।५।७।१०।११।१२।१३

शिशु-निष्क्रमणमुहूर्त व चक्र

अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्रों में; प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावास्या और रिक्ता को छोड़कर शेष तिथियों में बालक को घर से बाहर निकालना शुभ है।

नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिर पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती और मतान्तर से उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, शतभिषा, मूल, रोहिणी।
तिथि	२।५।७।१०।१११३

अन्नप्राशनमुहूर्त व चक्र

प्रतिपदा, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी और अमावस्या तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में, जन्मराशि अथवा जन्म लग्न से आठवीं राशि, आठवाँ नवांश, मीन, मेष, और वृश्चिक को छोड़कर अन्य लग्न में, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में छठे मास से लेकर सम मास में अर्थात् छठे, आठवें, दसवें इत्यादि मासों में बालकों का और पाँचवें मास से लेकर विषम मासों में, अर्थात् पाँचवें, सातवें, नौवें इत्यादि मासों में कन्याओं का अन्नप्राशन शुभ होता है। परन्तु अन्नप्राशन शुक्ल पक्ष में दोपहर के पूर्व करना चाहिए।

अन्नप्राशन के लिए लग्न शुद्धि—लग्न से पहले, तीसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें और नौवें स्थान में शुभ ग्रह हों, दशवें स्थान में कोई ग्रह न हो, तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पाप ग्रह हों और लग्न, छठे और आठवें स्थान को छोड़ अन्य स्थानों में चन्द्रमा स्थित हो, ऐसे लग्न में अन्नप्राशन शुभ होता है।

नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी, अभिजित् पुनर्वसु, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर
वार	सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।१०।१३।१५
लग्न	२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।३।४।५।७।९। में; पापग्रह ३।६।११ स्थानों में चन्द्रमा ४।६।८।१२ में न हो।

शिशु-ताम्बूलभक्षणमुहूर्त व चक्र

मंगल और शनैश्चर को छोड़कर अन्य दिनों में; तीनों उत्तरा, रोहिणी मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाति और धनिष्ठा नक्षत्रों में, मिथुन, मकर, कन्या, कुम्भ, वृष, और मीन लग्न में; चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें, नौवें और लग्न स्थान में शुभ ग्रहों के रहते छठे, ग्यारहवें और तीसरे स्थान में पापग्रहों के रहते बालक का ताम्बूल भक्षण शुभ होता है।

नक्षत्र	उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, मूल,
	पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाति, धनिष्ठा।
वार	बुध, गुरु, शुक्र, सोम, सूर्य। लग्न—३।१०।६।११।२।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।४।५।७।९।१०। में, पापग्रह २।६।११। में शुभ होते हैं।

कर्णवेधमुहूर्त व चक्र

चैत्र, पौष, आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, जन्ममास, रिक्ता तिथि (४।९।१४) सम वर्ष और जन्मतारा को छोड़कर जन्म से छठे, सातवें, आठवें महीने में अथवा बारहवें या सोलहवें दिन, सोमवार, बुध, गुरु, शुक्र में और श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में बालक का कर्णवेध शुभ होता है।

नक्षत्र	श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य।
वार	सोम, बुध, गुरु शुक्र
तिथि	१।२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३।१५।
लग्न	२।३।४।६।७।६।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।३।४।५।७।६।१०।११ स्थानों में, पापग्रह ३।६।११ स्थानों में शुभ होते हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो। यदि गुरु लग्न में हो तो विशेष उत्तम होता है।

चूडाकर्म(मुण्डन)मुहूर्त व चक्र

जन्म से तीसरे, पाँचवें, सातवें, इत्यादि विषम वर्षों में, प्रतिपदा, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णमासी और सूर्यसंक्रान्ति को छोड़कर अन्य तिथियों में, चैत्र महीने को छोड़ उत्तरायण में, बुध, चन्द्र, शुक्र और बृहस्पतिवार में, शुभग्रहों के लग्न अथवा नवांश में, जिसका मुण्डन कराना हो उसके जन्मलग्न अथवा जन्मराशि से आठवीं राशि को छोड़कर अन्य ग्रहों के न रहते, ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में, लग्न से तृतीय, एकादश और षष्ठ स्थान में पापग्रहों के रहते मुण्डन कराना शुभ है।

नक्षत्र	ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा।
वार	सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र
तिथि	२।३। ५।७।१०।११।१३
लग्न	२।३।४।६।७।६।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।२।४।५।७।६।१० स्थानों में शुभ होते हैं। पापग्रह ३। ६।११ में शुभ हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो।

अक्षरारम्भमुहूर्त व चक्र

जन्म से पाँचवें वर्ष में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी तिथि में, उत्तरायण में, हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाति, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा, और अनुराधा नक्षत्र में, मेष, मकर, तुला और कर्क को छोड़कर अन्य लग्न में बालक को अक्षरारम्भ कराना शुभ है।

नक्षत्र	हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाति, रेवती, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा
वार	सोम, बुध, शुक्र, शनि
तिथि	२।३।५।६।१०।११।१२
लग्न	२।३।६।१२। लग्नों में परन्तु अष्टम में कोई ग्रह न हो।

विद्यारम्भमुहूर्त व चक्र

मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी) पुष्य, आश्लेषा, नक्षत्रों में रवि, गुरु, शुक्र इन वारों में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, तिथियों में और लग्न से पहिले, चौथे, पाँचवें, सातवें, नवमें, दशवें स्थान में शुभ ग्रहों के रहने पर विद्यारम्भ कराना शुभ है। किसी-किसी आचार्य के मत से तीनों उत्तरा, रेवती और अनुराधा में भी विद्यारम्भ शुभ कहा गया है।

नक्षत्र	मृगशिर, आर्द्रा पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, अश्विनी, मूल, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, पुष्य, आश्लेषा
वार	सूर्य, गुरु, शुक्र
तिथि	५।६।३।११।१२।१०।२

यज्ञोपवीतमुहूर्त व चक्र

हस्त, अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, मूल, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों पूर्वा, आर्द्रा नक्षत्रों में, रवि, बुध, शुक्र और सोमवार में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी और द्वादशी में यज्ञोपवीत धारण करना शुभ है।

नक्षत्र	हस्त, अश्विनी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, आर्द्रा।
वार	सूर्य, बुध, शुक्र, सोम, गुरु
तिथि	शुक्ल पक्ष में २।३।५।१०।११।१२। कृष्ण पक्ष में १।२।३।५
लग्नशुद्धि	लग्नेश ६।८ स्थानों में न हो, शुभग्रह १।४।७।५।९।१० स्थानों में शुभ होते हैं, पापग्रह ३।६।११ में शुभ होते हैं, परन्तु १।४।८ में पापग्रह शुभ नहीं होते हैं।

वाग्दान मुहूर्त

उत्तराषाढ़ा, स्वाति, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका, रोहिणी, रेवती, मूल, मृगशिर, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में वाग्दान-सगाई करना शुभ है।

विवाहमुहूर्त

मूल, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में और ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़ इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह का सामान्य दिन पंचांग में लिखा रहता है। अतः पंचांग के दिन को लेकर उस दिन वर-कन्या के लिए यह विचार करना—कन्या के लिए गुरुबल, वर के लिए सूर्यबल, दोनों के लिए चन्द्रबल देख लेना चाहिए।

गुरुबल विचार—बृहस्पति कन्या की राशि से नवम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ; दशम, तृतीय, षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

सूर्यबल विचार—सूर्य वर की राशि से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, प्रथम, द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

चन्द्रबल विचार—चन्द्रमा वर और कन्या की राशि से तीसरा, छठा, सातवाँ, दशवाँ, ग्यारहवाँ शुभ, पहिला, दूसरा, पाँचवाँ, नौवाँ, दान देने से शुभ और चौथा, आठवाँ, बारहवाँ अशुभ होते हैं।

विवाह में त्याज्य अन्धादि लग्न—दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर वधिर हैं तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या, मिथुन, कर्क अन्धसंज्ञक हैं। दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन ये दो लग्न पंगु होते हैं। किसी-किसी आचार्य के मत से धन, तुला, वृश्चिक ये अपराह्न में वधिर हैं, मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे हैं। सिंह, मेष, वृष लग्न दिन में अन्धे हैं और मकर, कुम्भ, मीन ये लग्न प्रातःकाल तथा सायंकाल में कुबड़े होते हैं।

अन्धादि लग्नों का फल—यदि विवाह वधिर लग्न में हो तो वर कन्या दरिद्र, दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा, रात्र्यन्ध लग्न में हो तो सन्ततिमरण और पंगु हो तो धननाश होता है।

लग्नशुद्धि—लग्न से बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और क्रूर ग्रह अच्छे नहीं होते। लग्नेश और सौम्य ग्रह आठवें में अच्छे नहीं होते हैं और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

ग्रहों का बल—प्रथम, चौथे, पाँचवें, नौवें और दसवें स्थान में स्थित बृहस्पति सब दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा वर्गोत्तम लग्न में स्थित नवांश दोष को नष्ट करता है। बुध लग्न से चौथे, पाँचवें, नौवें और दशवें स्थान में हो

तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में हो तो दो सौ दोषों को दूर करता है। यदि इन्हें स्थानों में बृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को नाश करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवांश का स्वामी आदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें, स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

वधूप्रवेशमुहूर्त व चक्र

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर नव, सात, पांच दिन में वधूप्रवेश शुभ है। यदि किसी कारण से १६ दिन के भीतर वधूप्रवेश न हो तो विषम मास, विषम दिन और विषम वर्ष में वधूप्रवेश करना चाहिए।

तीनों उत्तरा (उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ा) रोहिणी, अश्विनी, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाति नक्षत्र में रिक्ता (४।९।१४) छोड़ शुभ तिथियों में और रवि, मंगल, बुध छोड़ शेष वारों में वधूप्रवेश करना शुभ है।

नक्षत्र	उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, स्वाति
वार	सोम, गुरु, शुक्र, शनि
तिथि	१।२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।५।६।८।९।११।१२

द्विरागमनमुहूर्त व चक्र

विषम (१।३।५।७) वर्षों में; कुम्भ, वृश्चिक, मेष राशियों के सूर्य में, गुरु, शुक्र, चन्द्र, इन वारों में मिथुन, मीन, कन्या, तुला, वृष, इन लग्नों में और अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, मूल, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, इन नक्षत्रों में द्विरागमन शुभ है।

समय	१।३।५।७।९ विवाह के बाद इन वर्षों में, कुम्भ, वृश्चिक, मेष के सूर्य में
नक्षत्र	अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा
वार और तिथि	बुध, बृहस्पति, शुक्र, सोम, १।२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५ तिथियों में
लग्न और उनकी शुद्धि	२।३।६।७।१२ लग्नों में; लग्न से १।२।३।५।७।१०।११ स्थानों में शुभग्रह और ३।६।११ में पापग्रह शुभ होते हैं।

यात्रामुहूर्त व चक्र

रेवती, श्रवण, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा और मृगशिर नक्षत्रों में यात्रा करना शुभ है।

सब दिशाओं में यात्रा के लिए नक्षत्र—हस्त, पुष्य, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र चारों दिशाओं की यात्रा में शुभ होते हैं। परन्तु मंगल, बुध और शुक्रवार को दक्षिण नहीं जाना चाहिए।

वार शूल और नक्षत्र शूल—ज्येष्ठा नक्षत्र, सोमवार और शनिवार को पूर्व, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरुवार को दक्षिण, शुक्रवार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम एवं मंगल तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए। यात्रा में चन्द्रमा का विचार अवश्य करना चाहिए। दिशाओं में चन्द्रमा का वास निम्न प्रकार से जानना चाहिए।

चन्द्रवास विचार—मेष, सिंह और धन राशिका चन्द्रमा पूर्व दिशामें; वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में; तुला, मिथुन और कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में; कर्क, वृश्चिक और मीन का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

चन्द्रफल—सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करनेवाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख-सम्पत्ति देनेवाला, भाग का पृष्ठ चन्द्रमा शोक ताप देनेवाला और वाम चन्द्रमा धननाश करनेवाला होता है।

	अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती हस्त, श्रवण, धनिष्ठा उत्तम है।
नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा मध्यम हैं। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति, विशाखा निन्द्य हैं।
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३

चन्द्रवासकचक्र

पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर
मेष	मिथुन	वृष	कर्क
सिंह	तुला	कन्या	वृश्चिक
धनु	कुम्भ	मकर	मीन

समयशूलचक्र

पूर्व	प्रातःकाल
पश्चिम	सायंकाल
दक्षिण	मध्याह्नकाल
उत्तर	अर्धरात्रि

दिक्शूलचक्र

पूर्व	चन्द्र, शनि
दक्षिण	गुरु
पश्चिम	सूर्य, शुक्र
उत्तर	मंगल, बुध

योगिनीचक्र

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
तिथि	९।१	३।११	१३।५	१२।४	१४।६	१५।७	१०।२	३०।८

गृहनिर्माण मुहूर्त व चक्र

मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, हस्त, स्वाति, रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपद–इन नक्षत्रों में; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि–इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा–इन तिथियों में गृहारम्भ श्रेष्ठ होता है।

नक्षत्र	मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा, शतभिषा चित्रा, हस्त, स्वाति, रोहिणी, रेवती
वार	चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।१५
मास	वैशाख, श्रावण, माघ, पौष, फाल्गुन
लग्न	२।३।५।६।८।९।११।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह लग्न से १।४।७।१०।५।९–इन स्थानों में एवं पापग्रह ३।६।११–इन स्थानों में शुभ होते हैं। ८।१२ स्थान में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिए।

नूतनगृहप्रवेश मुहूर्त व चक्र

उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती–इन नक्षत्रों में; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी–इन तिथियों में गृहप्रवेश करना शुभ है।

नक्षत्र	उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती
वार	चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि
तिथि	२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३
लग्न	२।५।८।११ उत्तम हैं। ३।६।९।१२ मध्यम हैं।
लग्नशुद्धि	लग्न से १।२।३।५।७।९।१०। ११ स्थानों में शुभग्रह शुभ होते हैं ३।६।११–इन स्थानों में पापग्रह शुभ होते हैं। ४।८–इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए।

जीर्णगृहप्रवेशमुहूर्त व चक्र

शतभिषा, पुष्य, स्वाति, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी—इन नक्षत्रों में, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि—इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी—इन तिथियों में जीर्णगृहप्रवेश करना शुभ है।

नक्षत्र	शतभिषा, पुष्य, स्वाति, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी
वार	चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि
तिथि	२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३
मास	कार्तिक, मार्गशीर्ष, श्रावण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ

शान्तिक और पौष्टिक कार्य के मुहूर्त व चक्र

अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, अनुराधा, मघा—इन नक्षत्रों में; रिक्ता (४।९।१४), अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या इन तिथियों को छोड़ अन्य तिथियों में और रवि, मंगल, शनि—इन वारों को छोड़ शेष वारों में शान्तिक और पौष्टिक कार्य करना शुभ है।

नक्षत्र	अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, अनुराधा, मघा
वार	चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३

कुआँ खुदवाने का मुहूर्त व चक्र

हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, पूर्वाषाढ़ा—इन नक्षत्रों में, बुध, गुरु, शुक्र-इन वारों में और रिक्ता (४।९।१४) छोड़ सभी तिथियों में शुभ होता है।

नक्षत्र	हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, पूर्वाषाढ़ा
वार	बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५

दुकान करने का मुहूर्त व चक्र

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपद, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, अश्विनी—इन नक्षत्रों में तथा शुक्र, बुध, गुरु, सोम—इन वारों में और रिक्ता, (४।९।१४) अमावस्या छोड़ शेष तिथियों में दुकान करना शुभ है।

नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी हस्त. पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, अश्विनी
वार	शुक्र, गुरु, बुध, सोम
तिथि	२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३

बड़े-बड़े व्यापार करने का मुहूर्त व चक्र

हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, चित्रा—इन नक्षत्रों में; शुक्र, बुध, गुरु—इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी—इन तिथियों में बड़े-बड़े व्यापार सम्बन्धी कारोबार करना शुभ है।

नक्षत्र	हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, चित्रा
वार	बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।११।१३

वस्त्र और आभूषण ग्रहण करने का मुहूर्त व चक्र

रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों में; सोम, मंगल, शनि—इन दिनों को छोड़ शेष दिनों में और रिक्ता (४।९।१४) को छोड़ शेष तिथियों में नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करना शुभ है।

नक्षत्र	रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु
वार	बुध, गुरु, शुक्र, रवि
तिथि	२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५

जेवर बनवाने का मुहूर्त व चक्र

रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, चित्रा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, रोहिणी और त्रिपुष्कर योग का नक्षत्र तथा शुभ वारों में जेवर बनवाना शुभ है।

नक्षत्र	रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, रोहिणी
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।८।१०।११।१२।१३।१५

नमक बनाने का मुहूर्त व चक्र

भरणी, रोहिणी, श्रवण—इन नक्षत्रों में शनिवार को नमक बनाना शुभ है।

नक्षत्र	भरणी, रोहिणी, श्रवण। मतान्तर से—अश्विनी, पुष्य, हस्त
वार	शनिवार। मतान्तर से—रवि, मंगल, बुध
तिथि	१।२।३।४।५।७।८।९।१०।११।१३

राजा या मन्त्री से मिलने का मुहूर्त व चक्र

श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाति—इन नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र—इन वारों में राजा या मन्त्री से मिलना शुभ है।

नक्षत्र	श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाति
वार	रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।११।१३

बगीचा लगाने का मुहूर्त व चक्र

शतभिषा, विशाखा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य—इन नक्षत्रों में तथा शुक्र, सोम, बुध, गुरु—इन वारों में बगीचा लगाना शुभ है।

मास	वैशाख, श्रावण, मागशीर्ष, कार्तिक, फाल्गुन
नक्षत्र	शतभिषा, विशाखा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी हस्त, अश्विनी, पुष्य
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

हथियार बनाने का मुहूर्त व चक्र

कृत्तिका, विशाखा—इन नक्षत्रों में तथा मंगल, रवि, शनि—इन वारों में और शुभ ग्रहों के लग्नों में शस्त्र निर्माण करना शुभ होता है।

नक्षत्र	कृत्तिका, विशाखा
वार	मंगल, रवि, शनि

हथियार धारण करने का मुहूर्त व चक्र

पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, रोहिणी, मृगशिरा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रेवती, अश्विनी—इन नक्षत्रों में; रवि, शुक्र, गुरु—इन वारों में और रिक्ता (४।९।१४) छोड़ शेष तिथियों में हथियार धारण करना शुभ है।

नक्षत्र	पुष्य, पुनर्वसु हस्त, चित्रा, रोहिणी, मृगशिरा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी
वार	रवि, शुक्र, गुरु
तिथि	२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५

रोगमुक्त होने पर स्नान कराने का मुहूर्त व चक्र

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, रेवती—इन नक्षत्रों को छोड़ शेष नक्षत्रों में; रवि, मंगल, गुरु—इन वारों में और रिक्तादि तिथियों में रोगी को स्नान कराना शुभ है।

नक्षत्र	अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मृगशिरा, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्र, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल
वार	रवि, मंगल, बृहस्पति
तिथि	४।६।१४।३।५।७।१०।११
शुभलग्न	१।४।७।१०
लग्नशुद्धि	चन्द्रमा निर्बल हो। १।४।७।१०।६।५।२ इन स्थानों में ग्रह हो

कारीगरी सीखने का मुहूर्त व चक्र

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा—इन नक्षत्रों में; शुभ वार और शुभ तिथियों में कारीगरी करना शुभ होता है।

नक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२। ३।५।७।८।१०।१२।१३।१४

पुल बनाने का मुहूर्त व चक्र

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाति, मृगशिरा-इन नक्षत्रों में; गुरु, शनि, रवि—इन वारों में और स्थिर लग्नों में पुल बनाना शुभ है।

नक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाति, मृगशिरा
वार	गुरु, शनि, रवि
तिथि	शुक्लपक्ष में २।३।५।७।१०।११।१३
लग्नशुद्धि	२।५।८।११

खटिया बनवाने का मुहूर्त व चक्र

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा,

अश्विनी—इन नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ योग के होने पर खटिया बनाना शुभ होता है।

नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र। मतान्तर से रवि
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३

ऋण लेने का मुहूर्त व चक्र

स्वाति, पुनर्वसु, विशाखा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा—इन नक्षत्रों में ऋण लेना शुभ है। हस्त नक्षत्र, वृद्धियोग, रविवार इनका त्याग अवश्य करना चाहिए।

नक्षत्र	स्वाति, पुनर्वसु, विशाखा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा
वार	सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध
तिथि	२।३।४।५।७।९।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	१।४।७।१०
लग्नशुद्धि	५।८।९। इन स्थानों में ग्रह अवश्य हों

वर्षारम्भ में हल चलाने का मुहूर्त व चक्र

मूल, विशाखा, मघा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित—इन नक्षत्रों में हल चलाना शुभ है।

नक्षत्र	मूल, विशाखा, मघा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित
वार	सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।६।८।९।१२

बीज बोने का मुहूर्त व चक्र

मूल, मघा, स्वाति, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य—इन नक्षत्रों में बीज बोना शुभ है।

नक्षत्र	मूल, मघा, स्वाति, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

फसल काटने का मुहूर्त व चक्र

पूर्वाभाद्रपद, हस्त, कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, मृगशिरा, स्वाति, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, भरणी, चित्रा, पुष्य, मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा—इन नक्षत्रों में, सोम, बुध, गुरु, शुक्र, रवि—इन वारों में, स्थिर लग्नों में तथा शुभ तिथियों में फसल काटना शुभ है।

नक्षत्र	पूर्वाभाद्रपद, हस्त, कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, मृगशिरा, स्वाति, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, भरणी, चित्रा, पुष्य, मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा
वार	रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।५।८।११

नौकरी करने का मुहूर्त व चक्र

हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य—इन नक्षत्रों में; बुध, गुरु, शुक्र, रवि—इन वारों में और शुभ तिथियों में नौकरी करना शुभ है।

नक्षत्र	हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य।
वार	बुध, गुरु, शुक्र, रवि
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।

मुकद्दमा दायर करने का मुहूर्त व चक्र

ज्येष्ठा आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा—इन

नक्षत्रों में; तृतीया, पंचमी, अष्टमी, दशमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी—इन तिथियों में और रवि, बुध, गुरु, शुक्र—इन वारों में मुकद्दमा दायर करना शुभ है।

नक्षत्र	ज्येष्ठा, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा
वार	रवि, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	३।५।८।१०।१३।१५
लग्न	३।६।७।८।११
लग्नशुद्धि	सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र—ये ग्रह १।४।७।१० स्थानों में और पापग्रह ३।६।११ स्थानों में शुभ होते हैं, परन्तु अष्टम में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए।

जूता पहनने का मुहूर्त व चक्र

चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, अनुराधा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, मृगशिरा, विशाखा, कृत्तिका, मूल, रेवती—इन नक्षत्रों में और बुध, शनि, रवि—इन वारों में जूता पहनना शुभा होता है।

नक्षत्र	चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, मृगशिरा, विशाखा, कृत्तिका, मूल, रेवती
वार	बुध, शनि, रवि

औषध बनाने का मुहूर्त व चक्र

हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, पुनर्वसु, स्वाति, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा—इन नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र—इन वारों में औषध निर्माण करना शुभ है।

नक्षत्र	हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, पुनर्वसु, स्वाति, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा
वार	रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।५।७।८।१०।११।१३।१५
लग्न	१।२।४।५।७।८।१०।११

मन्त्र सिद्ध करने का मुहूर्त व चक्र

उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिरा—इन नक्षत्रों में; रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र—इन वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी त्रयोदशी, पूर्णिमा—इन तिथियों में मन्त्र सिद्ध करना शुभ होता है।

नक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिरा
वार	रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।१५

सर्वारम्भ मुहूर्त

लग्न से बारहवाँ और आठवाँ स्थान शुद्ध हो अर्थात् कोई ग्रह नहीं हो तथा जन्म लग्न व जन्म राशि से तीसरा, छठा, दसवाँ, ग्यारहवाँ लग्न हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभ ग्रह युक्त हो, चन्द्रमा जन्म लग्न व जन्म राशि से तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में हो, तो सभी कार्य प्रारम्भ करना शुभ होता है।

मन्दिर निर्माण का मुहूर्त

मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, भरणी, मघा—इन नक्षत्रों में तथा मंगल और बुधवार को मन्दिर के लिए नींव खुदवाना शुभ है। नींव खुदवाते समय में राहु[1] के मुख का त्याग करना आवश्यक है अर्थात् राहु के पृष्ठ भाग में नींव खुदवाना चाहिए।

पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, विशाखा, आर्द्रा, हस्त, रोहिणी और धनिष्ठा—इन नक्षत्रों में; द्वितीया तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी—इन तिथियों में एवं रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्र—इन वारों में नींव भरना तथा जिनालय निर्माण का कुल कार्य आरम्भ करना श्रेष्ठ है।

प्रतिमा निर्माण के लिए मुहूर्त

पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, हस्त, मृगशिरा, रेवती और अनुराधा—इन नक्षत्रों में; सोम, गुरु शुक्र—इन इन वारों में एवं

राहु की दिशा का ज्ञान—धनु, वृश्चिक, मकर के सूर्य में पूर्व दिशा में; कुम्भ, मीन, मेष के सूर्य में दक्षिण दिशा में; वृष मिथुन, कर्क के सूर्य में पश्चिम दिशा में एवं सिंह, कन्या, तुला के सूर्य में उत्तर दिशा में राहु का मुख रहता है। सूर्य की राशि पंचांग में लिखी रहती है।

द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी—इन तिथियों में प्रतिमा बनवाना शुभ है।

प्रतिष्ठा का मुहूर्त

अश्विनी, मृगशिरा, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद उत्तराषाढ़ा, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और स्वाति—इन नक्षत्रों में; सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में एवं कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और पंचमी तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा—इन तिथियों में प्रतिष्ठा करना शुभ है। प्रतिष्ठा के लिए वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये लग्न श्रेष्ठ हैं। लग्न स्थान से अष्टम में पापग्रह अनिष्टकारक होते हैं। प्रतिष्ठा करनेवाले की राशि से चन्द्रमा की राशि प्रतिष्ठा के दिन १।४।८।१२वीं न हो तथा प्रतिष्ठा की लग्न भी उस राशि से ८वीं न हो।

होमाहुति का मुहूर्त

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अभीष्ट तिथि तक गिनने से जितनी संख्या हो, उसमें एक और जोड़ें। फिर रविवार से लेकर इष्टवार तक गिनने से जितनी संख्या हो, उसको भी उसी में जोड़ें। जो संख्या आए, उसमें चार का भाग दें। यदि तीन या शून्य शेष रहे तो अग्नि का वास पृथ्वी में होता है, यह होम करनेवाले के लिए उत्तम होता है और यदि एक शेष रहे तो अग्नि का वास आकाश में होता है, इसका फल प्राणों को नाश करनेवाला कहा गया है। दो शेष में अग्नि का वास पाताल में होता है, इसका फल अर्थनाशक बताया गया है। इस प्रकार अग्नि वास देखकर होम करना चाहिए।

परिशिष्ट-२

जन्मपत्री बनाने की विधि

जन्मपत्री का सारा गणित इष्टकाल पर चलता है। अतः पहले इष्टकाल बनाने के नियम दिये जाते हैं। सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक के काल को इष्टकाल कहते हैं। इसके बनाने के लिए निम्न पाँच नियम हैं–

१. सूर्योदय से लेकर १२ बजे दिन के भीतर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना करने से घट्यादिरूप होता है।

उदाहरण–वि० सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७, गुरुवार की प्रातःकाल ९।३० पर किसी का जन्म हुआ है। इस नियम के अनुसार इष्टकाल बनाया तो–

९।३० जन्म समय में-से

६।१६ सूर्योदय घटाया जो पंचांग में लिखा है।

३।१४ इसे ढाई गुना किया तो $३\frac{१४}{६०} = \frac{६७}{३०}$;

$\frac{६७}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{७७}{१२} = ८\frac{९}{१२} \times \frac{६०}{१} = ८।५$ अर्थात् ८ घटी ५ फल इष्टकाल हुआ।

२. १२ बजे दिन से लेकर सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान से घटा देने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण–वि० सं० २००३ फाल्गुनी सुदी ७, गुरुवार को २।३० दिन का जन्म है। अतः ५।४४ सूर्यास्त में से

२।३० जन्म समय को घटाया

३।१४ इसका सजातीय रूप $३\frac{१४}{६०} = \frac{६७}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{६७}{१२} = ८\frac{९}{१२} \times \frac{६०}{१}$

२८।३८ दिनमान में $= ८।५$

८।५ आगत फल को घटाया

२०।३३ अर्थात् २० घटी ३३ पल इष्टकाल हुआ।

३. सूर्यास्त से लेकर १२ बजे रात के भीतर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्यास्त

काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिन मान में जोड़ देने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण—वि० सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७, गुरुवार को रात के १० बजकर ३० मिनट पर जन्म हुआ है।

अतः १०।३० जन्म समय में से

५।४४ सूर्यास्त को घटाया

४।४६ इसका सजातीय रूप किया तो $४\frac{४६}{६०} = \frac{१४३}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{७१५}{१२} =$

$= ११\frac{११}{२१} \times \frac{६०}{१} = ११।५५$ अर्थात् ११ घटी ५५ पल

२८।३८ दिनमान में

११।५५ आगत फल को जोड़ा

४०।२२ इष्टकाल हुआ।

४. रात के १२ बजे के बाद और सूर्योदय के पहले का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर ६० घटी में घटाने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण—सं २००३ फाल्गुन सुदी ७, गुरुवार को रात के ४।३० पर जन्म हुआ है।

अतः ६।१६ सूर्योदय काल में से

४।३० जन्म समय को घटाया

१।४६ इसका सजातीय रूप किया $१\frac{४६}{६०} = \frac{५३}{३०} \times \frac{५}{२} = \frac{५३}{१२}$

६०।० में से $= ४\frac{५}{१२} \times \frac{६०}{१} = ४।२५$

४।२५ आगत फल को घटाया

५५।३५ इष्टकाल हुआ।

५. सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक जितना घण्टा, मिनट का काल हो, उसे ढाई गुना कर देने पर इष्टकाल होता है।

उदाहरण—सं २००३ फाल्गुन सुदी ७, गुरुवार को दोपहर के ४।४८ पर जन्म हुआ है। अतः सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक १० घण्टा ४२ मिनट हुआ; इसका ढाई गुना किया तो २६ घटी ४५ पल इष्टकाल हुआ।

विशेष—विश्वपंचांग से या लेखक की 'भारतीय ज्योतिष' नामक पुस्तक के आधार से देशान्तर और वेलान्तर संस्कार कर इष्ट स्थानीय इष्टकाल बना लेना चाहिए। जो उपर्युक्त क्रियाओं को नहीं कर सकते हैं, उन्हें पहलेवाले नियमों के आधार पर-से इष्टकाल बना लेना चाहिए, किन्तु यह इष्टकाल स्थूल होगा।

भयात और भभोग साधन—यदि इष्टकाल से जन्म नक्षत्र के घटी, पल कम हों, तो जन्मनक्षत्र गत और आगामी नक्षत्र जन्मनक्षत्र कहलाता है तथा जन्मनक्षत्र के घटी, पल इष्टकाल के घटी पलों से अधिक हों, तो जन्मनक्षत्र के पहले का नक्षत्र गत और जन्मनक्षत्र ही वर्तमान या जन्मनक्षत्र कहलाता है। गत नक्षत्र के घटी, पलों को ६० में से घटाकर जो आए, उसे दो जगह रखना चाहिए। एक स्थान पर इष्टकाल को जोड़ देने से भयात और दूसरे स्थान पर जन्म नक्षत्र को जोड़ देने पर भभोग होता है।

उदाहरण—इष्टकाल ५५।३५ है, जन्मनक्षत्र कृत्तिका ५१।५ है। यहाँ इष्टकाल के घटी, पल, कृत्तिका जन्मनक्षत्र के घटी, पलों से अधिक है, अतः कृत्तिका गत और रोहिणी जन्मनक्षत्र कहलाएगा।

६०।०
५१।५ गत नक्षत्र को घटाया
८।५५ इसे दो स्थानों में रखा

८।५५ ८।५५
५५।३५ इष्टकाल जोड़ा ५६।२५ रोहिणी नक्षत्र जोड़ा

४।३० भयात (६० का भाग देकर शेष ग्रहण किया) ६५।२० भभोग रोहिणी

भभोग ६६ घटी तक आ सकता है, इससे अधिक होने पर ६० का भाग देकर लब्ध छोड़ दिया जाएगा, कहीं-कहीं भयात में ६३-६४ घटी तक ग्रहण किया जाता है।

जन्मनक्षत्र का चरण निकालने की विधि—भभोग में ४ का भाग देने से एक चरण के घटी, पल आते हैं। इन घटी पलों का भयात में भाग देने से जन्मनक्षत्र का चरण आता है।

उदाहरण— ६५।२० भभोग में ÷ ४ = १६।२० एक चरण के घटी पल। ४।३० भयात में ÷ १६।२० यहाँ भाग नहीं गया, अतः प्रथम चरण माना जाएगा। इसलिए रोहिणी के नक्षत्र के प्रथम चरण का जन्म है। शतपद चक्र में रोहिणी नक्षत्र के चारों चरण के अक्षर दिये हैं, इस बालक का नाम उनमें-से प्रथम अक्षर पर माना जाएगा, अतः 'ओ' अक्षर राशि का नाम होगा।

जन्मलग्न निकालने की सुगम विधि—जिस दिन का लग्न बनाना हो, उस दिन के सूर्य के राशि और अंश पंचांग में देखकर लिख लेने चाहिए। आगे दी गयी लग्न सारणी में राशि का कोष्ठक बायीं ओर तथा अंश का कोष्ठक ऊपरी भाग में है। सूर्य के जो राशि, अंश लिखे हैं उनका फल लग्नसारणी में—सूर्य की राशि के सामने और अंश के नीचे जो अंक संख्या मिले, उसे इष्टकाल में जोड़ दें; वही योग या उसके लगभग सारणी के जिस कोष्ठक में हो उसके बायीं ओर राशि का अंक और ऊपर अंश का अंक होगा। ये लग्न के राशि, अंश आएँगे। त्रैराशिक द्वारा कला, विकला का प्रमाण भी निकाला जा सकता है।

उदाहरण—सं० २००३ फाल्गुन सुदी ७, गुरुवार को २३।१३ इष्टकाल का लग्न निकालना है। इस दिन सूर्य १० राशि १५ अंश १७ कला ३० विकला लिखा है। लग्नसारणी में १० राशि के सामने और १५ अंश के नीचे ५७।१७।१७ अंक मिले। इन अंकों को इष्टकाल में जोड़ दिया।

५७।१७।१७ सारणी के अंकों में
२३।१३।० इष्टकाल जोड़ा
२०।३०।१७ अन्तिम संख्या में ६० का भाग देने पर जो लब्ध आता है उसे छोड़ देते हैं।

इस योग को पुनः लग्नसारणी में देखा तो उक्त योगफल कहीं नहीं मिला, किन्तु इसके आसन्न २०।२६।३ अंक ३ राशि के सामने और १६ अंक के नीचे मिले; अतः लग्न ३।१६ माना जाएगा।

जन्मपत्री लिखने की विधि

श्रीमानस्मानवतु भगवान् पार्श्वनाथः प्रियं वो
श्रेयो लक्ष्म्या क्षितिपतिगणैः सादरं स्तूयमानः।
भर्तुर्यस्य स्मरणकरणात्तेऽपि सर्वे विवस्वन्,
मुख्याः खेटा ददतु कुशलं सर्वदा देहभाजाम् ॥
आदित्याद्या ग्रहास्सर्वे सनक्षत्राः सराशयः।
सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

अथ श्रीमन्नृपतिर्विक्रमार्कराज्यात् २००३ शुभसंवत्सरे शालिवाहनशाके १८६८ श्रीवीरनिर्वाण २४७३ संवत्सरे मासानां मासोत्तमे मासे शुभे फाल्गुनमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ गुरुवासरे[१] विश्वपंचांगानुसारेण घट्यादयः ४७।३६ कृत्तिकानामनक्षत्रे घट्यादयः ५१।५ ऐन्द्रनामयोगे घट्यादयः १५।५६ पूर्वदले गरनामकरणे घट्यादयः २०।१ परदले बवनामकरणे घट्यादयः ४७।३६ अत्र सूर्योदया[२]दिष्टं घट्यादयः २३।१३ कुम्भार्कगतांशाः[३] १५, भोग्यांशाः १४ एवं पुण्यतिथौ पञ्चाङ्गशुद्धौ शुभग्रहनिरीक्षितकल्याणवत्यां वेलायां इन्दौरनगरे दिनप्रमाणं घट्यादयः २८।४३ रात्रिप्रमाणं घट्यादयः ३१।१७ उभयप्रमाणं ६०।०....वंशोद्भवानां...जैनाम्नाये...गोत्रे श्रीमान्.....तत्पुत्रः श्रीमान्.....तत्पुत्रः श्री.....अस्य पाणिगृहीतभार्यायां दक्षिणकुक्षौ पुत्ररत्नमजीजनत्। अत्रावक् होडाचक्रानुसारेण भयातः[४] घट्यादयः ४।३०, भभोगः घट्यादयः ६५।२०, तेन रोहिणीनक्षत्रस्य प्रथमचरणे ओकाराक्षरे जातत्वात् ओमूप्रकाश इति राशिनाम प्रतिष्ठितं स च जिनधर्मप्रसादाद्दीर्घायुर्भवतु। अत्र लग्नमानं ३।१६ कर्क लग्ने जन्म–

जन्मकुण्डली चक्र

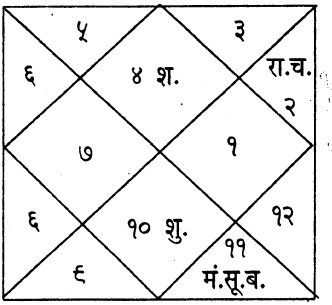

चन्द्रकुण्डली चक्र

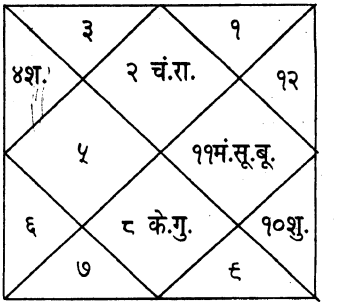

१. जिस पंचांग के घटी, पल लिखने हों, उसका नाम दे देना चाहिए। प्रत्येक दिन के तिथ्यादि के घटी, पल प्रत्येक पंचांग में लिखे रहते हैं।
२. जितना जन्म समय का इष्टकाल आया हो वह लिखना है।
३. जन्म दिन के सूर्य के अंशगत, और उन्हें २९ में से घटाने पर भोग्यांश आते हैं।
४. जो पहले भयात आया है, उसी को लिखना।

लग्नसारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
मे. ०	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६
	५०	५७	५	१३	२०	२८	३६	४४	५२	५९	७	१५	२३	३१	३९	४७	५५	४	९	१२	१९	२९	३७	४५	५४	२	११	१९	२८	३७	४६
	९	४७	२५	५	४८	३२	१८	६	०	४८	४२	३९	४७	३९	४१	४९	५७	९	२३	३९	१	२१	५८	३५	४६	२०	५८	३८	२२	९
वृ. १	६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	९	९०	९०	९०	९०	९०	९०	११	११	११
	५४	३	१२	२१	३०	३९	४९	५८	७	१७	२६	३५	४५	५४	४	१४	२४	३३	४३	५३	३	१३	२३	३४	४४	५४	४	१५	२५	३६
	५९	५२	४९	४७	५२	५९	११	२४	४०	१	२५	४३	२४	५९	३७	१९	४	४६	४२	४५	४३	४५	५१	०	१४	३०	४९	१३	३९	९
मि. २	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१७
	४६	५७	७	१८	२९	४०	५१	१	१२	२३	३४	४५	५६	८	१९	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४९	०	१२	२३	३५	४६	५८	९
	४१	१६	५५	३७	४२	९	१९	५१	४७	४५	४५	४८	५२	०	९	२०	३२	४९	५	२४	४४	६	२९	५३	१७	४५	१३	४२	११	४२
क. ३	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२
	२१	३२	४४	५५	७	१८	३०	४२	५३	५	१६	२८	३९	५१	२	१४	२६	३७	४९	०	१२	२३	३५	४६	५८	९	२०	३२	४३	५५
	१३	४४	१६	४९	२२	५५	२९	३	३८	१९	४४	२०	५२	२५	५८	३०	३	३७	६	३७	८	३७	१७	३५	४	३०	५६	२२	४७	११
सिं. ४	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८
	६	१७	२९	४०	५१	३	१४	२५	३७	४८	५९	१०	२२	३३	४४	५५	७	१८	२९	४०	५१	२	१३	२४	३६	४७	५८	९	२०	३१
	३४	५७	२७	३९	५९	१९	३९	५५	१२	२८	४४	५८	१२	२५	३८	४९	०	१०	२५	३६	४९	५१	५३	५९	६	१२	१७	२२	२७	३२
क. ५	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३४
	४२	५३	४	१५	२६	३७	४८	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५०	१	१२	२३	३५	४६	५७	९	१९	३०	४१	५२	४
	३६	४०	४६	४७	५०	५९	५७	०	५३	१	८	१३	४	२०	२४	२८	३३	३७	४३	४८	५४	०	७	१९	१०	२६	३५	४९	५९	११

लग्नसारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
तु. ६	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	३९
	१५	२६	३७	४९	०	११	२२	३४	४५	५६	८	१९	३०	४२	५३	४	९६	२७	३९	५०	१	१३	२४	३६	२३	४७	५९	१०	२२	३३	४५
	२२	३४	४८	२	१६	३१	४६	५	२१	४१	६	२०	३३	३	२५	४९	१३	३८	१३	३०	५६	२५	४३	२३	५२	२३	५४	२५	५७	२९
तु. ७	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४५	४५	४५	४५
	५७	८	२०	३१	४३	५४	६	१७	२९	४१	५२	४	१५	२७	३८	५०	१	१३	२४	३६	४७	५९	१०	२१	३३	४४	५५	७	१८	२९
	२	३५	८	४०	१६	४९	२२	५६	३१	४	३८	१९	४३	१६	४७	१८	४९	७	३०	१५	४३	७	३१	५४	१६	३६	५४	१३	३६	३९
घ. ८	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०
	४०	५२	३	१४	२५	३६	४७	५८	८	१९	३०	४१	५२	२	१३	२३	३४	४४	५५	५	१५	२५	३६	४६	५६	६	१६	२६	३५	४५
	५१	०	७	१२	१५	१५	१३	८	४१	५१	१८	२३	४	४४	१९	५१	२१	४७	१०	२९	४६	५९	९	१५	१७	१८	१४	६	५५	४१
म. ९	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५
	५५	५	१४	२४	३३	४२	५२	१	१०	२०	२९	३८	४७	५६	५	१३	२२	३१	४०	४८	५७	५	१४	२२	३०	३९	४७	५५	४	१२
	२२	१	३६	१७	३५	४९	१९	३६	४९	१	८	१३	११	८	१	५१	३८	२२	२	३९	१४	४५	२	३८	५९	२०	३७	५१	३	५१
कु.१०	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५९
	२०	२८	३६	४४	५२	०	७	१५	२३	३१	३९	४६	५४	२	९	१७	२४	३२	३९	४८	५५	२	९	१७	२४	३२	३९	४६	५४	९
	१७	२१	१३	२१	१८	२१	२३	५४	४२	२८	१२	५४	३४	१३	५०	१७	३२	५८	२८	४९	३३	५४	१९	४४	७	२४	५१	२	३२	
मी.११	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२
	८	१६	२३	३०	३८	४५	५२	०	७	१४	२१	२९	३६	४३	५१	५८	५	१३	२०	२७	३५	४२	५०	५७	४	११	२०	२७	३५	४२
	५२	११	१७	४८	६	१६	४२	०	१८	४०	५४	१२	४३	४९	८	२८	५८	९	३१	५३	१६	४०	५	२७	११	३२	२	२८	०	३४

विवेचन—जन्मकुण्डली चक्र लिखने की पद्धति यह है कि जो लग्न आता है, उसे पहले रखकर उससे आगे गणना कर १२ कोठों में १२ राशियों को रख देना चाहिए तथा पंचांग में जो-जो ग्रह जिस-जिस राशि के हों, उन्हें उस-उस राशि में रख देने पर जन्मकुण्डली चक्र बन जाता है। चन्द्रकुण्डली की विधि यह है कि चन्द्रमा की राशि को लग्न स्थान में स्थापित कर क्रमशः १२ राशियों को लिख देना चाहिए। फिर जो-जो गृह जिस-जिस राशि के हों। उन्हें उस-उस राशि में स्थापित कर देने पर चन्द्रकुण्डली चक्र बन जाता है।

जन्मकुण्डली और चन्द्रकुण्डली चक्र के बनाने के पश्चात् 'चमत्कारचिन्तामणि[1]' या 'मानसागरी' से नौ ग्रहों का फल लिखना चाहिए। फल लिखने की विधि यह है कि जो ग्रह जिस-जिस स्थान में हों, उसका फल उस-उस स्थान के अनुसार लिख देना चाहिए। जैसे प्रस्तुत उदाहरण कुण्डली में सूर्य लग्न से आठवें स्थान में है, अतः आठवें भाव का सूर्य का फल लिखा जाएगा। इस प्रकार समस्त ग्रहों का फल लिखने के पश्चात् सामान्य दर्जे की कुण्डली बनाने के लिए विंशोत्तरी दशा, अन्तर्दशा और उसका फल लिखना चाहिए। अच्छी कुण्डली बनाने के लिए केशवीयजातक पद्धति, जातकपारिजात, नीलकण्ठी, मानसागरी और भारतीय ज्योतिष प्रभृति ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

विंशोत्तरी दशा निकालने की विधि

इस दशा में परमायु १२० वर्ष मानकर ग्रहों का विभाजन किया गया है। सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की १० वर्ष, भौम की ७ वर्ष, राहु की १८ वर्ष, गुरु की १६ वर्ष, शनि की १९ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, केतु की ७ वर्ष और शुक्र की २० वर्ष की दशा बतायी गयी है।

जन्म नक्षत्रानुसार विंशोत्तरी दशा बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०
नक्षत्र	कृत्तिका उ. फाल्गुनी उ. षाढ़ा	रोहिणी हस्त श्रवण	मृगशिरा चित्रा धनिष्ठा	आर्द्रा स्वाति शतभिषा	पुनर्वसु विशाखा पू.भाद्रपद	पुष्य अनुरा. उ. भाद्र.	आश्लेषा ज्येष्ठा रेवती	मघा मूल अश्विनी	भरणी पू.फाल्गुनी पूर्वाषाढ़ा

इस चक्र का तात्पर्य यह है कि कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ा में जन्म होने से सूर्य की; रोहिणी, हस्त और श्रवण में जन्म होने से चन्द्रमा की; मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा में जन्म होने से मंगल की दशा में जन्म हुआ माना जाता है। इसी प्रकार आगे भी चक्र को समझना चाहिए।

दशा ज्ञात करने की एक सुगम विधि यह है कि कृत्तिका नक्षत्र से लेकर जन्मनक्षत्र

---

१. 'चमत्कारचिन्तामणि' में प्रत्येक ग्रह के द्वादश भावों का फल दिया है। जैसे सूर्य लग्न में हो तो क्या फल, धन स्थान में हो तो क्या फल इत्यादि। इसी प्रकार नौ ग्रहों के फल दिये हैं।

तक गिनकर जितनी संख्या हो, उसमें से नौ का भाग देने से एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र की दशा होती है।

दशासाधन

भयात और भभोग को पलात्मक बनाकर जन्मनक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा हो, उसके वर्षों से पलात्मक भयात को गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्ध आये, वह वर्ष और शेष को १२ से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध मास; शेष को पुनः ३० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध दिन; शेष को ६० से गुणा कर भाजक-पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध दिन; शेष को 60 से गुणा कर भाजक का भाग देने पर लब्ध पल आते हैं। ये वर्ष, मास, घटी, पल उस ग्रह से भुक्त कहलाते हैं, इन्हें ग्रह की दशा में से घटाने पर भोग्य वर्षादि आते हैं।

विंशोत्तरीदशा का चक्र बनाने की विधि

दशा चक्र बनाने की विधि यह है कि जिस ग्रह की भोग्य दशा जितनी आयी है, उसको रखकर क्रमशः सब ग्रहों के वर्षादि को स्थापित कर देना चाहिए। इन ग्रह वर्षों के नीचे एक कोष्ठक–खाना संवत् के लिए तथा इसके नीचे एक खाना जन्म-कालीन राश्यादि लिखने के लिए रहेगा। नीचे के खाने के सूर्य राश्यादि की भोग्य दशा के मासादि में जोड़ देना चाहिए और इस योगफल को नीचे के खाने के अगले कोष्ठक में रखना चाहिए; मध्यवाले कोष्ठक के संवत् को ग्रहों के वर्षों से जोड़कर आगे रखना चाहिए।

विंशोत्तरीदशा चक्र

ग्रह	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य
वर्ष	९	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	६
मास	३	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	२२	०	०	०	०	०	०	०	०
घटी	२	०	०	०	०	०	०	०	०
पल	२७	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
	२००३	२०१३	२०२०	२०३८	२०५४	२०७३	२०९०	२०९७	२११७
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
२	१०	२	२	२	२	२	२	२	२
७	१५	७	७	७	७	७	७	७	७
१९	१७	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
३७	१०	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७

नोट—विकला को दशा के पलों में, कला को घटियों में, अंशों को दिनों में और राशि को महीनों में जोड़ा गया है। जो वर्ष हासिल आएगा उसे ऊपर संकेत चिह्न लगाकर जोड़ देंगे।

विंशोत्तरी दशा का उदाहरण

प्रस्तुत उदाहरण में रोहिणी नक्षत्र का जन्म है, अतः चन्द्रमा की दशा में जन्म माना जाएगा—

भयात	भभोग
४।३०	६५।२०
× ६०	× ६०
२४० + ३०	३९०० + २०
= २७० पलात्मक भयात	= ३९२० पलात्मक भभोग

२७० × १० ग्रह दशा चन्द्रमा के वर्षों से गुणा किया=२७०० ÷ ३९२० (पलात्मक भभोग) से भाग दिया—

३९२०)२७००(०
०
२७०० × १२

३९२०)३२४००(८मास
३१३६०
१०४० × ३०

३९२०)३१२००(७ दिन
२७४४०
३७६० × ६०

३९२०)२२५६००(५७ घटी
१९६००
२९६००
२७४४०
२१६० × ६०

३९२०)१२९६००(३३ पल
११७६०
१२०००
११७६० = ०।८।७।57।३३ भुक्त वर्षादि

चन्द्रमा की कुल दशा १० वर्ष की होती है, अतः दशा में-से भुक्त वर्षादि को घटाया—

१० ।० ।० ।० ।०
० ।८ ।७ ।५७ ।३३
९ ।३ ।२२ । २ ।२७ भोग्य चन्द्र दशा वर्षादि

विंशोत्तरीदशा [जन्मपत्री में लिखने की विधि]

श्रीवीरजिनेश्वरगौतमगणधरसंवादे विंशोत्तरीदशायां चन्द्रशायाः भुक्तवर्षादयः ० ।८ ।७ ।५७। ३३ भोग्यवर्षादयः ९ ।३ ।२२ ।२ ।२७

अन्तर्दशाविचार

विंशोत्तरी की अन्तर्दशा निकलाने के लिए समय चक्र दिये जाते हैं। आगे इन्हीं चक्रों पर-से अन्तर्दशा लिखी जाएगी।

सूर्यान्तर चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चन्द्रान्तर चक्र

ग्रह	चं.	भौ.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
व	०	०	१	१	१	१	०	१	०
मा.	१०	७	६	४	७	५	७	८	६
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

भौमान्तर चक्र

ग्रह	भौ.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
व.	०	१	०	१	०	०	१	०	०
मा.	४	०	११	१	११	४	२	४	७
दि.	२	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राह्वन्तर चक्र

ग्रह	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.
व	२	२	२	२	१	३	०	१	१
मा.	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
दि.	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

गुर्वन्तर चक्र

ग्रह.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.
व.	२	२	२	०	२	०	१	०	२
मा.	१	६	३	११	८	९	४	११	४
दि.	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

शन्यन्तर चक्र

ग्रह.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.
व.	३	२	१	३	०	१	१	२	२
मा.	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
दि.	३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

बुधान्तर चक्र

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	श.
व.	२	०	२	०	१	०	२	२	२
मा.	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
दि.	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

केत्वन्तर चक्र

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	श.	बु.
व.	०	१	०	०	०	१	०	१	०
मा.	४	२	४	७	४	०	११	१	११
दि.	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

शुक्रान्तर चक्र

ग्रह	शु.	सू.	चं.	भौ.	रा.	गु.	श.	बु.	के.
व.	३	१	१	१	३	२	३	२	१
मा.	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की विधि

जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की प्रक्रिया यह है कि सबसे पहले जिस ग्रह की महादशा आती है, उसी की अन्तर्दशा लिखी जाती है। जिस ग्रह की अन्तर्दशा लिखनी हो, विंशोत्तरी के समान पहले खाने में उसके वर्षादि वाले चक्र को, मध्य के खाने में संवत् और

अन्तिम खाने में सूर्य के राशि, अंश को लिख लेना चाहिए। पश्चात् सूर्य के राशि और अंश को दशा के मास और दिन में जोड़ना चाहिए। दिन संख्या में ३० से अधिक होने पर ३० का भाग देकर लब्ध को मास संख्या में जोड़ देना चाहिए और मास संख्या में १२ सें अधिक होने पर १२ का भाग देकर लब्ध को वर्ष में जोड़ देना चाहिए। नीचे और ऊपर के खानों में जोड़ने के अनन्तर मध्यवाले में संवत् के वर्षों को जोड़कर रखना चाहिए।

जिस ग्रह की विंशोत्तरी दशा आयी है, उसका अन्तर निकालने के लिए उसके भुक्त वर्षों को अन्तर्दशा के ग्रहों के वर्षों में-से घटाकर तब अन्तर्दशा लिखनी चाहिए।

अन्तर्दशा का उदाहरण

प्रस्तुत उदाहरण में विंशोत्तरी दशा चन्द्र की आयी और इसके भुक्त वर्षादि०।८।७ हैं। चन्द्रान्तर चक्र में पहला अन्तर चन्द्रमा का १० माह है, अतः इसे इसमें से घटाया–

१०।०—८।७=१।२३ चन्द्रान्तर

चद्रान्तर्दशा चक्र (जन्मपत्री का)

ग्रह	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य
व.	०/	०	१	१	१	१	०	१	०
मा.	१	७	६	४	७	५	७	८	६
दिन	२३	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
२०१३	२००३	२००४	२००४	२००६	२००७	२००९	२०१०	१२०११	२०१२
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
२	१०	०	७	१	५	०	५	०	८
८	१५	८	८	८	८	८	८	८	८

भौमान्तर्दशा चक्र (जन्मपत्री का)

ग्रह	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०
मास	४	०	११	१	११	४	२	४	७
दिन	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
२०२०	२०१३	२०१३	२०१४	२०१५	२०१६	२०१७	२०१८	२०१९	२०१९
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
२	२	७	७	६	८	८	१	३	७
८	८	५	२३	२९	८	५	२	२	८

इसी प्रकार समस्त ग्रहों की अन्तर्दशा जन्मपत्री में लिखी जाती है।

विंशोत्तरीदशा और अन्तर्दशा का प्रयोजन

विंशोत्तरी महादशा और अन्तर्दशा की जन्मपत्री में बड़ी आवश्यकता रहती है इसके बिना कार्य के शुभाशुभ समय का ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में जातक का जन्म चन्द्रमा की महादशा में हुआ है और यह संवत् २०१३ के मिथुन राशि के सूर्य के आठवें अंश तक रहेगी। चन्द्रमा की महादशा में प्रथम १ माह २३ दिन तक चन्द्रमा की ही अन्तर्दशा है। आगे चन्द्रमा की महादशा में मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र और सूर्य की अन्तर्दशाएँ हैं। सूर्य के राशि अंश पंचांग में देखना चाहिए। दशा का फल विशेष रूप से जानना हो तो 'दशा फलदर्पण' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। सामान्य फल फलादेश प्रकरण में है।

विंशोत्तरी दशा का फल

व्यक्ति के शुभाशुभ समय का परिज्ञान दशा से ही किया जाता है। जिस समय जिस ग्रह की दशा रहती है, उस सयम उसी के शुभाशुभानुसार व्यक्ति को फल मिलता है।

दशाफल के नियम

लग्नेश की दशा में शारीरिक सुख और धनागम; धनेश की दशा में धनलाभ पर शारीरिक कष्ट होता है। यदि धनेश पाप ग्रह हो तो मृत्यु भी हो जाती है। तृतीयेश की दशा में रोग, चिन्ता और साधारण आमदनी; चतुर्थेश की दशा में मकान निर्माण, सवारी सुख, शारीरिक सुख, लाभेश और चतुर्थेश दोनों दशम या चतुर्थेश में हों, तो चतुर्थेश की दशा में मिल या बड़ा कारोबार, विद्यालाभ; पंचमेश की दशा में विद्या, धन, सन्तान, सम्मान, यश का लाभ और माता को कष्ट; षष्ठेश की दशा में शत्रुभय, रोगवृद्धि, सन्तान को कष्ट; सप्तमेश की दशा में स्त्री को पीड़ा; अष्टमेश की दशा में पाप ग्रह होने पर मृत्यु, अष्टमेश पाप ग्रह होकर द्वितीय में बैठा हो तो निश्चय मृत्यु; नवमेश की दशा में सुख, भाग्योदय, तीर्थयात्रा, धर्मवृद्धि; दशमेश की दशा में राजाश्रय, सुखोदय, लाभ, सम्मान प्राप्ति; एकादशेश की दशा में धनागम, पिता की मृत्यु और द्वादशेश की दशा में धनहानि, शारीरिक कष्ट, मानसिक चिन्ताएँ होती हैं।

अन्तर्दशा फल—पाप ग्रह की महादशा में पाप ग्रह की अन्तर्दशा धनहानि, कष्ट और शत्रुपीड़ाकारक होती है। २-जिस ग्रह की महादशा हो उससे छठे या आठवें स्थान में स्थिर ग्रहों की अन्तर्दशा स्थानच्युति, भयानक रोग, मृत्युतुल्य कष्टदायक होती है। ३—शुभ ग्रहों की महादशा में शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा श्रेष्ठ, शुभ ग्रहों की महादशा में पाप ग्रहों की अन्तर्दशा हानिकारक होती है। ४—शनि में चन्द्रमा और चन्द्रमा में शनि की अन्तर्दशा आर्थिक कष्टदायक होती है। ५—मंगल की अन्तर्दशा रोगकारक होती है। ६—द्वितीयेश, तृतीयेश, षष्ठेश, अष्टमेश और द्वादशेश की अन्तर्दशा अशुभ होती है।

जन्मपत्री देखने की संक्षिप्त विधि

जन्मपत्री में लग्न स्थान को प्रथम मान कर द्वादश स्थान होते हैं, जो भाव कहलाते हैं। इनके नाम ये हैं—तनु, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, शत्रु, कलत्र, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय—इन बारह भावों में बारह राशियाँ और नवों ग्रह रहते हैं। ग्रह और राशियों के स्वरूप के अनुसार इन भावों का फल होता है।

राशियों के नाम—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन।

राशियों के स्वामी या राशीश—मेष, वृश्चिक का स्वामी मंगल;, वृष, तुला का स्वामी शुक्र; मिथुन, कन्या का स्वामी बुध; कर्क का स्वामी चन्द्रमा; सिंह का स्वामी सूर्य; धनु, मीन का स्वामी बृहस्पति और मकर, कुम्भ का स्वामी शनि होता है।

ग्रहों की उच्च राशियाँ—सूर्य मेष राशि में, चन्द्रमा वृष में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, बृहस्पति कर्क में, शुक्र मीन में, शनि तुला में उच्च का होता है।

ग्रहों का शत्रुता-मित्रताबोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र, मंगल गुरु	रवि, बुध मंगल, गुरु	रवि, चन्द्र गुरु	रवि, शुक्र मंगल गुरु	चन्द्र, मंगल रवि	बुध, शनि	शुक्र, बुध
सम	बुध	शनि, शुक्र शनि, शुक्र	शुक्र, शनि	शनि	शनि	मंगल, गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र,शनि	×	बुध	चन्द्र	शुक्र, बुध	रवि, चन्द्र	रवि, चन्द्र मंगल

ग्रहों का स्वरूप

सूर्य—पूर्व दिशा का स्वामी, रक्तवर्ण, पुरुष, पित्तप्रकृति और पापग्रह है। सूर्य, आत्मा, राजभाव, आरोग्यता, राज्य और देवालय का सूचक तथा पितृकारक है। पिता के सम्बन्ध में सूर्य से विचार किया जाता है। नेत्र, कलेजा, स्नायु और मेरुदण्ड पर प्रभाव पड़ता है। लग्न से सप्तम में बली और मकर से ६ राशि पर्यन्त चेष्टाबली होता है।

चन्द्रमा—पश्चिमोत्तर दिशा का स्वामी, स्त्री, श्वेतवर्ण, वातश्लेष्मा प्रकृति और जल ग्रह है। यह माता, चित्तवृत्ति, शारीरिक पुष्टि, राजानुग्रह, सम्पत्ति और चतुर्थ स्थान का कारक है। चतुर्थ स्थान में बली और मकर से छः राशि में इसका चेष्टाबल होता है। सूर्य के साथ रहने से निष्फल होता है। नेत्र, मस्तिष्क, उदर और मूत्रस्थली का विचार चन्द्रमा से किया जाता है।

मंगल—दक्षिण दिशा का स्वामी, पित्त प्रकृति, रक्तवर्ण, अग्नितत्त्व है। यह स्वभावतः पापग्रह है, धैर्य तथा पराक्रम का स्वामी है। तीसरे और छठे स्थान में बली और द्वितीय स्थान में निष्फल होता है। दसवें स्थान में दिग्बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है।

बुध—उत्तर दिशा का, स्वामी, नपुंसक, त्रिदोष, श्यामवर्ण और पृथ्वी तत्त्व है। यह पापग्रहों—सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु के, साथ रहने से अशुभ और शेष ग्रहों के साथ रहने से शुभ होता है। इससे जिह्वा, कण्ठ और तालु का विचार किया जाता है।

गुरु—पूर्वोत्तर दिशा का स्वामी, पुरुष और पीतवर्ण है। यह लग्न में बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है। सन्तान और विद्या का विचार इससे होता है।

शुक्र—दक्षिण पूर्व का स्वामी, स्त्री और रक्तगौर वर्ण है। इसके प्रभाव से जातक का रंग गेहुआँ होता है। दिन में जन्म होने पर शुक्र से माता का भी विचार किया जाता है।

शनि—पश्चिम दिशा का स्वामी, नपुंसक, वातश्लेष्मिक प्रकृति और कृष्णवर्ण है। सप्तम स्थान में बली होता है, वक्र और चन्द्रमा के साथ रहे से चेष्टाबली होता है।

राहु—दक्षिण दिशा का स्वामी, कृष्णवर्ण और क्रूर ग्रह है।

केतु—कृष्ण वर्ण और क्रूर ग्रह है। इससे चर्म रोग, हाथ, पाँव का विचार किया जाता है।

विशेष—यद्यपि बृहस्पति और शुक्र दोनों शुभ ग्रह हैं, पर शुक्र से सांसारिक और व्यावहारिक सुखों का तथा गुरु से पारलौकिक एवं आध्यात्मिक सुखों का विचार करते हैं। शुक्र के प्रभाव से व्यक्ति स्वार्थी और गुरु के प्रभाव से परमार्थी होता है।

शनि और मंगल दोनों ही पाप ग्रह हैं, पर शनि का अन्तिम परिणाम सुखद होता है, यह दुर्भाग्य और यन्त्रणा के फेर में डालकर व्यक्ति को शुद्ध कर देता है। परन्तु मंगल उत्तेजना देने वाला, उमंग और तृष्णा से परिपूर्ण कर देने के कारण सर्वदा दुःखदायक है।

ग्रहों के बलाबल का विचार

ग्रहों के छः प्रकार के बल बताये गये हैं—स्थानबल, दिग्बल, कालबल, नैसर्गिकबल, चेष्टाबल और दृग्बल।

स्थानबल—जो ग्रह उच्च, स्वगृही, मित्रगृही, मूलत्रिकोणस्थ, स्वनवांशस्थ अथवा द्रेष्काणस्थ होता है, वह स्थान बली होता है।

दिग्बल—बुध और गुरु लग्न में रहने, शुक्र एवं चन्द्रमा चतुर्थ में रहने से, शनि सप्तम में रहने से एवं सूर्य और मंगल दशम स्थान में रहने से दिग्बली होते हैं।

कालबल—रात में जन्म होने पर चन्द्र, शनि और मंगल तथा दिन में जन्म होने पर सूर्य, बुध और शुक्र कालबली होते हैं।।

नैसर्गिक बल—शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र व सूर्य उत्तरोत्तर बली होते हैं।

चेष्टाबल—मकर से मिथुन पर्यन्त किसी भी राशि में रहने से सूर्य और चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के साथ रहने से मंगल, बुध गुरु, शुक्र और शनि चेष्टाबली होते हैं।

दृग्बल–शुभ ग्रहों से दृष्ट ग्रह दृग्बली होते हैं।

बलवान ग्रह अपने स्वभाव के अनुसार जिस भाव में रहता है, उस भाव का फल देता है। पाठकों को ग्रहस्वभाव और राशिस्वभाव का समन्वय कर फल कहना चाहिए।

राशि-स्वरूप

मेष–पुरुष, चरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, पूर्वदिशा की स्वामिनी, पृष्ठोदय, रक्त-पीत वर्ण, क्षत्रिय और उग्र प्रकृति है। इस राशि वालों का स्वभाव साहसी, अभिमानी और मित्रों पर कृपा रखने वाला होता है। इससे मस्तक का विचार करते हैं।

वृष–स्त्री, स्थिरसंज्ञक, शीतलस्वभाव, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, वैश्य, विषमोदयी और श्वेत वर्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव, स्वार्थी, समझ-बूझकर काम करने वाला और सांसारिक कार्यों में दक्ष होता है। मुख और कपोलों का विचार इससे होता है।

मिथुन–पश्चिम दिशा की स्वामिनी, हरित वर्ण, शूद्र, पुरुष, द्विस्वभाव और उष्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव अध्ययनशील और शिल्पी है। इससे कन्धे और बाहुओं का विचार होता है।

कर्क–चर, स्त्री, सौम्य और कफ प्रकृति, उत्तर दिशा की स्वामिनी, लाल और गौर वर्ण है। इसका प्राकृतिक स्वभाव सांसारिक उन्नति में प्रयत्नशीलता, लज्जा, कार्यस्थैर्य और समयानुयायिता का सूचक है। इससे वक्षस्थल और गुर्दे का विचार करते हैं।

सिंह–पुरुष, स्थिर, पित्तप्रकृति, क्षत्रिय और पूर्व दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मेष-जैसा है, पर तो भी स्वातन्त्र्य, प्रेम और उदारता विशेष रूप से वर्तमान है। इससे हृदय का विचार किया जाता है।

कन्या–पिंगलवर्ण, स्त्री, द्विस्वभाव, वायु-शीत प्रकृति, दक्षिण दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मिथुन जैसा है; पर अपनी उन्नति और मान पर पूर्ण ध्यान रखने की इच्छा का सूचक है। इससे पेट का विचार किया जाता है।

तुला–पुरुष, चर, वायु, श्याम, शूद्र और पश्चिम दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, ज्ञानप्रिय, कार्यज्ञ और राजनीतिज्ञ है। इससे नांभि के नीचे के अंगों का विचार किया जाता है।

वृश्चिक–स्थिर, शुभ्र, स्त्री, कफ, ब्राह्मण और उत्तर दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव दम्भी, हठी, दृढ़प्रतिज्ञ, स्पष्टवादी और निर्मल चित्त है, इससे जननेन्द्रिय का विचार किया जाता है।

धनु–पुरुष, कांचनवर्ण, द्विस्वभाव, क्रूर, पित्त, क्षत्रिय और पूर्व दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव अधिकारप्रिय, करुणामय और मर्यादा का इच्छुक होता है। इससे पैरों की सन्धि और जंघाओं का विचार किया जाता है।

मकर–चर, स्त्री, वातप्रकृति, पिंगलवर्ण, वैश्य और दक्षिण की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उच्चाभिलाषी है, इससे घुटनों का विचार किया जाता है।

कुम्भ–पुरुष, स्थिर, वायुतत्त्व, विचित्रवर्ण, शूद्र, क्रूर एवं पश्चिम दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, शान्तचित्त, धर्म और नवीन बातों का आविष्कारक है। इससे पिंडली का विचार करते हैं।

मीन–द्विस्वभाव, स्त्री, कफप्रकृति, पिंगल वर्ण, विप्र और उत्तरदिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उत्तम, दयालु और दानशील है। इससे पैरों का विचार किया जाता है।

ग्रहों की दृष्टि–अपने से तीसरे और दसवें स्थान को एकपाद दृष्टि से, पाँचवें और नौवें को दोपाद दृष्टि से, चौथे और आठवें को तीनपाद दृष्टि से और सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। मंगल चौथे और आठवें स्थान को, शनि तीसरे और छठे स्थान को तथा गुरु पांचवें और नौवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है।

द्वादश भावों के संक्षिप्त फल

प्रथम भाव या लग्न विचार–प्रथम भाव से शरीर की आकृति, रूप आदि का विचार किया जाता है। इस भाव में जिस प्रकार की राशि और ग्रह होंगे, जातक का शरीर और रूप भी वैसा ही होगा। शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में विचार करने के लिए ग्रह और राशियों के तत्त्व नीचे दिये जाते हैं–

ग्रहों के स्वभाव और तत्त्व

१ सूर्य	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व
२ चन्द्र	जलग्रह	जलतत्त्व
३ मंगल	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व
४ बुध	जलग्रह	पृथ्वीतत्त्व
५ गुरु	जलग्रह	आकाश या तेजतत्त्व
६ शुक्र	जलग्रह	जलतत्त्व
७ शनि	शुष्कग्रह	वायुतत्त्व

राशियों के तत्त्व तथा उनका विवरण

१ मेंष	अग्नि (तत्त्व)	पादजल $\left(\frac{१}{४}\right)$	ह्रस्व (आकार)
२ वृष	पृथ्वी	अर्द्धजल $\left(\frac{१}{२}\right)$	ह्रस्व
३ मिथुन	वायु	निर्जल(०)	सम
४ कर्क	जल	पूर्णजल (१)	सम
५ सिंह	अग्नि	निर्जल (०)	दीर्घ

६ कन्या	पृथ्वी	निर्जल (०)	दीर्घ
७ तुला	वायु	पादजल $\left(\frac{१}{४}\right)$	दीर्घ
८ वृश्चिक	जल	पादजल $\left(\frac{१}{४}\right)$	दीर्घ
९ धनु	अग्नि	अर्द्धजल $\left(\frac{१}{२}\right)$	सम
१० मकर	पृथ्वी	पूर्णजल (१)	सम
११ कुम्भ	वायु	अर्द्धजल $\left(\frac{१}{२}\right)$	ह्रस्व
१२ मीन	जल	पूर्णजल (१)	ह्रस्व

उपर्युक्त संज्ञाओं पर से शारीरिक स्थिति ज्ञात करने के नियम

१. लग्न जलराशि हो और उसमें जलग्रह की स्थिति हो तो जातक का शरीर मोटा होगा।

२. लग्न और लग्नेश जलराशि गत होने से शरीर खूब मोटा होता है।

३. यदि लग्न अग्निराशि हो और अग्नि ग्रह उसमें स्थित हो तो शरीर दुबला, पर मनुष्य बली होता है।

४. अग्नि या वायुराशि लग्न हो और लग्नेश पृथ्वीराशि गत हो तो हड्डियाँ साधारणतः मजबूत होती हैं और शरीर ठोस होता है।

५. यदि अग्नि या वायुराशि लग्न हो और लग्नेश जलराशि में हो तो शरीर स्थूल होता है।

६. लग्न वायु राशि हो और उसमें वायु ग्रह स्थित हो तो जातक दुबला, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाला होता है।

७. लग्न पृथ्वीराशि हो और उसमें पृथ्वी ग्रह स्थित हो तो शरीर नाटा होता है।

८. पृथ्वी राशि लग्न हो और लग्नेश पृथ्वीराशि गत हो तो शरीर स्थूल और दृढ़ होता है।

९. पृथ्वी राशि लग्न हो और लग्नेश जलराशि में हो तो शरीर साधारणतः स्थूल होता है। लग्न की राशि ह्रस्व, दीर्घ या सम जिस प्रकार की हो, उसके अनुसार जातक के शरीर की ऊँचाई होती है।

लग्नेश[1] और लग्न राशि के स्वरूप के अनुसार जातक के रूप–वर्ण का निश्चय करना चाहिए। मेष लग्न में लाल मिश्रित सफेद, बृष में पीला मिश्रित सफेद, मिथुन में गहरा लाल मिश्रित सफेद, कर्क में नीला, सिंह में धूसर, कन्या में घनश्याम, तुला में लाल मिश्रित कृष्ण, वृश्चिक में बादामी, धनु में पीत, मकर में चितकबरा, कुम्भ में नील और मीन में गौर वर्ण

१. लग्न स्थान की राशि का स्वामी

होता है। सूर्य से रक्तश्याम, चन्द्र से गौर, मंगल से रक्तवर्ण, बुध से दूर्वादल के समान श्यामल, गुरु से कांचनवर्ण, शुक्र से श्यामल, शनि से कृष्ण, राहु से कृष्ण और केतु से धूमिल वर्ण का जातक को समझना चाहिए। लग्न तथा लग्नेश पर पाप ग्रह की दृष्टि होने से कुरूप एवं बुध, शुक्र के एक साथ कहीं भी रहने से गौरवर्ण न होने पर भी जातक सुन्दर होता है।

रवि लग्न में हो तो आँखें सुन्दर नहीं होंगी, चन्द्रमा लग्न में हो तो गौरवर्ण होते हुए भी सुडौल नहीं होता; मंगल लग्न में हो तो शरीर सुन्दर होता है, पर चेहरे पर सुन्दरता में अन्तर डालने वाला कोई निशान होता है; बुध लग्न में हो तो चमकदार साँवला रंग और कम या अधिक चेचक के दाग होते हैं; गुरु लग्न में हो तो गौरवर्ण और शरीर सुडौल होता है; किन्तु कम आयु में ही वृद्ध बना देता है, सफेद बाल जल्द होते हैं, ४५ वर्ष की आयु में दाँत गिर जाते हैं, मेद वृद्धि में पेट बड़ा होता है; शुक्र लग्न में हो तो शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है, शनि लग्न में हो तो कुरूप एवं राहु केतु के लग्न में रहने से चेहरे पर काले दाग होते हैं। शरीर के रूप का विचार करते समय ग्रहों की दृष्टि का अवश्य आश्रय लेना चाहिए। लग्न में क्रूर ग्रहों के रहने पर भी शुभ की दृष्टि होने से व्यक्ति सुन्दर होता है। इसी प्रकार पाप ग्रहों की दृष्टि होने से सुन्दरता में कमी आती है।

द्वितीय भाव विचार—इससे धन का विचार किया जाता है। इसका विचार द्वितीयेश[1], द्वितीय भाव की राशि और इस स्थान पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों के सम्बन्ध से करना चाहिए। द्वितीयेश शुभ ग्रह हो या द्वितीय भाव में शुभ ग्रह की राशि[2] हो और उसमें शुभ ग्रह बैठा हो तथा शुभ ग्रहों की द्वितीय भाव पर दृष्टि हो तो व्यक्ति धनी होता है। कुछ धनी योग नीचे दिये जाते हैं—

धनी योग

१ भाग्येश[3] व लाभेश	८ दशमेश व चतुर्थेश	१५ लाभेश व पंचमेश
२ भाग्येश व दशमेश	९ दशमेश व लग्नेश	१६ लग्नेश व धनेश
३ भाग्येश व चतुर्थेश	१० दशमेश व पंचमेश	१७ लग्नेश व चतुर्थेश
४ भाग्येश व पंचमेश	११ दशमेश व धनेश	१८ लग्नेश व पंचमेश
५ भाग्येश व लग्नेश	१२ लाभेश व धनेश	१९ धनेश व चतुर्थेश
६ भाग्येश व धनेश	१३ लाभेश व चतुर्थेश	२० धनेश व पंचमेश
७ दशमेष व लाभेश	१४ लाभेश व लग्नेश	२१ चतुर्थेश व पंचमेश

१. द्वितीय स्थान में रहने वाली राशि का स्वामी।

२. जिन राशियों के स्वामी शुभ ग्रह हैं, वे राशियाँ।

३. भाग्यस्थान—९वें भावका स्वामी और लाभस्थान—११वें भाव का स्वामी, एक जगह हों।

दारिद्र्य योग

१ षष्ठेश और धनेश	८ व्ययेश और पंचमेश	१५ व्ययेश और दशमेश
२ षष्ठेश और लग्नेश	९ व्ययेश और सप्तमेश	१६ षष्ठेश और पंचमेश
३ षष्ठेश और चतुर्थेश	१० षष्ठेश और भाग्येश	१७ षष्ठेश और सप्तमेश
४ कर्मेश और चतुर्थेश	११ व्ययेश और भाग्येश	१८ षष्ठेश और लाभेश
५ कर्मेश और धनेश	१२ षष्ठेश और तृतीयेश	१९ कर्मेश और लाभेश
६ व्ययेश और लग्नेश	१३ व्ययेश और तृतीयेश	२० कर्मेश और अष्टमेश
७ षष्ठेश और दशमेश	१४ षष्ठेश और कर्मेश	२१ षष्ठेश और व्ययेश

धनयोग २।४।५।७ भावों में हो तो पूर्णफल, ८।१२ में आधाफल, ६वें भाव में चतुर्थांश फल और शेष भावों में निष्फल होते हैं।

दरिद्र योग धन स्थान में पूर्ण फल, व्यय स्थान में हो तो $\frac{3}{4}$फल, दूसरे स्थान में अर्द्धफल और शेष स्थानों में निष्फल होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की जन्मपत्री में दोनों ही प्रकार के योग होते हैं। यदि विचार करने से धनी योगों की संख्या दरिद्र योगों की संख्या से अधिक हो तो व्यक्ति धनी और धनी योगों से दरिद्र योगों की संख्या अधिक हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है। पूर्ण फल वाले दो धनी योगों के अधिक होने से सहस्राधिपति, तीन के अधिक होने पर लक्षाधिपति व्यक्ति होता है। अर्द्ध फल वाले योगों का फल आधा जानना चाहिए।

तृतीय भाव विचार—इस भाव से भाई और बहनों का विचार किया जाता है। परन्तु ग्यारहवें भाव से बड़े भाइयों और बड़ी बहनों का तथा तीसरे से छोटे भाइयों और छोटी बहनों का विचार होता है। मंगल भ्रातृकारक है, भातृ सुख के लिए निम्न योगों का विचार करना चाहिए।

(क) तृतीय स्थान में शुभ ग्रह रहने से, (ख) तृतीय भाव पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने से, (ग) तृतीयेश के बली होने से, (घ) तृतीय भाव के दोनों ओर-द्वितीय और चतुर्थ में शुभ ग्रहों के रहने से, (ङ) तृतीयेश पर ग्रहों की दृष्टि रहने से, (च) तृतीयेश के उच्च होने से और (छ) तृतीयेश के साथ शुभ ग्रहों के रहने से भाई-बहन का सुख होता है।

तृतीयेश या मंगल के सम राशियों में रहने से कई भाई-बहनों का सुख होता है। यदि तृतीयेश और मंगल 12वें स्थान में हो, उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो या पापग्रह तृतीय में हों और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो या तृतीयेश के आगे-पीछे पापग्रह हों या द्वितीय या चतुर्थ में पाप ग्रह हों तो भाई-बहन की मृत्यु होती है। तृतीयेश या मंगल ३।६।१२ भावों में हों और शुभ ग्रह से दृष्ट न हों तो भ्रातृ सुख नहीं होता। तृतीयेश राहु या केतु के साथ ६।८।१२वें भाव में हो तो भ्रातृसुख का अभाव होता है। एकादशेश पाप ग्रह हो या इस भाव में पाप ग्रह स्थित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो बड़े का सुख नहीं होता।

भ्रातृसंख्या जानने के नियम—द्वितीय तथा तृतीय स्थान में जितने ग्रह रहें, उतने अनुज और एकादश तथा द्वादश स्थान में जितने ग्रह हों उतने बड़े भाई होते हैं। यदि इन स्थानों

में ग्रह न हों, तो इन स्थानों पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो उसने अनुज और अग्रजों का अनुमान करना। स्वक्षेत्री ग्रहों के रहने तथा उन स्थानों पर अपने स्वामी की दृष्टि[1] पड़ने से भ्रातृसंख्या में वृद्धि होती है। जितने ग्रह तृतीयेश के साथ हों, मंगल के साथ हों, तृतीयेश पर दृष्टि रखते हों और तृतीयस्थ हों, उतनी ही भ्रातृसंख्या होती है।

लग्नेश और तृतीयेश मित्र हों अथवा शुभ स्थानों में एक साथ हों तो भाइयों में प्रेम होता है।

विशेषफल—तृतीयेश ६।१०।११वें भाव में बली होकर स्थित हो तो जातक असाधारण उन्नति करता है। सौदा, लाटरी, मुकद्दमा में विजय तृतीय भाव में क्रूर ग्रह के रहने पर मिलती है।

चतुर्थ भाव विचार—इससे मकान, पिता का सुख, मित्र आदि के सम्बन्ध में विचार करते हैं। इस स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से या इस स्थान में शुभ ग्रहों के रहने से मकान का सुख होता है। चतुर्थेश पुरुष[2] ग्रह बली हो तो पिता का पूर्ण सुख और निर्बल हो तो अल्पसुख तथा चतुर्थेश स्त्री ग्रह बली हो तो माता का पूर्ण सुख और निर्बल हो तो अल्प सुख होता है। चन्द्रमा बली हो तथा लग्नेश को जितने शुभग्रह देखते हों (किसी भी दृष्टि से), जातक के उतने ही मित्र होते हैं। चतुर्थ स्थान पर चन्द्र, बुध और शुक्र की दृष्टि[3] हो तो बाग-बगीचा; चतुर्थ स्थान गुरु से युत या दृष्ट होने से मन्दिर; बुध से युत या दृष्ट होने पर रंगीन महल; मंगल से युत या दृष्ट होने से पक्का मकान और शनि से युत या दृष्ट होने से सीमेण्टेड मकान का सुख होता है।

विशेष योग—लग्नेश, चतुर्थेश और धनेश इन तीनों ग्रहों में से जितने ग्रह १।४।५।७।९।१० स्थानों में गये हों, उतने ही मकान जातक के होते हैं। उच्च, मूलत्रिकोण और स्वक्षेत्री में क्रमशः तिगुने, दूने और डेढ़ गुने समझने चाहिए।

विद्यायोग—चतुर्थ और पंचम इन दोनों के सम्बन्ध से विद्या का विचार किया जाता है तथा दशम स्थान से विद्याजनित यश का और उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्णता प्राप्त करने का विचार किया जाता है।

१—यदि चतुर्थ स्थान में चतुर्थेश हो अथवा शुभ ग्रह की दृष्टि हो या वहाँ शुभग्रह स्थित हो तो जातक विद्या-विनयी होता है। २—चन्द्रलग्न[4] एवं जन्मलग्न[5] से पंचम स्थान का स्वामी बुध, गुरु और शुक्र के साथ १।४।५।७।९।१० स्थानों में-से किसी में बैठा हो तो जातक विद्वान् होता है। बुध और गुरु एक साथ किसी भी भाव में हों तो विद्या का उत्तम योग होता है। ३—चतुर्थेश ६।८।१२वें भाव में हो या पापग्रह के साथ हो या पाप ग्रह से दृष्ट हो अथवा पापराशि गत हो तो विद्या का अभाव समझना चाहिए।

---

१. किसी भी प्रकार की दृष्टि-एक पाद, दो पाद आदि।
२. ग्रहों के स्वरूप पर से पुरुष, स्त्री ग्रहों का परिज्ञान करना चाहिए।
३. यहाँ पूर्ण दृष्टि ली गयी है।
४. चन्द्रकुण्डली का लग्न।
५. जन्मकुण्डली का लग्न।

पंचम भाव विचार—पंचमेश शुभ ग्रह हो, शुभ ग्रहों के साथ हो, शुभ ग्रहों से घिरा—आगे के स्थान और पीछे के स्थान में शुभ ग्रह हों, बुध उच्च का हो, पंचम में बुध हो, या पंचम में गुरु हो, गुरु से पंचम भाव का स्वामी १।४।५।७।९।१०वें भाव में स्थित हो तो जातक विद्वान् होता है।

सन्तान विचार—जन्म कुण्डली के पंचम स्थान से और चन्द्रकुण्डली के पंचम स्थान से सन्तान का विचार करना चाहिए। १—पंचम भाव, पंचमेश और गुरु शुभ ग्रह द्वारा दृष्ट[1] या युत होने से सन्तान योग होता है। २—लग्नेश पाँचवें भाव में हो और गुरु बलवान हो तो सन्तान योग होता है। ३—बलवान[2] गुरु लग्नेश द्वारा देखा जाता हो तो सन्तान योग प्रबल होता है। १।४।५।७।९।१०वें स्थानों के स्वामी शुभ ग्रहों और पंचम में स्थित हों तथा पंचमेश ६।८।१२वें भाव में न हो, पाप युक्त न हो तो सन्तानसुख पूर्ण होता है। ४—पंचम स्थान में वृष, कर्क और तुला में-से कोई राशि हो, पंचम में शुक्र या चन्द्रमा स्थित हो अथवा इनकी कोई भी दृष्टि पंचम पर हो तो बहुपुत्र योग होता है। ५—लग्न अथवा चन्द्रमा से पंचम स्थान में शुभ ग्रह स्थित हो, पंचम भाव शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है। ६—लग्नेश और पंचमेश एक साथ हों या परस्पर एक-दूसरे को देखते हों तो सन्तानयोग होता है। ७—लग्नेश, पंचमेश शुभ ग्रह के साथ १।४।७।१० स्थानों में हों और द्वितीयेश बली हो तो सन्तानयोग होता है। ८—लग्नेश और नवमेश दोनों सप्तमस्थ हों अथवा द्वितीयेश लग्नस्थ हो तो सन्तानयाग होता है।

स्त्री की कुण्डली में निम्न योगों के होने पर सन्तान नहीं होती है। १—सूर्य लग्न में और शनि सप्तम में। २—सूर्य और शनि सप्तम में, चन्द्रमा दशम भाव में स्थित हो तथा गुरु से दोनों ग्रह अदृष्ट हों। ३—षष्ठेश, रवि और शनि ये तीनों ग्रह षष्ठ स्थान में हों और चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो तथा बुध से अदृष्ट हो। ४—शनि, मंगल छठे या चौथे स्थान में हों।

१—६।८।१२ भावों के स्वामी पंचम में हों या पंचमेश ६।८।१२वें भावों में हो, पंचमेश नीच या अस्तंगत हो, तो स्त्री-पुरुष दोनों की कुण्डली में सन्तान का अभाव समझना चाहिए। २—पंचम भाव में धनु और मीन राशियों में से किसी का रहना या पंचम में गुरु का रहना सन्तान के लिए बाधक है। ३—पंचमेश, द्वितीयेश निर्बल हों और पंचम स्थान पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो सन्तान का अभाव होता है। पंचमेश जिस राशि में हो उससे ६।८।१२ भावों में पाप ग्रहों के रहने से सन्तान का अभाव होता है।

सन्तान संख्या विचार—पंचम में जितने ग्रह हों और इस स्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो, उतनी सन्तान संख्या समझना। पुरुष ग्रहों के योग और दृष्टि से पुत्र और स्त्री ग्रहों के योग और दृष्टि से कन्या की संख्या का अनुमान करना। पंचमेश की किरण[3] संख्या के तुल्य सन्तान जानना चाहिए।

---

१. कोई भी दृष्टि हो।

२. पूर्वोक्त छः प्रकार के बलों में-से कम से कम दो बल जिसके हों।

३. सूर्य उच्च राशि का हो तो १०, चन्द्र हो तो ९, भौम हो तो ५, बुध हो तो ५, गुरु हो तो ७, शुक्र हो तो ८ और शनि हो तो पाँच किरणें होती हैं। उच्च बलका साधन का किरण संख्या निकालनी चाहिए।

षष्ठ भाव विचार—रोग और शत्रु का विचार इस भाव से करना चाहिए। छठे स्थान में राहु, शनि, केतु, मंगल का रहना अच्छा है, शत्रुकष्ट का अभाव इन ग्रहों के होने से समझना चाहिए।

सप्तम भाव विचार—इस स्थान से विवाह का विचार प्रधानतः किया जाता है। विवाह योग निम्न हैं—

१—पापयुक्त सप्तमेश ६।८।१२ भाव में हो अथवा नीच या अस्तंगत हो तो विवाह का अभाव या विधुर होता है। २—सप्तमेश बारहवें भाव में हो तथा लग्नेश और जन्म राशि का स्वामी सप्तम में हो तो विवाह नहीं होता है। ३—षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश सप्तम भाव में हों, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट न हों अथवा सप्तमेश ६।८।१२वें भावों का स्वामी हो तो स्त्री सुख नहीं होता। ४—शुक्र, चन्द्रमा एक साथ किसी भी भाव में बैठे हों तथा शनि और भौम उनसे सप्तम भाव में हों तो विवाह नहीं होता। ५—७।१२वें भाव में दो-दो पापग्रह हों तथा पंचम में चन्द्रमा हो तो जातक का विवाह नहीं होता। ६—शनि चन्द्रमा-के सप्तम में रहने से विवाह नहीं होता। गुरु भी सप्तम में स्त्रीसुख का बाधक है। ७—शुक्र और बुध सप्तम में एक साथ हों तथा सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह नहीं होता, लेकिन शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से विवाह बड़ी आयु में होता है।

विवाह योग—सप्तम स्थान में शुभ ग्रह के रहने से, सप्तम पर शुभ ग्रहों की दृष्टि के होने से तथा सप्तमेश के शुभ युत या दृष्ट होने से विवाह होता है।

विवाह समय—लग्नेश से शुक्र जितना नजदीक हो, उतना ही जल्दी विवाह होता है, दूर होने से देरी से होता है। शुक्र की स्थिति जिस राशि में हो, उस राशि के स्वामी की दशा[1] या अन्तर्दशा में विवाह होता है।

अष्टम भाव विचार—इस भाव से आयु का विचार किया जाता है। अरिष्टयोग—१—चन्द्रमा निर्बल होकर पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तथा अष्टम स्थान में गया हो तो बालक की मृत्यु होती है। २—यदि चारों केन्द्रस्थानों में (१।४।७।१०) चन्द्र, मंगल, शनि और सूर्य बैठे हों तो बालक की मृत्यु होती है। ३—लग्न में चन्द्रमा, बारहवें में शनि, नौवें में सूर्य आठवें में भौम हो तो बालक को बालारिष्ट होता है। ४—चन्द्रमा पाप ग्रह से युत या दृष्ट होकर १।४।८।६।१२ भावों-से किसी में हो तो अरिष्ट होता है।

अरिष्ट निवारक—राहु, शनि और मंगल ३।६।११वें भाव में हों तो अरिष्ट दूर हो जाता है। गुरु और शुक्र१।४।७।१० वें भावों में हों तो अरिष्ट भंग होता है।

आयु साधन का सरल गणित—केन्द्रांक (१।४।७।१०वें भावों की राशि संख्या) त्रिकोणांक (५।९वें भावों की राशि संख्या), केन्द्रस्थ ग्रहांक (चारों केन्द्र स्थानों में रहने वाले ग्रहों की संख्या अर्थात् सूर्य १, चन्द्र २, भौम ३, बुध ४, गुरु ५, शुक्र ६, शनि ७, राहु ८, केतु ९) और त्रिकोणस्थ ग्रहांक (५।९ भावों में रहने वाले ग्रहों की अंक संख्या) इन चारों संख्याओं को जोड़कर योगफल को १२ से गुणा कर १० का भाग दने से जो वर्षादि लब्ध आए उनमें से १२ घटा देने पर आयु प्रमाण होता है।

---

१. विंशोत्तरी दशा में क्रम से समय का ज्ञान करना चाहिए।

लग्नायु साधन—जन्मकुण्डली में जिन-जिन स्थानों में ग्रह स्थित हों, उन-उन स्थानों में जो-जो राशि हों उन सभी ग्रहस्थ राशियों के निम्न ध्रुवांकों को जोड़ देने पर लग्नायु होती है। ध्रुवांक-मेष १०, वृष ६, मिथुन २०, कर्क ५, सिंह ८, कन्या २, तुला २०, वृश्चिक ६, धनु १०, मकर १४, कुम्भ ३ और मीन १० ध्रुवांक संख्या वाली है।

केन्द्रायु साधन—जन्मकुण्डली के चारों केन्द्र स्थानों (१।४।७।१०) की राशियों का योग कर भौम और राहु जिस-जिस राशि में हों, उनके अंकों की संख्या का योग केन्द्रांक संख्या के योग में घटा देने पर जो शेष बचे, उसे तीन से गुणा करने पर केन्द्रायु होती है। इस प्रकार सभी गणितों का समन्वय कर आयु बतानी चाहिए।

नवम भाव विचार—इस भाव से भाग्य और धर्म-कर्म के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। भाग्येश (नवम का स्वामी) ६।८।१२ में स्थित हो तो भाग्य उत्तम नहीं होता। भाग्य स्थान (नौवें भाव) में लाभेश—ग्यारहवें[1] भाव का स्वामी बैठा हो तो नौकरी का योग होता है। धनेश लाभ भाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो भाग्यवान् होता है। नवमेश धन भाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो व्यक्ति भाग्यवान् होता है। लाभेश नवम भाव में, धनेश लाभभाव में, नवमेश धनभाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो महा भाग्यवान् योग होता है। नवम भाव गुरु और शुक्र से युत या दृष्ट हो या भाग्येश गुरु, शुक्र से युत हो या लग्नेश और धनेश पंचम भाव में गये हों अथवा लग्नेश नवम भाव में और नवमेश लग्न में गया हो तो भाग्यवान् होता है।

भाग्योदय काल—सप्तमेश या शुक्र ३।६।१०।११ या ७वें भाव में हो तो विवाह के बाद भाग्योदय होता है। भाग्येश रवि हो तो २२वें वर्ष में, चन्द्र हो तो २४वें वर्ष में, मंगल हो तो २८वें वर्ष में, बुध हो तो ३२वें वर्ष में और राहु या केतु हो तो ४२वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

दशम भाव विचार—दशम भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य व्यापारी होता है। दशम में बुध हो, दशमेश और लग्नेश एक राशि में हों, लग्नेश दशम भाव में गया हो, दशमेश १।४।५।७।९।१० में तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो और दमशेश अपनी राशि से हो तो जातक व्यापारी होता है।

एकादश भाव विचार—लाभ स्थान में शुभ ग्रह हों तो न्यायमार्ग से धन और पाप ग्रह हों तो अन्याय मार्ग से धन आता है। लाभ भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो लाभ और पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो हानि होती है। लाभेश १।४।५।७।९।१० भावों में हो तो लाभ होता है।

ससुराल से धनलाभ—सप्तम और चतुर्थ स्थान का स्वामी एक ही ग्रह हो, या सप्तम या चतुर्थ में हो तो ससुराल से धन मिलता है।

अकस्मात् धनलाभ योग—द्वितीयेश और चतुर्थेश शुभ ग्रह के साथ नवम भाव में शुभ राशि गत होकर स्थित हो तो भूमि से धन मिलता है। लग्नेश द्वितीय भाव में हो और द्वितीयेश एकादशस्थ हो तो धन लॉटरी या सट्टे से मिलता है।

---

१. ग्यारहवाँ भाव।

द्वादश भाव विचार—बारहवें भाव में शुभ ग्रह हो तो सन्मार्ग में धन व्यय होता है और पापग्रह हों तो कुमार्ग में धन खर्च होता है। बलवान और शुभ ग्रह के द्वादश में रहने से अधिक व्यय होता है। क्रूर ग्रह द्वादश में रहने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

जन्म लग्नानुसार शुभाशुभ ग्रह बोधक चक्र

जन्म लग्न	पापफल कारक ग्रह	शुभफल कारक ग्रह	मारक ग्रह एवं अनिष्ट कारक ग्रह
मेष	शनि, बुध, शुक्र	गुरु, सूर्य	शुक्र, शनि, बुध
वृष	गुरु, शुक्र, चन्द्रमा	शनि, बुध	मंगल, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा
मिथुन	मंगल, गुरु, शनि	शुक्र	मंगल, गुरु, शनि
कर्क	शुक्र, बुध	मंगल, गुरु	शनि, शुक्र बुध
सिंह	शुक्र, बुध	मंगल, गुरु	बुध, शुक्र
कन्या	मंगल, गुरु, चन्द्रमा	शुक्र	मंगल, गुरु, चन्द्रमा
तुला	गुरु, सूर्य, मंगल	शनि, बुध	मंगल, गुरु सूर्य
वृश्चिक	बुध, मंगल, शुक्र	गुरु, चन्द्रमा	बुध, मंगल, शुक्र
धनु	शुक्र	मंगल, रवि	शनि, शुक्र
मकर	मंगल, गुरु, चन्द्रमा	शुक्र	मंगल, गुरु, चन्द्रमा
कुम्भ	मंगल, गुरु, चन्द्रमा	शुक्र	मंगल, गुरु, चन्द्रमा
मीन	शनि, शुक्र, रवि, बुध	मंगल, चन्द्रमा	शनि, बुध

सूर्य और चन्द्रमा स्वयं मारकेश नहीं होते हैं। मारक ग्रह की महादशा, अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं होती; किन्तु पाप ग्रहों का योग होने से अथवा पाप ग्रहों की अन्तर्दशा अथवा प्रत्यन्तर दशा होने पर ही मृत्यु होती है। मारक ग्रह शुभग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु कारक नहीं होता है। जब पांचों ही दशाएं पापग्रह की हों अथवा मारक ग्रह की हों, उस समय मृत्यु निश्चित रूप से होती है। महादशा अन्तर्दशा और प्रत्यंतर दशा में तीनों ही पापग्रह या मारक ग्रह की हों तो मृत्यु या तत्तुल्य कष्ट होता है।

●

परिशिष्ट-३

विवाह में मेलापक विचार

ग्रह मिलान

वर-कन्या की कुण्डली का मिलान करने के लिए दोनों के ग्रहों का मिलान करना चाहिए। यदि जन्म-कुण्डली में १।४।७।८।१२वें भाव में मंगल, शनि, राहु और केतु हो तो पति या पत्नीनाश योग होता है। कन्या की जन्मपत्री में होने से पतिनाशक और वर की जन्मपत्री में होने से पत्नीनाशक है। उक्त स्थानों में मंगल के होने से मंगला या मंगली योग होता है। मंगल पुरुष का मंगल स्त्री से सम्बन्ध करना श्रेष्ठ माना जाता है।

वर की कुण्डली में लग्न और शुक्र से १।४।७।८।१२वें भावों में तथा कन्या की कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से १।४।७।८।१२वें भावों में पापग्रहों—मंगल, शनि, राहु, केतु का रहना अनिष्टकारी माना जाता है। जिसकी कुण्डली में उक्त स्थानों में पापग्रह अधिक हों, उसी की कुण्डली तगड़ी मानी जाती है।

वर की कुण्डली में लग्न से छठे स्थान में मंगल, सातवें में राहु और आठवे में शनि हो तो स्त्रीहन्ता योग होता है। इसी प्रकार कन्या की कुण्डली में उपर्युक्त योग हों तो पतिहन्ता योग होता है। कन्या की कुण्डली में ७वाँ और ८वाँ विशेष रूप से तथा वर की कुण्डली में ७वाँ स्थान देखना चाहिए। इन स्थानों में पापग्रहों के रहने से अथवा पापग्रहों की दृष्टि होने से अशुभ माना जाता है। यदि दोनों की कुण्डली में उक्त स्थानों में अशुभ ग्रह हों तो सम्बन्ध किया जा सकता है।

वैधव्य योग—कन्या की कुण्डली में सप्तम स्थान में गया हुआ मंगल पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो बालविधवा योग होता है। राहु बारहवें स्थान में हो तो पतिसुख का अभाव होता है। अष्टमेश सातवें भाव में और सप्तमेश आठवें भाव में हो तो वैधव्य योग होता है। छठे और आठवें भावों के स्वामी छठे या बारहवें भाव में पापग्रहों से दृष्ट हो तो वैधव्य योग होता है।

सन्तान विचार—२।५।६।८ इन राशियों में चन्द्रमा हो तो अल्प सन्तान, शनि और रवि ये दोनों आठवें भाव में गये हों तो वन्ध्यायोग होता है। पंचम स्थान में धनु और मीन

राशि का रहना सन्तान में बाधक है। सप्तम और पंमच स्थान में गुरु का रहना भी अच्छा नहीं होता है।

गुण मिलान

आगे दिये गये गुणैक्यबोधक चक्र में वर और कन्या के जन्मनक्षत्र के अनुसार गुणों का मिलान करना चाहिए। कुल गुण ३६ होते हैं। यदि १८ गुणों से अधिक गुण मिलें तो सम्बन्ध किया जा सकता है। पर्याप्त गुण मिलने पर भी नाड़ी दोष और भकूट दोष का विचार करना चाहिए।

भकूट विचार

कन्या की राशि से वर की राशि तक तथा वर की राशि से कन्या की राशि तक गणना कर लेनी चाहिए। यदि गिनने से दोनों की राशियाँ परस्पर में ६ठी और ८वीं हों तो मृत्यु, ९वीं अैर ५वीं हो तो सन्तानहानि तथ २री और १२वीं हो तो निर्धनता फल होता है।

उदाहरण—वर की राशि जन्मपत्री के हिसाब से मिथुन है और कन्या की तुला है। वर की राशि मिथुन की कन्या की राशि तुला तक गणना की तो ५वीं संख्या हुई और कन्या की तुला राशि से वर की मिथुन राशि तक गणना की तो ९वीं संख्या आयी, अतः परस्पर में राशि संख्या नवम-पंचम होने से भकूट दोष माना जाएगा।

नाड़ी विचार

आगे दिये गये शतपदचक्र में सभी नक्षत्रों के वश्य, वर्ण, योनि, गण, नाड़ी, राशि आदि अंकित हैं। अतः वर और कन्या के जन्मनक्षत्र के अनुसार नाड़ी देखकर विचार करना चाहिए। दोनों की भिन्न-भिन्न नाड़ी होना आवश्यक है। एक नाड़ी होने से दोष माना जाता है, अतः एक नाड़ी की शादी त्याज्य है। हाँ, वर-कन्या के राशियों में मित्रता हो तो नाड़ी दोष नहीं होता।

उदाहरण—वर का कृत्तिका नक्षत्र है और कन्या का आश्लेषा। शतपद चक्र के अनुसार दोनों की अन्त्य नाड़ी है, अतः सदोष है।

गुण मिलने का उदाहरण—वर का आर्द्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण का जन्म है और कन्या का अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण का जन्म है। गुणैक्यबोधक चक्र में वर के नक्षत्र ऊपर और कन्या के नक्षत्र नीचे दिये हैं, अतः इस चक्र में १७ गुण मिले। यह संख्या १८ से कम है, अतः सम्बन्ध ठीक नहीं माना जाएगा। ग्रहों के ठीक मिलने पर तथा राशियों के स्वामियों में मित्रता होने पर यह सम्बन्ध किया जा सकता है।

●

चक्र के सांकेतिक अक्षरों के पूरे नाम

एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। जहाँ मे. 1, वृ. 3 लिखा है, उसका तात्पर्य है कि कृत्तिका के प्रथम चार मेष राशि और उसके शेष तीन चरण वृष राशि के हैं, इसी प्रकार आगे-आगे भी समझना।

मे	= मेष	शू	= शूद्र	आ	= आद्य
बृ	= वृष	क्ष	= क्षत्रिय	म	= मध्य
मि	= मिथुन	ब्रा	= ब्राह्मण	अं	= अन्त्य
क	= कर्क	वै	= वैश्य		
सिं	= सिंह	च	= चतुष्पद	सू	= सूर्य
क	= कन्या	न	= नर	च	= चन्द्र
तु	= तुला	ज	= जलचर	मं	= मंगल
वृ	= वृश्चिक	व	= वनचर	बु	= बुध
ध	= धनु	की	= कीट	गु	= गुरु
म	= मकर	दे	= देव	शु	= शुक्र
कुं	= कुम्भ	म	= मनुष्य	श	= शनि
मी	= मीन	रा	= राक्षस		

शतपद-चक्र या होड़ा-चक्र

नक्षत्राणि	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	पुष्य	आश्ले.	म.	पू.	फा.	उ.फा.	ह.	चि.
अक्षर	चू.चे. चो.ला.	ली.लू. ले.लो	आ.इ. उ.ए.	ओ.वा. वी.वू.	वे.वो. का.की.	कू.घ. ङ.छ.	के.को. हा.ही.	हू.हे. हो.डा.	डी.डू. डे.डो.	मा.मी. मू.मे.	मो.टा. टी.टू.	टे.टो. पा.पी	पू.ष. ण.ठ.	पे.पो. रा.री
राशि	मे.	मे.	मे.१ वृ.३	वृ.	वृ.२ मि.२	मि.	मि.३ क.१	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं.१ क.३	क.	क.२ तु.२
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२
वश्य	च.	च.	च.	च.	च.२ न.२	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.	व.	व.	व.१ न.३	न.	न.
योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	सर्प	श्वान	बिलाव	मेष	बिलाव	मूषक	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र
राशीश	मं.	मं.	मं.१ शु.३	शु.	शु.२ बु.२	बु.	बु.३ च.१	चं.	चं.	सू.	सू.	सू.१ बु.३	बु.	बु.२ शु.२
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाड़ी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्राणि	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.
अक्षर	रु.रे. रो.ता.	ती.तू. ते.तो.	ना.नी. नू.ने.	नो.या. यि.यू.	ये.यो. भा.भी.	भू.धा. फा.ढा.	भे.भो. जा.जी.	खी.खू. खे.खो.	गा.गी. गू.गे.	गो.सा. सी.सू.	से.सो. दा.दी.	दू.थ. झ.ञ.चा.ची.	दे.दो.
राशि	तु.	तु.३ वृ.१	वृ.	वृ.	ध.	ध.	ध.१ म.३	म.	म.२ कुं.२	कुं.	कुं.३ मी.१	मी.	मी.
वर्ण	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.
वश्य	न.	न.३ की.१	की.	की.	न.	॥न. ३॥च.	च.	१॥च. २॥ज.	ज.२ न.२	न	न.३ ज.१	ज.	ज.
योनि	महिष	व्याघ्र	मृग	मृग	श्वान	वानर	नकुल	वानर	सिंह	अश्व	सिंह	गौ	गज
राशीश	शु.	शु.३ मं.१	मं.	मं.	गु.	गु.	गु.१ श.३	श.	श.	श.	श.३ गु.१	वृ.	वृ.
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.
नाड़ी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.

न.	अ.	भ	कृ	कृ.	रो.	मृ.	मृ.	आ.	पु.	पु.	पु.	श्ले.	म	पू.फा	उ.फा	उ.फा	ह.	चि.	चि.
			१	३		२	२		३	१					१	३		२	२
अ	२८	३३	२८॥	१८॥	२१॥	२२॥	२६	१७	१८	२२॥	३१॥	२७	२०॥	२६	१७॥	११	९	१३	२२॥
भ.	३४	२८	२९	१९	२२॥	१३॥	१७	२६	२६	३०॥	२३॥	२४॥	२१	१९	२८	२१॥	१९	६	१४॥
कृ.१	२७॥	२७॥	२८	१६॥	९	१५॥	१९	२०	२१	२५॥	२६॥	२३॥	१७॥	२१	२२	१५॥	१५॥	१५	२७।
कृ.३	१८॥	१८॥	१९	२८	१९	२५॥	१६॥	१७॥	१८॥	२२	२३	२०	१९॥	२३	२४	२१	२१	२३	२२।
रो	२३॥	२३॥	१०	१९	२८	३६	२७	२३॥	२३॥	२७	२६	१३	१२॥	२६॥	२८	२५	२६	२०	१९
मृ.२	२३॥	१३॥	१८॥	२६॥	३४	२८	२०	२५	२३॥	२६	१९	२२	२१॥	१७॥	२५॥	२३॥	२७	१३	१०
मृ.२	२७	१८	२१	१८॥	२५॥	२०	२८	३३	३१॥	१९॥	११	१५॥	२४	२०॥	२८॥	३०॥	३४	२१	१४
आ.	१९	२७	२१	१८॥	२४॥	२६	३४	२८	२५	१३	२०॥	१३॥	२३॥	२९॥	२२॥	२४॥	२४॥	२७	२०
पु.३	१९	२६	२२	१९॥	२३॥	२४॥	३२॥	२४	२८	१६	२३	१६॥	२२॥	२७॥	२१॥	२३॥	२४॥	२१	१८।
पु.१	२१॥	२८	२३॥	२०	२४	२५	१९	१०॥	१४॥	२८	३५	२८॥	१५॥	२०	१४॥	१७	१८	२७	२०
पु.	३०॥	२१॥	२६॥	२३	२४	१७	१०	१८	२१॥	३५	२८	३०	१८॥	१४॥	२३॥	२६	२७	१२	१९॥
आश्ले	२५	२३॥	२२॥	१९	१२	२१	१३	१२	१५	२८॥	२८॥	२८	१५	१५॥	१७॥	२०॥	२२॥	२६	२५।
म.	२१	२१	१७॥	१८॥	११॥	१९॥	२२॥	२२॥	२१॥	१६॥	१८॥	१६	२८	३०	२६॥	१६॥	१६॥	२३	२५।
पू.फा.	२७	१९	२१	२२	२५॥	१७॥	२०॥	२८॥	२७॥	२२॥	१६॥	१६॥	३०	२८	३४	२४	२२॥	८।	१९।
उ.फा.१	१६॥	२७	२२	२३	२७	२५॥	२८॥	२१॥	२१॥	१६॥	२५॥	१८॥	२६॥	३४	२८	१८	१६॥	१३	१७।
उ.फा.३	१३	२१॥	१६॥	२१	२५	२३॥	३०॥	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२५	१९	२८	२५॥	२३	१६।
ह	१०	२०	१६॥	२१	२६	२६	३३	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२३॥	१७॥	२२॥	१७	२६	२८	२७	१९
चि.२	१३	६	१०	२५॥	२०	१२	१९	२६	२४॥	२०॥	१२॥	२६॥	२३॥	९॥	१५॥	२४॥	२७	३८	२०
चि.२	२२॥	१५॥	२८॥	२३॥	२०	१२	१३	२०	१८॥	२०	१२	२६	२५॥	१०	१७॥	१७॥	२०	२१	२८
स्वा.	२७॥	२९॥	१७॥	१२॥	१६॥	२७	२७	२६	२६॥	२८	२८	१५॥	१३॥	२५॥	२५॥	२५॥	२७॥	२१	२८
वि.३	२२॥	२२॥	२०॥	१५॥	१०॥	१८॥	१९॥	२१	२१	२२॥	२१॥	९९	१७॥	१९॥	१८॥	१७॥	१८॥	२७	३४।
वि.१	१६॥	१६॥	१४॥	१९॥	१४॥	२२॥	१३	१४॥	१४॥	१९	१८	१५॥	२१॥	२३॥	२१॥	१८	१९	२८	२३।
अनु.	२४॥	१४॥	१९॥	२४॥	२७॥	२०॥	११	१६	२१॥	२६॥	१८	२१	२४॥	२०॥	२९॥	२६	२७	१३	७॥
ज्ये	१२	१८॥	२४॥	२९॥	२२॥	२२॥	१३	३	६	१०॥	२०	२६	३१	२३॥	१६॥	१३	१२	२१	२०।
मू	१२	२०	२४॥	११	१३	१४	२१	१५	१२	८॥	१७॥	२४	२५	१९	९॥	१३	१३	२७	२७
पू.वा.॥	२६	१९	१८	१२॥	१९	११	१९	२७	२७	२३॥	२३॥	१७॥	२१	१९	२७	२८॥	२७	१२	१२
पू.वा.३।	२७	२०	१९	१३॥	२०	१२	१८	२६	२६	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२७	२६	११	११
उ वा.१	२५॥	२७	१४	८॥	११॥	१८	२४	२६	२६	२३॥	२४॥	९॥	११॥	२७	२८	२८॥	२७॥	२०	२०
उ.वा.३	२८	२९॥	१६॥	१४	१७	२२॥	२०॥	२२॥	२२॥	२७	२८॥	१३	६॥	२२	२३	२६	२५	१७	२४
ध १॥	२८	२७	१४॥	१२	१८	३४॥	२४	२१॥	२१॥	२७	२५	१५	१७॥	१९॥	२०	२४	२५	१९	२६
श्र.२॥	२७	२६	१३॥	१०	१७	२६	२३॥	२१	२३॥	२८	२६	१५	६॥	१८॥	२०॥	२३॥	२४॥	१५	२५
ध.२	२०॥	१०॥	२६	२३॥	२०	१२	८॥	१७॥	१७॥	२२	१३	२८	१८॥	५॥	१२॥	१६	१७॥	१३	२४
ध २	२०	११	२६	३०॥	२७॥	१९	१०	२०	१९	१४	५	२०	२५॥	११॥	१९॥	१७॥	२१॥	१५	१९
अ.	१५	२१	२८	३२॥	२५॥	२५	१८	१०	१०	७॥	१५	२०	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	८॥	२६	२६
पू.भा.३	१८	२५	२०	२४॥	३१॥	३१॥	२४॥	१७	१७	१३॥	२०॥	१४	१९॥	२५॥	१७॥	१५॥	१७॥	१५	१९।
पू.भा.१	१४॥	२१॥	१६॥	१९	२६	२६	२५॥	१८	१८	१८	२५	१८॥	१६॥	२२॥	१४॥	१६॥	१८॥	११	१२
उ.भा.	२४॥	१५॥	१८॥	२१	२५	१७	१६॥	२५॥	२७	२६	१९	२०	१७॥	१५॥	२५॥	२७॥	२६	१।	५
रे.	२५	२४॥	११॥	१४	१७	२६	२५॥	२४	२५॥	२४॥	२७	१३	१२	२२	२२	२४॥	२६॥	२०	१३

पुणबोधकचक्र

वि.	स्वा.	वि.	वि.	अ.	ज्य.	मू	पूषा.	पू.षा.	उ था	उ.षा	श्र	श्र	ध	ध	ध	पू.भा.	पू.भा.	उ.भा.	रे.
२		३	१				॥	३॥	१	३	१॥	२॥	२	२		३	१		
२॥	२६॥	२२॥	१९॥	२६॥	१५	१३	२६	२७	२४॥	२६	२६	२४	२१	२१	१५	१६	१४॥	२४॥	२६
३॥	२९॥	२२॥	१९॥	१७॥	१९॥	२०	१९	२०	२७	२८॥	२८	२६	१०	१०	२०	२४	२२॥	१६॥	२८
४॥	१५॥	१९॥	१६॥	२०॥	२६॥	२४॥	१८	१९	१४	१५॥	११॥	१०॥	२५	२५	२७	१९॥	१७॥	१९॥	११॥
५॥	१०॥	१४॥	२१॥	२५॥	३१॥	२०	१२॥	१३॥	९॥	१४	११	१०	२२॥	२९॥	३१	२३॥	२०	२२	१४
६	१५॥	९॥	१६॥	३०॥	२४॥	१४	१९	२०	११॥	१७	१९	१८	२०	२६	२४॥	३०॥	२७	२६	१९
७	२५	१७॥	२३॥	२२॥	२५॥	१५	१२	११	१८	२१	२४॥	२४॥	१३	१९	२७	२९॥	२६॥	१७	२७
८	२७	१९॥	१४	११	१३	२३	१९	१८	२४	२०॥	२५	२५	१२	१३	२१	२३॥	२७॥	१७	२७
९	२७	२०	१३॥	१७॥	४	१६	२८	२७	२७	२२॥	२२॥	२२॥	१७	२०	११	१६	१९	२७	२७
१०॥	२७	२१	१३॥	२०॥	५	१३	२७	२६	२७	२७॥	२२॥	२३॥	१७॥	१८॥	११	१७	१९॥	२७॥	२८
११	२७	२०	१९	२६	१०॥	८	२१	२९॥	२१॥	२८॥	२५	२७	२१	१२॥	७	११	१७	२५	२५॥
१२॥	२६	२१	२०	१९	२२	१७	११	११॥	२२॥	२६	२४	२५	१३	४॥	१४॥	१८	२४	१८	२७
१३॥	११॥	१६॥	१५॥	२०	२६	२२॥	१६	१६॥	८॥	१२	१३	१३	२७	८॥	१८॥	१२॥	१८॥	२०	१२
१४॥	११॥	१७॥	२४॥	२६॥	३४	२४	२०	२१	११॥	५॥	५॥	४॥	१८॥	२४॥	२५॥	१८॥	१७॥	१८॥	१२
१५॥	२५॥	१९॥	२६॥	२४॥	२४॥	१९	१८	१९	२७	२१	१९॥	१८॥	४॥	११॥	१९॥	२४॥	२३॥	१६॥	२४॥
१६॥	२६॥	१७॥	२४॥	३०॥	१९॥	१०॥	२६	२७	२८	२२	२१	२०	११॥	१८॥	१२॥	१३॥	१५॥	२६॥	२४॥
१७॥	२५॥	१६॥	१८	२७	१३	१५॥	२९॥	२८॥	२९॥	२६	२५	२५	१६॥	१६॥	१०॥	१४॥	१८	२९	२७
१८	२६॥	१७॥	१९॥	२६	१२	१४	२७	२६	२७॥	२३	२४	२४	१९	१९	८॥	१४॥	१९	२७	२७
१९	१९	२६॥	२८	११	२५	२८	१४	१३	२१	१७॥	१९	१९	१८	१८	२४	१८॥	२२	११	२१
२०	२७	३४॥	२४॥	७॥	२१॥	२८	१४	१३	२१	२५॥	२७	२७	२६	२०	२६	२०॥	१५	४	३३
२१	२८	२०	१०	२३॥	१८॥	२३	२७	२६	१८	२२॥	२३॥	२३॥	१७	२१	२०	२५	२०॥	२०	१३
२२॥	१८	२८	१८	१७	२१॥	२८	२२	२१	१३	१७॥	१७॥	१७॥	३२॥	२६॥	२६	२२	१६॥	१३॥	५
२३॥	८	१७	२८	२७	३१॥	२३॥	१७॥	१६॥	९॥	१२	१२	१२	२७	२७	२६॥	२२॥	२१	१८	९॥
२४	२२॥	१७	२८	२८	३१	१६॥	१४॥	१४॥	२२	२५	२६	२६	१२	१२	१२	२४॥	२४	१८	२७
२५॥	१७॥	२०॥	३१॥	३०	२८	१५	१७॥	१७॥	१७॥	२०	२०	२०	२१	२५	१८	११	१०॥	२१	२१
२६	२१	२७	२४॥	१६॥	१६	२८	२८	२७	२५॥	१५॥	१५॥	१५॥	२१॥	२५	२१॥	११	१७॥	२५॥	२७
२७	२७	२०	१६॥	१८॥	१८॥	२८	२८	२७	३३	२३	२३॥	२३॥	८॥	१६॥	२३॥	३१॥	३२॥	२३॥	३२॥
२८	२६	१९	१८॥	१८॥	१९॥	२७	२७	२८	३४	२४	२४	२३॥	८॥	१५॥	२२॥	२९॥	३२॥	२३॥	३२॥
२९	१९	१२	१९॥	२५॥	१९॥	२५॥	३३	३४	२८	१८	१६	१५	१५॥	२२॥	२२॥	२८॥	३१॥	३२॥	२३॥
३०॥	२३॥	१६॥	१४	२८	२२	१६॥	२६	२५	१९	२८	२६	२५	२५॥	१७॥	१७॥	२३॥	३०॥	३२॥	२३॥
३१	२३॥	१६॥	१४	२८	२३	१७॥	२३॥	२४॥	१७	२५	२८	२७	३०	२२	१८॥	२३॥	३१॥	३०॥	२२॥
१॥	२३	१६	१४	२८	२३	१६	२५	२५॥	१५	२४	२७	२८	३०	२०॥	१८	२३	३२॥	३१॥	२४॥
२॥	२६	३०	२८	१४	२८	२१	९	९॥	१६॥	२५॥	२८	२१	२८	१८॥	२३॥	२१	२६॥	१५॥	२२॥
३॥	२२॥	२५॥	२८	१२	२६	२९॥	१७॥	१६॥	१३॥	१८॥	२१	२१	२०	२८	३३	२८॥	१८॥	७॥	१४॥
४	१९	२६	२६॥	२१	१९	२२॥	२४॥	२३॥	२३॥	१८॥	१८॥	१८॥	२५	३३	२८	१९	९	१७॥	१६॥
५॥	२८	२१	२१॥	७॥	१२	१५॥	३१॥	३०॥	२९॥	२४॥	२५॥	२५॥	२०॥	२७॥	१९	२८	१८	२३	२०॥
६॥	१९॥	१४	२१	२७	११॥	१५	३१	३१॥	३०॥	२८॥	२८॥	३०॥	२५॥	१७	७॥	१६॥	२८	३३	३०॥
५	१९॥	१२	१९	२०	२२	२४	२२	२२॥	३१॥	२९॥	२८॥	२९॥	१४॥	६	१६	२१॥	३३	२८	३४
६॥	११॥	५॥	१२॥	२७	२२	२७	३०॥	३०	२१	१९	२०	२२॥	२२॥	१४	१६	१८	२०॥	३३	२८

सहायक ग्रन्थ-सूची

अकलंक संहिता—अकलंकदेवकृत, हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
अथर्व ज्योतिष—सुधाकर सोमाकर भाष्य सहित, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, काशी
अद्भुततरंगिणी—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
अद्भुतसागर—बल्लालसेन विरचित, प्रभाकरी यन्त्रालय, काशी
अद्वैतसिद्धि—गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, मैसूर
अनन्तफलदर्पण—हस्तलिखित, मुनीश्वरानन्द पुस्तकालय, आरा
अर्घकाण्ड—दुर्गदेव, हस्तलिखित
अर्घप्रकाश—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
अर्हच्चूडामणिसार—भद्रबाहु स्वामी, महावीर ग्रन्थमाला, धूलिया
आचाराङ्ग सूत्र—आगमोदय समिति, लुधियाना
आयज्ञानतिलक संस्कृत टीका—**भट्टवोसरिकृत**, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
आयसद्भाव प्रकरण—मल्लिषेणकृत, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
आरम्भसिद्धि—हेमहंसगणि टीका सहित, श्री लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी
आर्यभटीय—ब्रजभूषण दास एण्ड सन्स, बनारस
आय सिद्धान्त—ब्रजभूषण दास एण्ड सन्स, बनारस
उत्तरकालामृत—अँगरेजी अनुवाद, बेंगलोर
ऋग्वेद ज्योतिष—सोम-सुधाकर भाष्य
एवरी डे एस्ट्रोलाजी—बी. ए. के. ऐय्यर, तारापोरवाला सन्स एण्ड को., बम्बई
एस्ट्रोनामी इन ए नट्शेल—गैरट पी सर्विस रचित, तारापोरवाला सन्स एण्ड को., बम्बई
एस्ट्रोनामी—टौमस हीथ, एस्ट्रोनॉमर एडिनवरो रचित तारापोर वाला सन्स एण्ड को., बम्बई
एस्ट्रोनामी—टेट्स विरचित, तारापोरवाला सन्स एण्ड को., बम्बई
करण कुतूहल—बनारस
करण प्रकाश—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
कालजातक—हस्तलिखित
केरल प्रश्नरत्न—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई

केरल प्रश्न संग्रह–वेंकटेश्वर स्टीम, प्रेस, बम्बई
केवलज्ञानहोरा–चन्द्रसेन मुनि, विरचित, हस्तलिखित जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
खण्डकखाद्य–ब्रह्मगुप्त, कलकत्ता विश्वविद्यालय
खेटकौतुक–सुखसागर, ज्ञान प्रचारक सभा, लोहावट (मारवाड़)
गणकतरंगिणी–पद्माकर द्विवेदी, गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, काशी
गणितसार संग्रह–महावीराचार्य रचित
गर्गमनोरमा–वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
गर्गमनोरमा–सीताराम झा की टीका, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड संस, बनारस
गोल परिभाषा–सीताराम झा की टीका, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड संस, काशी
गौरीजातक–हस्तलिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय, पटना
ग्रह कौमुदी–मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, काशी
ग्रहलाघव–सुधामंजरी टीका, बनारस
ग्रहलाघव–सुधाकर टीका
चन्द्रार्क ज्योतिष–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
चन्द्रोन्मीलन प्रश्न–हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
चन्द्रोन्मीलन प्रश्न–बृहत्ज्योतिषार्णव के अन्तर्गत
चमत्कार चिन्तामणि–भाव प्रबोधिनी टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
छान्दोग्योपनिषद–निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
छान्दोग्य ब्राह्मण–हिन्दी भाष्य
जातकतत्त्व–महादेवशर्मा कृत, रतलाम
जातक पद्धति–केशवीय, वामनाचार्य संशोधन सहित, काशी
जातकपारिजात–परिमल टीका, चौखम्बा, काशी
जातकाभरण–दुण्ढिराज, बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा
जातकक्रोडपत्र–शशिकान्त झा मुजफ़्फ़रपुर
ज्योतिर्गणित कौमुदी–रजनीकान्त रचित, बम्बई
ज्योतिषतत्त्वविवेक निबन्ध–वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ज्योतिर्विवेकरत्नाकर–कर्मवीर, प्रेस, जबलपुर
ज्योतिषसार–हस्तलिखित, नया मन्दिर, दिल्ली
ज्योतिषसार संग्रह–(प्राकृत) भगवानदास टीका, नरसिंह प्रेस, हरीसन रोड, कलकत्ता
ज्योतिष श्याम संग्रह–वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ज्योतिष सिद्धान्तसार संग्रह–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
ज्योतिष सागर–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
ज्योतिष सिद्धान्तसार–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
ज्ञानप्रदीपिका–जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
ठाणाङ्ग–हस्तलिखित, आरा

तत्त्वार्थसूत्र—पन्नालाल बाकलीवाल टीका
ताजिक नीलकण्ठी—सीताराम टीका, काशी
ताजिक नीलकण्ठी—शक्तिधर टीका, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
ताजिक नीलकण्ठी—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
तिथि चिन्तामणि—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
दशाफल दर्पण—महादेव पाठक, भुवनेश्वरी प्रेस, रतलाम
दैवज्ञकामधेनु—ब्रजभूषणदास एण्ड सन्स, काशी
दैवज्ञवल्लभ—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
नरपतिजयचर्या—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
नारचन्द्र ज्योतिष—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
नारचन्द्र ज्योतिष प्रकाश—रतीलाल-प्राणभुवनदास, चूड़ीवाला, हीरापुर, सूरत
निमित्तशास्त्र—ऋषिपुत्र, सोलापुर
पञ्चाङ्गतत्त्व—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
पञ्चसिद्धान्तिका—डॉ. थीवो तथा सुधाकर टीका
पञ्चाङ्गफल—ताड़पत्रीय, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
पाशाकेवली—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
प्रश्नकुतूहल—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
प्रश्नकौमुदी, प्रश्नचिन्तामणि—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
प्रश्ननारदीय—बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा
प्रश्नप्रदीप—हस्तलिखित वराहमिहिर पुस्तकालय, पटना
प्रश्नवैष्णव, प्रश्नसिद्धान्त—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
प्रश्नसिन्धु—मनोरंजन प्रेस, बम्बई
बृहद् ज्योतिषार्णव—बम्बई
बृहज्जातक, बृहत्पाराशरी—मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, काशी
बृहत्संहिता भट्टोत्पली—वी. जे. लॉजरस कम्पनी, काशी
ब्रह्मसिद्धान्त—ब्रजभूषणदास एण्ड सन्स, काशी
भविष्यज्ञान ज्योतिष—तिलकविजय रचित, कटरा खुशालराय, देहली
भावप्रकरण—विमलगणि विरचित, सुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा, लोहावट (मारवाड़)
भावकुतूहल—ब्रजवल्लभ हरिप्रसाद, कालबादेवी रोड, रामबाड़ी, बम्बई
भावनिर्णय—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
भुवनदीपक—पद्मप्रभसूरिदेव, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
मण्डलप्रकरण—मुनि चतुरविजय कृत, आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
मानसागर पद्धति—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
मानसागरी पद्धति—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
मुहूर्त चिन्तामणि—पीयूषधारा टीका

मुहूर्त चिन्तामणि–मिताक्षरा टीका
मुहूर्त मार्तण्ड–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
मुहूर्तदर्पण–आरा
मुहूर्तसंग्रह, मुहूर्तसिन्धु–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
मुहूर्तगणपति–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
यन्त्रराज–महेन्द्रगुरु रचित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
यवनजातक या मीनराजजातक–हस्तलिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय, पटना
रिष्टसमुच्चय–दुर्गदेव रचित, गोधा ग्रन्थमाला, इन्दौर
लघुजातक–मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, काशी
लघुसंग्रह–महाराजदीन टीका, बैजनाथ बुकसेलर
वर्षप्रबोध–मेघविजयगणि कृत, भावनगर
विद्यामाधवीय–गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, मैसूर
विवाहवृन्दावन–मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, काशी
वैजयन्ती गणित–राधा यन्त्रालय, बीजापुर
शिवस्वरोदय–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
समयसार–वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
सर्वार्थसिद्धि–रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर
सामुद्रिकशास्त्र–श्री जैन सिद्धान्त-भवन, आरा
सामुद्रिकशास्त्र–हस्तलिखित, नया मन्दिर, दिल्ली
सारावली–कल्याणवर्मा विरचित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
सुगम ज्योतिष–देवीदत्त जोशीकृत, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, काशी
स्वप्नप्रकाशिका–हस्तलिखित, नया मन्दिर, दिल्ली
स्वप्नविज्ञान–गिरीन्द्र शंकर कृत, किताबमहल, जीरो रोड, प्रयाग
स्वप्नसार–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
स्वप्नसार–नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
स्वप्नफल–हस्तलिखित, मुनीश्वरानन्द पुस्तकालय, आरा
स्वप्नज्ञान–हस्तलिखित, वराहमिहिर पुस्तकालय, पटना सीटी
हस्तविज्ञान–रतलाम
हस्तसंजीवन–मेघविजयरचित, गणेश दत्त टीका, बनारस
हस्तसंजीवन–सामुद्रिक लहरी टीका, मुनिश्री मोहनलाल जैन ग्रन्थमाला, इन्दौर

□□□

अलेक्सान्द्र सेर्गेयेविच पूश्किन का जन्म 26 मई 1799 को मास्को में हुआ। उनके पिता सेर्गेई पूश्किन प्राचीन बोयारों के वंशज थे जो तत्कालीन रूसी शासकों की सेना में सम्मानित पदों पर बहाल थे। कविता लेखन के प्रति बचपन से ही विशेष लगाव का ही परिणाम था कि मात्र बारह वर्ष की उम्र (1811) में ही उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं। शिक्षा प्राप्त करने के बाद पूश्किन ने युवावस्था के आरंभिक वर्षों में पीटर्सबर्ग में प्रवास के दौरान विदेश विभाग की नौकरी के साथ प्रगतिशील साहित्य परिषद 'अर्ज़ामास' की स्थापना की और अपनी क्रान्तिकारी कविताओं के लिए चर्चित हो गये। सत्ता-विरोधी रचनाओं और विचारों के लिए दण्डित पूश्किन ने कई छोटी-बड़ी कविताओं और उपन्यासों की रचना की। वर्ष 1826 में निर्वासन से छूट कर वे मास्को लौटे और उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और इतिहास—सभी विधाओं में जमकर लेखन किया। एक द्वन्द्व युद्ध में घायल होने के बाद मात्र 38 वर्ष की आयु में उनका असामयिक निधन 29 जनवरी 1837 को हो गया। अपनी क्लासिकी रचनाधर्मिता के साथ लेखकीय स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिबद्धता से आश्चर्यजनक तालमेल रखनेवाले इस महान कवि का रूस की धरती पर आविर्भाव एक ऐसे देवदूत कवि के रूप में हुआ था जिसके मुँह में साँप की जीभ थी और सीने में धधकते अंगारे।

प्रस्तुत संकलन में संकलित कविताओं का मूल रूसी से अनुवाद **डॉ. वरयाम सिंह** ने किया है। आपका जन्म 1948 में बाहू (बंजार) कुल्लू, हिमाचल प्रदेश में हुआ। आरम्भिक शिक्षा के बाद रूसी अध्ययन संस्थान, दिल्ली से बी.ए. (आनर्स) किया। मास्को राजकीय विश्वविद्यालय में रूसी साहित्य का विशेष अध्ययन तथा वहीं से पी-एच.डी. करने के बाद आप 1972 से जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली में अध्यापन कर रहे हैं। आपके रूसी कविताओं के दस अनुवाद संकलन हिन्दी में प्रकाशित हैं—जिनमें उल्लेखनीय हैं—*आयेंगे दिन कविताओं के* (त्स्वेतायेवा), *निकॉलाइ रेरिख की कविताएँ* एवं कविता विषयक रूसी कविताएँ। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित बीसवीं सदी की रूसी कविता *तनी हुई प्रत्यंचा* और *मनास* (किर्गीज़ महाकाव्य) के लिए विशेष प्रशंसा अर्जित। अनुवाद के लिये सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार तथा कविता के लिए हिमाचल अकादमी पुरस्कार प्राप्त।

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003